में बँधी है, इस प्रकार का वर्ग विभाजन करना अच्छा नहीं लगता। हमारा देश, तुम्हारा देश, हमारी जात, तुम्हारी पाँत—क्या रखा है इन चोंचलों में। वर्गभेद आदमी का दुश्मन है इसलिए उसकी शुरुआत ही मिटा देनी चाहिए। अरे! हम लोग आपस में भी कितने बँटे हुए हैं जैसे टिमटिमाते तारों के रूप में आसमान की नीलिमा।

उन्हें सड़कों के साथ चलना अच्छा नहीं लगता। ड्रेसिंग सर्किल की गद्देदार कुर्सी पर बैठी हुई वह अपने को प्रसन्न नहीं समझतीं। फुलझरी मुस्कान और झुँझलाहट की बेमेल मिलावट में मुझसे कहतीं हैं—'मिस्टर कपूर, तुम्हारे कारण मुझे यहाँ आना पड़ता है। अब देखो न, सामने कोई टेबल भी नहीं है। मैं अपना बैग कहाँ रखूँ। पोर्ट्रेट्स वाले पेपर भी तो यहाँ नहीं रख सकती और फिर इट इज इम्पासबल टु ड्रा स्केच हेयर। प्लीज डोण्ट कम अगेन'।

सिनेमा हाल में कहीं स्केच तैयार होता है! उजाले-अँधेरे का रिश्ता पर्दे के साथ होता है। रेखाएँ अपना सही यात्रा-पथ नहीं खोज पाती हैं। अँधेरे की शिकार ये अभागिन रेखाएँ...

जिस रात की यह बात है उस रात रिबका बहुत उदास और अनमनी थीं। सामने से भागती रीलों का स्केच लेना उनके बूते का नहीं था। अँग्रेजी फिल्मों के अनेक दृश्यों को अब्सर्ड कह कर वह सिसकी भर लेती हैं बस। किसिंग का सीन नहीं देखा जाता। उस समय तो उनकी आँखें बंद हो जाती हैं।

यह तीसरा अवसर था जब शो के बीच में ही उन्होंने मुझे बाहर निकल आने को मजबूर किया था।

टाकीज के बाहर यों ही मैंने पूछा—'कास्मापालिटन कैसी जगह है। वहाँ बैठना अच्छा लगेगा क्या?

'एक वही तो जगह है जहाँ घड़ी-पहर बैठा जा सकता है।'

यह ऐसा रेस्तराँ है जिससे कभी भी रिबका का मन नहीं ऊबता। एक कप कॉफी पीकर अगर किसी एक फेस का भी स्केच खींच लिया तो बहुत है। कास्मापालिटन में वह काफी देर तक बैठ लेती हैं। जैसे

ही वह रेस्तराँ में पहुँचती हैं, तमाम आँखें उनकी ओर देखने लगती हैं। उन्हें अपने काम से काम होता है, किसी का उत्तर वह बहुत कम देती हैं। निस्संग भाव से उनकी पेंसिल किसी जाने-पहचाने चेहरे को आकार देती रहती है।

बीच-बीच में सवाल होता है—'कैसा है' ?

औपचारिकता के कारण 'अच्छा' कभी नहीं कहता मैं। पर रिबका का स्केच मुझे आकर्षित करता है। मैं आर्ट की बारीकियाँ नहीं समझता फिर भी उससे लगाव है। कोई कुछ भी कह सकता है पर अपने मन की बात मैंने बतला दी। सहज भाव से अक्स किये गये चेहरे, उदास और खोये-खोये...हँसते और मुरझाए...लेते-देते हाथ, चोरी करती आँखें, फिसलन के कगारों से ढलते हुए गाल, मेजों पर नुकीले उरोजों का निशाना साधे वक्ष। और भी—ऊँची एड़ियों वाली सैण्डिलों पर फिट खूबसूरती से गढ़े गए टखने और आमने सामने बैठे चेहरों के जोड़े, तमाम जोड़े।

रिबका को यह रेस्तरां इसलिए नहीं पसन्द है कि यहाँ की सर्विस अच्छी है। उन्हें दुनिया का रंगीन बहुरूपिया खाका यहाँ मिल जाता है।

अनेक प्रकार के लोग, दर्शकों की आँखों को अपनी ओर खींचने वाली उनकी शारीरिक चेष्टाएँ और मुद्राएँ...।

सभी लोग व्यस्त दिखायी पड़ते हैं। मैंने तो इस रेस्तराँ जैसी व्यस्तता कहीं नहीं देखी। हर समय तो नहीं पर चौबीस घंटे में एक बार पूरा हाल खचाखच भर जाता है। प्राय: लोग भीड़ वाले समय से पहले आने की कोशिश करते हैं पर कहाँ आ पाते हैं। देर से आने वालों को सेल्फ सर्विस करनी पड़ती है। चार बजे के बाद से ही जन-समूह मोटा होने लगता है। और एक समय तो ऐसा भी आता है जब सैकड़ों लोग सीट की तलाश में खड़े रहते हैं।

पूरे रेस्तराँ में एक ही हाल है। तीन ओर की दीवारों का आधार लेकर सोफे लगा दिए गये हैं। बीच में चौकोर छोटी मेजों को चार कुर्सियों

से घेर दिया गया है । हाल का सारा फर्नीचर हमेशा नया दिखायी पड़ता है । मैं यहाँ रिबका के साथ प्राय: बैठता हूँ । कभी भी...हाल उदास नहीं दीखा । सिगरेट के धुएँ के छल्ले के साथ अपना ग़म ग़लत करने वाले कास्मापालिटन में अनेक लोग मिल जाते हैं ।

रिबका को यहाँ की भीड़ अच्छी लगती है । जितने लोग उतनी तरह की बातें । जल्दी उठने का नाम ही नहीं लेते । एक मेज तीन-चार बार खाली हुई और भरी किन्तु उसी के पास वाली मेज पर बैठे हुए लोग उठने का नाम ही नहीं लेते । होटल सभ्यता हमारे घर तक पहुँच गयी है । कुछ कहना-सुनना बेकार है । एस्प्रेसो के एक आर्डर में डेढ़-दो घण्टे आसानी से बिताए जा सकते हैं । कौन पूछता है !!

इस भीड़ को मैंने बहुत पास से देखा है । मर्दुमशुमारी की दृष्टि से तो कुछ कहना कठिन है पर चाँदनी चौक के लाला जी, पर्यटन के लिए भारत आये विदेशी युवक और युवतियाँ, अपनी कला के सागर में डूबे हुए समाज की छाती पर मूँग दलने वाले व्यक्तिवादी कलाकार, अधकचरे और तपे-तपाए सम्पादक, दो-चार भूले-भटके प्राध्यापक, दफ्तरों के बाबू और प्रेम की मार खाये लैला-मजनूँ की प्रतिछवियाँ देखने को मिल जाएँगी । कभी-कभी योनिवादी कवि और कवयित्रियाँ जाँघों के बीच की झाड़ी पर बहस करने चले आते हैं । ऐसे भी जीव मिलेंगे जो भावना की उपजाऊ जमीन पर रति सम्बन्धों के बीज कुदरती गोदामों से लेकर बो चुके हैं । अंकुर की उम्मीद में बावले बने घूमते हैं । शाम के वक्त कास्मापालिटन की शरण में आकर उन्हें राहत मिलती है । इन्हें किसी की सहानुभूति नहीं चाहिए । ये अपनी राह स्वयं बनाते हैं ।

कई बार रिबका ने इन लोगों के बारे में मुझसे पूछा था । जब मैंने अपनी असमर्थता व्यक्त की थी तो स्वयं आपबीती बतलाने लगी थीं । सुनकर रोमांच हो आया था । मुंह बनाकर मैंने कहा था—

'तुम्हारे पास तूलिका है । अधिक कल्पनाशील होने की कोई जरूरत नहीं है । ढेर सारे चित्र तुम्हारे आगे-पीछे दिखायी दे रहे हैं ।

अब तो तुम्हारी कमनीय उँगलियों के सहारे तूलिका आगे बढ़ती चले और अलबम का पेट भरता चले।'

इस बात को सुनकर रिबका चौंकी थी। यह भी कोई नुक्ता हुआ। इस तरह की बातें तो तब कही जाती हैं जब ताम में कहने के लिए कुछ भी न हो।

'मिस्टर कपूर, मेरी कला का यह ऐम नहीं है जो आप समझ रहे हैं। अलबम का पेट भरना भी कोई बात हुई? दूसरों के चेहरों को मैं अकेले में पढ़ती हूँ। एक कोई आइडिया पकड़ती हूँ। यह सब केवल अपने लिए क्योंकि मैं व्यक्तिवादी हूँ पर ऐसी व्यक्तिवादी नहीं जिसने समाज से सारे रिश्ते तोड़ लिए हों। और मैंने तो यहाँ तक सोच रखा है कि यदि मरने के दो-चार मिनट पहले भी मुझे चेत रहा तो ये सारी कला-कृतियाँ जला दूंगी।

मेरी आँखों के सामने आग की लपटें नाचने लगती हैं—बेतहाशा दौड़ती हुई, सब कुछ पी जाने वाली लपटें...। धू-धू करके जलते हुए, जीवन के रंगीन अलबम। यहाँ तक नहीं आ पाएगी आग।

कला-कृतियाँ!!! क्या सचमुच आग में जल जायेंगी! क्या रिबका अपने श्रम को जला देगी। व्यक्तिगत उन्माद क्या इतना भयानक होता है!!

□ □

जिस फर्म में मैं सर्विस करता हूँ, प्राइवेट है। सारी व्यवस्था विदेशी मैनेजर के हाथ में है। ऊपर से तो लगता है कि यहाँ सरकारी कानून-कायदे माने जाते हैं पर असलियत यह नहीं है। धोखा और जाल के सहारे इसका ताना-बाना ठीक किया गया है। जिस दिन ईमानदारी की बयार बहेगी उस दिन इसका अन्त निश्चित है पर ऐसा कहाँ होने जा रहा है।

इन्हीं आँखों से सब कुछ देखता रहता हूँ। इन्कम टैक्स से बचने

के लिए फर्म के मैनेजर को तमाम खेल खेलने पड़ते हैं। मैंने फर्म के अंदर की बातों को कभी किसी से नहीं बतलाया। आज आप के ऊपर विश्वास करके कह रहा हूँ। अपनी तो जीविका का साधन वही है। उसकी कमजोरी को सरेबाजार फैलाना ठीक नही है। मेरे कुछेक गजटेड मित्रों ने फर्म के सम्बन्ध में जानना चाहा। मैंने उनसे कहा है—'भई यह पर्सनल मामला है। आप इसमें क्यों दिलचस्पी ले रहे हैं।'

नहीं मानते हैं दोस्त। उनकी एक लम्बी जमात है मेरे साथ। कुछ तो सिन्सिअर है पर ज्यादातर जोंक हैं, केवल जोंक। उन्हें हराम का खाने में मज़ा आता है। ऐसे लोग काम करना गुनाह समझते हैं। एक-एक पैसे की भीख माँगते हैं। तीन तन्दूरी के लिए मेरी जेब से पैसा निकलवाने की कला उन्हें खूब आती है। बड़ी दूर से बातों की बारात लेकर चलेंगे। क्या कोई कलाकार करेगा दयनीय स्थिति का ऐसा चित्रण...। ये पत्थर को मोम बनाकर छोड़ते हैं। सौ-पचास रुपये की माँग से चल-कर चवन्नी तक पहुँच जाते हैं, जोई राम सोई राम...।

मेरे नकार के व्यवहार से सभी नाराज हो गये हैं। बड़ी खोज-खबर रखते हैं। समाचार पत्र के संवाददाता की भांति अपने कान सदैव खड़े किए रहते हैं। अघटित घटना का कोई समाचार बिन्दु उन्हें मिलते ही आप देखेंगे कि उनकी कुण्डलिनी का रुख बदल जायेगा। पुराने दोस्तों का दावा है कि वे मुझे अन्दर-बाहर से जानते-पहचानते हैं। मैं उनकी इस बात को मानता हूँ। अपना क्या जाता है। पर यह सही है कि दूसरों का सूराख खोजने वालों को अपना बड़ा छेद नहीं दिखायी पड़ता है। दूसरों के कपड़ों में पैबन्द देखने वालों को अपनी कमजोरियों का ध्यान नहीं रहता।

सभ्यता की अनेक सीढ़ियों को पार कर लेने के बाद अब रिबका को किसी व्यक्तिगत पूछ-ताछ में कोई दिलचस्पी नही रह गयी है। मेरे उनके बीच अब अपरिचय की बाधा नहीं रह गयी है। पर वह अपनी कला में इतनी तन्मय हो जाती हैं कि बाहर से लगता ही नहीं कि हम

दोनों एक दूसरे से परिचित हैं ।

लगभग रोज ही मिलना हो जाता है । इसीलिए कभी-कभी सोचने के लिए मजबूर होता हूँ । पर उनकी व्यक्तिगत बातों से क्या लेना-देना ।

और फिर अपने मित्रों की तरह बाल की खाल निकालना अपना काम नहीं है । एक बात बतलाएँ—अगर कोई आदमी पहेली की तरह संसार में आए और बिल्कुल पहेली की तरह यहाँ से चला जाये तो आप उसे अच्छा कहेंगे या और कुछ । खैर...अपनी बात आप जानें पर मैं तो उसे पहेली ही कहूँगा क्योंकि अच्छा-बुरा कहना मेरी सीमा के बाहर है । यह इसलिए कि मैंने उसे जाना भी तो नहीं ।

रिबका के जीवन के पन्नों को मैंने कहाँ तक पढ़ा है यह सही-सही नहीं बता सकता पर अब लगता है उनका पहेली बना रहना मेरे लिए अच्छा है, सुखकर है । चन्द्रमा की दूरी नापने वालों ने जिस दिन घोषणा की कि वहाँ माटी, पत्थर, पहाड़ सब कुछ है उस दिन से लोगों की धारणा ही बदल गयी । इटली के एक प्रेमी युगल ने तो स्टेटमेण्ट ही दे दिया था कि यह सब ग़लत है । भला चाँद पर कभी कोई पहुँच सकता है । उसकी सुन्दरता का कारण वह स्वयं नहीं बल्कि उसकी चाँदनी है ।

कभी अवसर मिले तो छः-साढ़े छः बजे के आसपास कास्मॉपालिटन आइए । वहाँ आपको रिबका मिल जायेंगी । मुझे आपके ऊपर विश्वास है । आप उनकी उम्र के सम्बंध में कोई भद्दा कमेण्ट नहीं देंगे । अक्सर ऐसा लोग करते हैं इसलिए कह रहा हूँ ।

चिन्तन, चिन्तन और उसके बाद विचारों का रेचन । खाली हो जाना भी कितना अच्छा लगता है । बोझ का नशा ज्यादा देर तक ढोया भी तो नहीं जाता ।

रिबका की उम्र कहीं पचीस-तीस के बीच होगी । मैं तो ऐसे ही कह रहा हूँ, सही अनुमान मुझे भी नहीं है । जापानी युवक के उम्र वाले मज़ाक का जवाब रिबका ने दिया था, होटल में । उससे नहीं कहा

कुछ। कई चित्र फलकों को निकालते हुए बोली थीं—

'देखिए ये स्केच क्या कहते हैं!! क्या इन रेखाओं की चाल का पता आपको है? क्या इनकी चुप्पी आपकी समझ में आती है। अगर हाँ तो उम्र का गेस लगाना आसान है। और इस आसानी की ज़रूरत ही क्या? पता नहीं लोग बेमतलब दूसरों को छेड़ने का हक कैसे ले लेते हैं!!'

वह नवयुवक चला गया था।

'सी दिस पुअर जैपनीज यंग मैन'।

इस वाक्य का मतलब पहले तो मैं समझ नहीं पाया था। अब धीरे-धीरे समझने लगा हूँ पर एक बात रह-रह कर मेरे मन में सिहरन भर देती है। करूँ क्या? साथियों से कह दूँ तो हजार प्रश्न किए जायेंगे—

'क्या बात है? आखिर कौन-सी गुत्थी नहीं सुलझ रही है? क्या चाहते हैं आप? हाँ, हाँ, कहो, कहो, वही रिबका जो शाम को इण्डिया गेट...अच्छा एक बात बतलाओ कपूर—तुम्हें रिबका ने बहुत लिफ्ट दे रखी है'।

ऐसी बातों को निष्प्रयोजन कहना ठीक नहीं होगा। हम तो प्रश्नों की दुनिया में जीते हैं। और केवल जीते ही नहीं मरते भी हैं। मरने के बाद भी प्रश्न घेरे रहते हैं जैसे कि वे हमें छोड़ना ही नहीं चाहते।

जानकारी अच्छी चीज है। स्त्री-पुरुष के परस्पर सम्बंधों की जानकारी की ओर ध्यान जाना स्वाभाविक है। दोनों का साथ रहना, मिलना-जुलना जानकारी के पड़ाव जैसे होते हैं। पड़ाव ऐसे कि जहाँ पहुँच कर कोई भी आराम-विश्राम नहीं करता। क्यों करे कोई!!!

□ □

हाँ तो वह बात बतलाऊँ आप से। जब कभी मैं अपने एकान्त में होता हूँ तब उस एकाकीपन को दूर करने के लिए किसी निर्जीव साथी

की जरूरत महसूस करता हूं।

निर्जीव साथी !!

हाँ, एकदम निर्जीव। सजीवों को साथी बनाकर भर पाया है। इनसे अच्छी तो मूर्तियाँ होती है। पत्थर की मूर्तियाँ, कम से कम वही तो रहती है जो होती है। आदमी तो गिरगिट होता है गिरगिट। आपने शायद चेखव वाली कहानी पढ़ी हो। कितना बड़ा कलाकार रहा होगा वह प्रकृति पुरुष जिसने आदमी की रचना की होगी -- फरेबी, मक्कार, झूठा, दगाबाज, बतखलीफ आदमी...बेचारा आदमी ...।

मुझे पूरा पता है कि उसके अपने अतिरिक्त रिबका के जीवन में दूसरा कोई नहीं है पर उन्होंने ऐसी बात शायद ही कभी सोची हो। कभी मुझसे कहा भी तो नहीं।
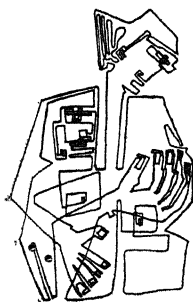
उस दिन आकाश की नीलिमा कुछ गहरी लग रही थी। दफ्तर से निकलने में कुछ देर हो गयी। चलते समय अनमने भाव से मैंने फाइलों की तह लगायी थी जैसे फिर कभी उन्हें उठाना ही नहीं था। चपरासी को कल के लिए कुछ जरूरी बातें बतला कर बाहर आ गया था।

'साहब पूछे मेरे सम्बंध में तो तुम कुछ मत बतलाना' भी चलते समय कह दिया।

एक, दो, तीन, चार कर के सीढ़ियाँ उतर रहा था। ये सीढ़ियाँ ऊपर से नीचे की ओर मुझे खींच रही थीं।

नीचे भाग-दौड़ मची हुई थी। कभी बलखाती इम्पाला का दृश्य आँखें की सतह पर तैर जाता था, कभी अम्बेसडर की भीड़ का बुजुर्ग अन्दाज सामने से गुजर जाता था। स्कूटरों की घुर्र-घुर्र नीड़ लौटते पक्षी की भाँति बड़ी जल्दी में थी। साइकिल स्टैण्ड एक-एक करके खाली हो रहा था। अधेड़ सरदारनी स्टैण्ड से स्कूटर निकाल कर कार्नेर में किसी की प्रतीक्षा में खड़ी थी। वह रोज ऐसे करती है। मेन रोड पर आकर कुछ कारों की रफ्तार धीमी लगती थी। लोग अपने उन साथियों को लिफ्ट दे रहे थे जिनके घर उनके रास्ते में पड़ते थे।

मेरे पास कोई सवारी-सिकारी तो थी नहीं। मन भी भारी था। फाइलों से जूझ कर मैं थक गया था। उनका ध्यान आते ही घुटन महसूस होती थी। सभी को जाता हुआ देख कर मैं भी जा रहा था पर मेरा मन पीछे लौट कर फाइलों के शीर्षक बाँचने में व्यस्त था।

पीछे से किसी ने मेरे कंधे पर हाथ रखकर कहा—'कपूर भाई, आज तुम्हारे साथ मैं भी चलूंगा'।

लौट कर देखा तो जोशी था।

'कहाँ जाना है तुम्हें'

'यह तो मैं नहीं जानता। जहाँ तुम जाओगे वहीं मैं भी जाऊँगा'।

'पर हमारे-तुम्हारे रास्ते तो अलग-अलग हैं'।

'इससे क्या होता है !!'

'होता तो कुछ नहीं जोशी पर आज जैसे मेरे अन्दर की कोई मूल्यवान वस्तु खो गयी है। एक बेचैनी और उदासी से घिरा हुआ हूँ। तुम साथ रहोगे तो अच्छा ही है। समय कट जाएगा।

दोनों साथ-साथ आगे बढ़ने लगे।

जोशी मेरे दफ्तर में खबरों की डिक्शनरी है। वह किसी सूचना संस्था का कर्मचारी होता तो बड़ा काम करता। जिस समय यह खबरों का रिकार्ड बजाता है उस समय के लम्बे कहकहे, अतर्क्य गंभीरता, सदाबहार झुंझलाहट, साहबी आँखों की तरेर, फीमेल कार्नर्स की टेढ़ी-तिरछी मुसकानें एक साथ बाहर आ जाती हैं। जोशी अपने को गर्वीला अनुभव करता है।

मुझे भी यह सारा नाटक अच्छा लगता है।

उस दिन जोशी का मिलना मुझे बहुत अच्छा नहीं लगा। जब वह मेरे साथ था, कुछ न कुछ सुनाता जाता, जो मुझे हठपूर्वक सुनना पड़ा था।

'आज तुम सीरियस बनने की कोशिश कर रहे हो।'

'तुम्हारा यह अनुमान गलत भी हो सकता है।'

जोशी ने अपनी फिलासफी बघारी—

'मर-मर कर जीना भी कोई जीना है। इससे तो अच्छा है कोई जिन्दा ही न रहे।'

क्या मैं सचमुच मर-मर कर जी रहा था। अगर नहीं तो फिर जोशी ने ऐसा क्यों कहा। वह अपने मे और मुझ में फर्क करता है। संगी-साथी चार दिन के होते है, कौन अन्त तक जाता है। कितनी दूर तक हम एक दूसरे का साथ दे पाते है यही देखना होता है। मेरे साथ...केवल दफ्तर की फाइलें है। ऊबता हूँ जरूर पर उनके ऊपर कहीं अपना वश चलता है। जहाँ रख देता हूँ, वहीं रखी रहती है।

बात करते करते इण्डियन कॉफी हाउस के नुक्कड़ पर जोशी खड़ा हो गया। कहने लगा—'तुम रिबका को जानते हो क्या ? अरे वही रिबका आर्टिस्ट जो कास्मापालिटन में घंटों बैठी रहती है। वहाँ उनसे मिला जा सकता है।'

मैं इस प्रकार के प्रश्न के लिए तैयार न था।

वह कहने लगा—'मे...मे...मेरा मतलब यह नहीं था कि आप कुछ और अर्थ लगाएँ। कला के प्रति आपके मन में कुछ लगाव तो है

ही। इसीलिए पूछा था मैंने, और कोई बात नहीं थी।'

'यह बात सही है कि रिबका का व्यक्तित्व कलामय है पर वह कुछ व्यक्तिवादी लगती हैं'—जोशी कहता जा रहा था—'लोग कहते हैं। मैंने तो देखा नहीं, सुना भर है। और कपूर आप...नहीं-नहीं – तुम जानते हो कला-वला का चकल्लस तो मैं पालता नहीं इसलिए कला की साकार देवी के प्रति मेरी न तो कोई जिज्ञासा है और न आकर्षण।'

'और मान लो कोई दिलचस्पी पैदा ही हो जाय तो मुझे क्या मिलेगा। बिना लाभ का रोग मैं नहीं पालता। क्या दे देगी वह मुझे। और फिर औरतों का झमेला···उनकी छाया में भी फरेब होता है।'

जोशी की ये बातें मुझे बिलकुल अच्छी नहीं लगीं। वह पार्लियामेण्ट स्ट्रीट की ओर बढ़ गया। कुछ दूर से उसका वाक्य मेरे कानों तक तैर आया था—'वैसे कास्मापालिटन में उनसे मिला जा सकता है।'

□ □

संध्या की गभुआरी श्यामलता घनीभूत होकर नियान रोशनी को और तेज करने लगी थी। राजमार्ग की चाल से संकेत मिल रहा था—चलते रहने का, दौड़ते रहने का। जब तक दम में दम है यही तो करना है। उस सम्बंध में कुछ और बतलाना नहीं चाहता पर केवल इतना कहूँगा कि मिलने वाली बात मुझे भूलती नहीं थी।

जोशी लौट कर कनाट प्लेस के घेरे में कहीं खो गया था। मेरा मन जल्दी घर लौटने का नहीं था इसलिए इक्जीबिशन ग्राउण्ड पर लगी प्रदर्शनी देखने चला गया था।

भाग्य की दीवार पर बनी तस्वीरों का रूप अनोखा होता है। इन चित्रों की रेखाओं को पढ़ना आसान नहीं होता। कोशिश करने पर भी लिखा कुछ रहता है, पढ़ा कुछ जाता है। अपनी भाग्य-लिपि पढ़कर मानव कभी रुका नहीं। वह लगातार आगे बढ़ रहा है, बढ़ता जा रहा है।

मैंने अपने भाग्य के सम्बंध मे सोचना बद कर दिया है। जानता हूँ जो मेरे पास है वह मुझे अच्छा नहीं लगता और जो अच्छा लगता है, मन को भाता है उसे पाऊँगा कहाँ। भाग्य भी इंसान के लिए एक बला ही है। पता नहीं कब इससे छुटकारा मिलेगा !!

अब मैं प्रदर्शनी कम्पाउण्ड के अन्दर था। बुकिंग विण्डो पर बड़ी भीड़ थी। कुल चार काउण्टर थे। दूसरे काउण्टर पर एक ऐसी महिला टिकट बाँट रही थी जिसका चेहरा अत्यन्त मुखर था। उसकी साज सज्जा में अधिक बनावट नही थी। कनाट प्लेस में उससे ज्यादा बनाव-सिंगार भी खप जाता है। हाँ, उसके ऐक्शन में पंजाबी शैली की खुशबू अवश्य थी। उसके काउण्टर के सामने वाली क्यू में खड़े होने की इच्छा ही नहीं हुई। मैंने सुना कि कुछ लोग केवल इसीलिए उस क्यू में थे कि उस महिला के हाथों का टिकट उन्हें मिल जाय। एक मैं था जिसे दूसरी बुकिंग विण्डो पर टिकट लेना पड़ा।

प्रदर्शनी का सारा कमाल लड़कियों पर आधारित था। बर्तन बेचती हुई लड़की, झूला झूलती हुई लड़की, कपड़ा बेचती हुई लड़की, चाबियों की अँगूठी बेचती हुई लड़की। ऊपर-नीचे आगे-पीछे सभी स्थानों पर लड़की, लड़की। लड़की चाय पिला रही है, लड़की कोल्ड ड्रिंक दे रही है, लड़की रेशमी रूमाल बेच रही है। क्रय-विक्रय कम हो रहा है, लड़-कियाँ बहुत देखी जा रही है। यहाँ देखने वाले अधिक आते है। खरी-दते वही है जिनकी गाँठ में नम्बर दो का पैसा है।

मैं स्केटिंग वाले घेरे का बाँस पकड़कर खड़ा हो गया।

अनेक लोग अपने लड़खड़ाते पैरों के सहारे स्केटिंग कर रहे थे। कुछ तो नौसिखिए थे और कुछ अपने फन के उस्ताद। देखते-देखते कोई न कोई ढेर हो जाता था। मुँह से खून निकलने लगता था। जमीन लहू-लुहान हो जाती, सारी चौकड़ी भूल जाती थी। सैकड़ों लोग चारों ओर से घेरा बाँधकर तमाशा देख रहे थे। सोलह-पचीस की कई लड़-कियाँ अपने पुरुष साथियों के साथ स्केटिंग कर रही थी। थोड़ी देर के लिए वहाँ मेरा मन रम गया था।

मिनी स्कर्ट पहने जो लड़की स्केटिंग कर रही थी, सभी का ध्यान उसी पर था। मैं भी तन्मय होकर उसी की ओर देख रहा था। जो सज्जन उस लड़की के कम्पेनियन की हैसियत से कौतुकरत थे वे उसके भाई थे ऐसा लोग सोचते थे। हाव-भाव से मुझे वह बॉय फ्रेण्ड लगता था। कभी घुटने टेक कर, कभी लड़की को अपनी बाहों में लेकर, कभी एक दूसरे की ओर उन्मुख होकर, गले में हाथ डालकर, कमर मिलाते हुए गुणे का निशान बनाकर अनेक मुद्राओं में दोनों स्केटिंग में तन्मय थे। दोनों बाहर किसी की ओर देखते नहीं थे। उनके सामने स्केटिंग का फर्श था। अनेक मोड़ों पर मुड़ने में उनकी कला बल खाती थी। आकर्षक मुद्राओं को देखकर वाह!! और क्या खूब!! के स्वरों पर हथेलियाँ ताल दे देती थीं। थकान मिट गयी थी मेरी। लगता था उस खेल-तमाशे में मैं भी शामिल हूँ सारी घुटन भूल कर।

जहाँ मैं खड़ा था वहाँ मेरे दाहिनी ओर एक लम्बी बल्ली गड़ी थी। दो बाँस पट करके बाँधे गये थे। बल्ली की बायीं ओर जो बाला खड़ी थी उसका ध्यान उस मिनी स्कर्ट वाली लड़की और उसके ब्वाय कम्पेनियन पर था। पास खड़े एक दर्शक ने एक गुस्ताख फिकरा कसा —'हाय मेरी जान मार डाला'।

यह तब घटित हुआ जब विशेष अदा और अनोखे अन्दाज में लड़के के धनुषाकार शरीर पर लड़की की देह लता फलवती भूमिका में झुक गयी थी। कला के ये संकेत चिह्न उस दर्शक को उत्तेजित कर रहे थे। अपने को काबू नहीं कर पाया वह। जबान की गोली दाग दी। वह तो केवल तमाशबीन था। और वही क्यों सभी थे ऐसे।

उसकी बेतुकी बात सुनकर बल्ली के पास वाली बाला ने कहा—

'तुम्हारा मतलब क्या है' ?

'मैं...मैं...मेरा मतलब...'।

'हाँ, हाँ, तुम चाहते क्या हो ?

'कुछ नहीं, कुछ नहीं'।

बाला कहती जा रही थी—'अगर तुम्हें आर्ट का इल्म नहीं है तो

बनवासी बन जाओ या फिर गँवारों के बीच से निकल कर बाहर न आओ। इन्सानों के बीच इन्सानियत नीलाम करके रहने का हक तुम्हें कौन देगा। यह भी कोई बोलने का ढंग है'।

वह व्यक्ति नीचा सिर किए सुनता जा रहा था। गलती के कारण उसका मुँह ऊपर नहीं उठा। मैंने देखा था कि वह धीरे-धीरे वहाँ से खिसक कर भीड़ में कहीं गायब हो गया था।

कला द्वारा मानव को दृष्टि मिलने वाली मान्यता बहुत पुरानी है पर उसकी नयी व्याख्या मुझे अच्छी लगती है। यद्यपि मैं उस बाला के प्रति आकर्षित नही हुआ था पर बल्ली के पास से वह कुछ आगे बढ़ गयी थीं।

यह कोई नयी बात नहीं है।

प्रदर्शनी के ये प्रदर्शन जाने पहचाने हैं। इस दृश्य को देखकर एक न भूलने वाली घटना स्मृति-पटल पर ऊभर आयी थी।

दिन और तारीख कुछ भी मुझे याद नहीं है। केवल इतना याद है कि अपने कुछ मनचले साथियों के साथ मैं मिस कृष्णा और कुमारी कमल का भाव-नृत्य देख रहा था। धुन का ध्यान तो नहीं है पर उन लड़कियों के हाव-भाव मन में अब तक ताजे हैं।

बेचारी छोटी-छोटी लड़कियाँ, यही कोई चौदह-पन्द्रह की या मुश्किल से सोलस-सत्रह की रही होंगी। हो सकता है पेट पालने के लिए किसी पिता ने अपनी ही लड़कियों द्वारा यह धंधा शुरू किया हो।

डांस हो रहा था।

कुमारी कमल का बेहूदे ढंग से थिरकना मुझे बिलकुल अच्छा नहीं लग रहा था। सामने रिक्शा ताँगे वाले बैठे थे। वह भी एक प्रदर्शनी ही थी। लोग मजा ले रहे थे। दस पैसे में इतना आनन्द कहाँ मिलेगा। प्रत्येक छेद के साथ संभोग की इच्छा रखने वाला आदमी रति प्रसंगों में, संभव-असंभव सब कुछ सोच सकता है।

दर्शकों के दल में सन्नाटा छाया था।

सभी दिल-दिये से लग रहे थे। इतने में एक लुंगी-कुर्ता वाला

आदमी भीड़ से आगे बढा। अभी किसी ने ध्यान नहीं दिया।

स्टेज काफी ऊँचा बना था। वह आदमी स्टेज से सटकर खडा हो गया। एक-एक रुपये के दो नोट निकालकर दाहिने हाथ से संकेत करता हुआ कुमारी कमल से कहने लगा —

'ऐ बीवी जान...।'

वह भला क्या कहती ?

'बोलती क्यो नही, नाराज हो क्या।'

वह फिर भी कुछ नही बोली।

'आज तबीयत खुश कर दो ..।'

नृत्य दर्शको की भीड यह करतूत अपने सामने देख रही थी। किसी की हिम्मत नही थी कि कोई कुछ कहे। लडकी साडी पहन कर नाच रही थी। बैठे हुए लोगो मे सभ्य बहुत कम थे। लडकी की थिरकन पर दर्शकों की गरदने टेढी हो जाती थी। कभी-कभी तो पड़ोसी की बेंच पीट-कर या चुटकी बजाकर ताल भी दी जाती थी। ओठो पर चटख रग का लिपस्टिक लगाकर लड़की ने अपनी मुखाकृति रिपल्सिव बना ली थी। इतना सब होते हुए मेरे पास वाला आदमी शराब के नशे मे धुत्त चीख रहा था 'पटाखा है पटाखा।' उसका यह मुहावरा बहुत जल्दी लोगो की समझ मे आ गया था।

बड़ी जल्दी नोट दिखाने वाले व्यक्ति ने एक-एक रुपये के दस-पन्द्रह नोट स्टेज पर चढकर बिखेर दिये। लडकी पर्दा उठाकर अन्दर भाग गयी। 'खेल खतम पैसा हजम' वाली स्थिति आ गयी थी। दर्शको मे हल-चल मच गयी। खेल के मैनेजर ने उस व्यक्ति की अच्छी मरम्मत की। क़िस्सा समाप्त होने के बाद पुलिस भी आयी। बात सुनकर दरोगा जी हैरान हो गये कि यह सब हो क्या गया।

नही रहा जाता है लोगो से।

फूट पडते है। मन के हर पन्ने को उलट-पुलट कर दिखा देना चाहते है। वे लडकियो का जंगल पसन्द करते है। कला उनके लिए अफीम है। लोग तो इतना ही चाहते है कि उनके जोश का प्रतिदान

तुरन्त मिल जाए। उस क्षण के सुख के लिए समुद्र लांघने का दम भरते है, पहाड़ खोदने की हिम्मत बाँध सकते है।

□ □

स्केटिंग के आनन्द में तिरोभाव हुआ ही था। मैं भी उसे छोड़कर कुछ आगे बढ़ गया। वह बाला भी वहाँ से चली गयी थी। स्केटिंग देख कर थोड़ी देर मैं अपने मे नही था। आगे बढ़ते ही मेरी चेतना, अपने को देखने की दृष्टि मुझे घेर कर चलने लगी। प्रदर्शनी के और आकर्षणों की ओर मैं नहीं जा सका। घर से लेकर दफ्तर तक के रोज के सीन आँखों के सामने से आने-जाने लगे। कुछ घुटन महसूस करने लगा। एक पल के लिए दफ्तर याद आ गया था। लगा कि अभी इसी वक्त दफ्तर जाना पड़ेगा। बस दफ्तरी मशीन का एक पुर्जा हूँ मैं। मेरी अपनी पर्सनैलिटी (व्यक्तित्व) क्या है। तेली के बैल की तरह आँखो पर ठप्पा बाँधे अपनी लीक पर चलता रहूँ। यही मेरे जीवन का क्रम है और विकास की मंजिल भी यही है।

ये सब निरर्थक विचार थे।

दफ्तर मेरी व्यक्तिगत स्वतन्त्रता मे बाधक नही बन सकता। जोशी का वाक्य—'कास्मापालिटन मे उनसे...।' स्मृति की श्यामलता पर बिजली की रेखाएँ जड़ उठीं। कौन है वह! मैं उनसे क्यो मिल लूं!!

प्रदर्शनी के बाहर जब मैं आया तो टिकट खरीदने वालों की भीड़ छँट गयी थी। कुछ झुककर मैंने उस टिकट बेचने वाली महिला को देखा था। विण्डो का सूराख छोटा होने के कारण केवल उसके हाथ दिखायी पड़े थे। दाहिना हाथ कलम से कुछ लिख रहा था, बायाँ आराम की मुद्रा में मेज पर टिका था। दाहिने में एक काली और सुन-हरी चूड़ी कुछ ऊपर चढ़ा दी गयी थी। कसाव के कारण मांसलता उभर आयी थी। अब काउण्टर खाली हो गया था। बड़ी आसानी से

टिकट लेकर अन्दर जा सकता था। यह भी कोई बात हुई। रहे बुद्धू के बुद्धू।

मैं अपने से कहने लगा—

तू अपने को जान-बूझकर बोर करता है। जहाँ तुम्हें सड़क के किनारे वृक्षों की भाँति निर्मम होना चाहिए वहाँ तू हर भली लगने वाली चीज के प्रति लगाव लगाता फिरता है। इस निर्मम दुनिया में कौन किसका साथी है। सभी वासना के पुतले है, तू भी उन्हीं में से एक है। अपने में तू स्वयं उलझा हुआ है। तुम्हें चलना नहीं आता है तो कौन तुम्हारे साथ चलने के लिए तैयार होगा। जिसको जीना नहीं आता उसे कला भी तो एक बकवास लग सकती है।

अरे भाई नहीं,

इस प्रकार का सोचना ठीक नहीं है।

मेरे जीवन में कला का मूल्य है, उसकी आवश्यकता है। और प्रत्येक समझदार व्यक्ति कला के मूल्य को समझना है।

जब कभी व्यर्थ की बातों मे मेरी विचार-शक्ति उलझती है, तब पता नहीं क्या-क्या सोचता हूँ मैं, लगातार।

रीगल का पोर्टिको।

कनाट प्लेस मे यह भी एक अनोखी जगह है। रिवोली और रीगल की भीड़ जब सडक पर और फुटपाथ पर तैरने लगती है, गेलार्ड और स्टैण्डर्ड से निकलन वाले इक्का-दुक्का लोग उसी मे शामिल होते जाते हैं।

उसी भीड़ में मै भी शामिल हो गया था। अपने अस्तित्व को भीड़ के हवाले कर दिया था। फिर कही नही गया उस दिन। अर्विन रोड पार करके हिन्द सोवियत कल्चरल सोसाइटी के कार्यालय तक पैदल चलना चाहता था। उसके आगे घर जाने के लिए बस मिल जाती।

इधर-उधर देखता चल रहा था।

सभी अपने रास्ते तेजी से चल रहे थे। वाइन स्टोर के सामने जो पान वाला बैठता है उसी से थोड़ा हटकर एक मैगजीन सेलर भी बैठता

है। जोशी ने एक बार मुझे बतलाया था कि उसके पास बड़ी भद्दी-भद्दी मैगजीनें बिकने के लिए आती हैं। न्यूड्स वाली मैगजीन को वह भद्दी कहता है। कन्जर्वेटिव कहीं का...आप भी यही कहेंगे न ?

यही कोई दस-पाँच कदम आगे थी वह दुकान। मेरे पास से एक युवती तेजी से आगे बढ़ी जा रही थी। छाया की तरह तीन लोग उसका पीछा कर रहे थे। वह डाँट रही थी—'हटो जी, क्या कुत्तों की तरह पीछे लगे हो। अब मैं एक बार के लिए भी तैयार नहीं हूँ। पैदल चला कर मार डाला। लेने-देने के लिए केवल बातें हैं।'

आसपास यह आवाज सुनायी पड़ी थी। जिज्ञासा, घृणा और कुतूहल के भाव आँखों में उतर आये थे। युवती उम्र से बहुत बड़ी नहीं लगती थी। पीछे से अधिक जाना भी नहीं जा सकता था। स्लीवलेस ब्लाउज का कटाव गले के पास से नीचे उतर आया था। साड़ी का कसाव इतना अधिक था कि गहरे और उभरे अंगों की स्वाभाविकता नष्ट होने से बच गयी थी। पैरों में जालीदार चप्पलें थीं जिनका सोल निराधार चिपका हुआ लग रह था। ज्यादा नहीं दिखा यह सब। तीनों आदमी बिल्कुल उसे घेरे हुए चल रहे थे। उसके आगे कोई नहीं जाता था। देखते-देखते रेलिंग के पास से वह लड़की रिवोली की ओर मुड़ गयी। मेरी आँखें फिर अपने रास्ते लौट आयी थीं।

कास्मापालिटन की याद के अक्षर फिर उभर आये।

पहले तो सोचा कि वहाँ थोड़ी देर के लिए अवश्य जाऊँगा पर अपना चेता कुछ हुआ। रात गहरी हो चली थी। कनाट प्लेस सूना होने लगा था। सिटी बसों की घुर्र-घुर्र इधर-उधर सुनायी दे जाती थी। आती जाती हुई कारों की तेजी और बढ़ती जाती थी। जन-समूह पतला हो चला था। अँधियारे का मुटापा अधिक नहीं खल रहा था; क्योंकि विज्ञापन लाइट्स के साथ-साथ मर्करी रॉड और बल्बों का प्रकाश अन्धकार की पर्तों को हटा रहा था। ऊँचे आवासों का गरिमामय रूप उजाले में निखर आया था।

□ □

सेण्ट्रल न्यूज एजेन्सी तक आते-आते मैं कुछ थकान अनुभव करने लगा था। करता क्या पैदल घर जाना कठिन था इसलिए बस पकड़ना जरूरी था। स्टॉप तक पहुँच तो गया; किन्तु बस आने में देर थी। स्कूटर से जाना मँहगा पड़ता। टैक्सी की बात केवल इमरजेंसी में सोचता हूँ। छोटे-छोटे कामों के लिए टैक्सी और स्कूटर में चलने लगूँ तो रह चुका दिल्ली में। बहुत बचा-बचा कर चलना पड़ता है। छोटी तनख्वाह बड़े खर्च। अधीर हो उठता हूँ कभी-कभी। जीवन कैसे पार होगा।

यह रात और दिन की घुटन रेगुलर हो गयी है। मुँह पर चन्द्रमा हँसता है अन्दर विषाद का पारावार उमड़ता है।

बसों की प्रतीक्षा का भी एक आर्ट होता है। जो दिल्ली की बसों की चाल-ढाल से परिचित हैं वे इस आर्ट को समझते-बूझते हैं। हो सकता है स्टॉप पर खड़े होते ही दो-तीन बसें आ जाएँ और यह भी सम्भव है कि घंटे दो घंटे कोई बस ही न दिखायी दे। मशीन का मामला है। अधिकारी बेचारे क्या करें। दोष तो सारी दुनिया दिखाती है पर उन्हें ढकने का प्रयास कौन करता है। मेरे मन में तो केवल प्रतीक्षा की धुन्ध छायी थी।

बस आयी तो जाने क्यों चढ़ने का मन ही नहीं हुआ पर भीड़ की रेलपेल में मैं भी अन्दर हो गया।

घुरघुराती हुई बस आगे की ओर बढ़ चली थी। मैं कुछ तो अपनी परेशानियों से परेशान था कुछ दूसरों की।

जो महाशय मेरी सीट पर बैठे थे मेरे बैठते ही थोड़ा सिकुड़ गये। मैंने अपना लेदर बैग अपने पैरों पर रख लिया। उन सज्जन को देखने लगा जिनके सिर के ऊपर बस में लिखा था—'धूम्रपान मना है'। वे सिगरेट पी रहे थे। लगता था कुछ सोच रहे थे जैसे।

मेरे अपने जीवन में सवालों की धुन्ध छायी है। अब तक मिलने वालों ने इतने प्रश्न पूछ डाले हैं कि अगले प्रश्न का उत्तर देने के लिए

नया जन्म लेना पड़ेगा। दो वर्णों वाले शब्दों से ही उत्तर का खाना भरता हूँ।

प्रश्न हुआ—'कहो भई कब आये ?'

'कल'—मैंने कहा।

'कब लौट रहे हो ?'

'कल।'

पूछने वाले ने थोड़ी दिलचस्पी लेकर पूछा 'बीवी बच्चे साथ हैं कि नहीं।'

झुंझला कर अपने को सम्भालते हुए मैंने कह दिया 'नहीं।'

कुछ लोग परिचय में ऐसे हैं जो विवाहित और अविवाहित जीवन की संदिग्ध स्थिति को समझते हैं पर प्रश्न जड़ने से चूकते नहीं। बस में बैठे हुए मैं स्केटिंग वाली घटना को फिर से देखने लगा। कोई टोक न दे—'अरे भई कपूर इतनी रात को यहाँ कैसे' ? रात पर किसी का एकाधिकार है भला।

□ □

मेरे दिमाग़ में दो बातें रह-रहकर उभर रहीं हैं। एक तो वह जो जोशी ने बतलायी थी और दूसरी एक सामान्य घटना के रूप में कनाट प्लेस वाली प्रदर्शनी में स्केटिंग के प्रसंग में घटित हुई थी। सभी तरह से यह पर्सनल मामला है। मेरे अन्य साथियों की भाँति आप भी कहीं बारीकी न खोजने लगें। अविश्वास और छलना के थपेड़ों ने मुझे सचेत कर दिया है। पर यह बात भी साफ है कि मैं जीवन से ऊबा नहीं हूँ।

और ऐसा भी नहीं सोचता कि अब जीना व्यर्थ है। जीने की इच्छा रखने वाले को जीने की कला आती है यह कोई आवश्यक नहीं है। मुझे भी जीने की कला नहीं आती।

कुछ लोग जीवन को नियमावली में बाँध देते हैं। टस से मस होना उनके बूते का नहीं। वे उसके लिए बने भी नहीं। परिवार का जन्म ही इसी आधार पर हुआ है।

चलने का क्रम तो तेली का बैल भी बनाता है। कॉफी हाउस में दूसरों की छाती पर मूंग दलने वाले बेकार छोकरे भी अपना एक रास्ता बनाते ही हैं। यही कि समय से कॉफी हाउस पहुँच जाना और घंटों

वहाँ बैठे ही-ही, हू-हू करते जाना। कितनी सस्ती है यह जिन्दगी और मँहगी भी तो है। क्या कला का सम्बन्ध इस सस्ते और मँहगेपन से है!

□ □

अपने दफ्तर में कई लोगों से सुना है कि रिवका आर्टिस्ट है, दर्द और पीड़ा की आर्टिस्ट है।

इतना ही नहीं वे मुसकान भी उरेहती हैं।

क्या उनसे जीने की कला की बात की जा सकती है। आखिर वह भी तो अपना जीवन जीती होंगी। रिबका को मैं पहचानता भी तो नहीं। यदि किसी से पूछ-पाछ कर वहाँ तक पहुँचा भी तो अपनी बात कहूँगा कैसे? कितना भद्दा लगता है। दूसरों का ज्ञान कभी-कभी हँसी का सहारा भी तो बन जाता है।

पहले पहल जब दिल्ली आया था, कास्मापालिटन के प्रति एक आकर्षण था। जाता था कभी-कभी। अगर कोई संगी-साथी मिल गया तो ठीक, नहीं तो अपने को अपने में ही खोजता घर चला जाता था।

कभी-कभी तो बहुत बोर होकर निकलता था। एक बार तो मेरे एक कवि साथी ने अपने एक कवि दोस्त से मेरा परिचय कराया। उन्होंने बदले में लगातार दो घंटे कविता नहीं, कहानी सुनायी।

मैं काउण्टर की ओर मुँह किए अकेले सोफे पर बैठा था। मेरे कवि साथी एक महाशय का हाथ पकड़े यूरिनल की ओर से मेरी ओर आते हुए दीख पड़े। बिना दुआ-सलाम के दोनों बैठ गये। परिचय हुआ— 'आप हैं कवि किंकर। अभी-अभी यूरिनल के पास वाले आदमकद शीशे के समीप मिले हैं'।

बातों का सिलसिला आगे बढ़ गया था। सवाल-जवाब चलने लगे थे—

'भई, यहाँ क्या कर रहे हो?'

उन्होंने बतलाया कि वह वहाँ मुँह धोने गये थे।

कवि किंकर अपने दोस्त की बात पर खीस काढ़ रहे थे—हँ हँ हँ आप भी क्या कहते हैं। कॉफी का आर्डर देते ही कवि किंकर बोल उठे —'तकलीफ की क्या जरूरत है ? मैंने अभी-अभी कॉफी ली है।' तब तक मेरे साथी कवि कहने लगे—'अच्छा तो आप कॉफी पीकर मुंह धोने गये थे।'

वे झट से पैंतरा बदल कर कहने लगे 'और आपका परिचय तो अभी कराया नही। आप 'रूपा' नाम की फिल्मे मैगज़ीन का सम्पादन भी करते है। मैगज़ीन वम्बई से निकलती है। यह यही बल्लीमारान मे रहकर उसका सम्पादन करते है। अच्छा सरकुलेशन है।'

कवि किंकर से नहीं रहा गया। वे बोले—'मै कविता लिखता था पहले। जब से देखा कि चीन और पाकिस्तान के छोटे-छोटे मामलों पर कविता लिखी जा रही है तब से मैंने लिखना बन्द कर दिया है।'

'कविता लिखना कितना आसान हो गया है। अनुवादक भी आज-कल कवि बने फिरते हैं। पत्र-पत्रिकाओं को खून पसीने वाला मैटर क्यों अच्छा लगेगा!! समय, समय, समय...इसी से बनता है 'सामयिक'। बस समझ लीजिए बरसाती मेढकों की टर्र-टर्र और इन अनुवादक कवियों मे क्या फर्क है!'

'जैसे सीलन पाकर तिलचट्टे निकल आते हैं, कर्ज और उधार की नमी में वैसे ही नकली साहित्यकारों और पत्रकारों की बाढ़ आ जाती है।'

'और इसीलिए अब मैं कहानी लिखने लगा हूँ।'

निर्लिप्त भाव से सब कुछ सुनता जा रहा था इतने में कॉफी आ गयी। बेयरे के आने से उनके ऊपर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। कहानी की बात सुनकर मुझे कविता से मुक्ति मिली। पर यह सोचना ही व्यर्थ था। कवि किंकर ने थोड़ा रुख बदला। प्याले को अपनी ओर खिसकाया और बोले—'रूपा' के लिए अभिनेत्रियों के इण्टरव्यू लेते-लेते अनेक प्रकार के अनुभव प्राप्त करके अब मैं कहानी लिखने लगा हूँ। कहानी—जीवन की कहानी, दर्द की कहानी। कहानी द्वारा अपने अनुभव कह लेता हूँ।

कहीं कोई अड़चन नहीं आती।'

किंकर का कवि कथाकार में बदल गया। रजिस्टर रूल कागज का एक पुलिंदा निकालते हुए उन्होंने कहा—'अभी-अभी नये अप्रोच के साथ एक प्रयोग किया है। यदि आप इज़ाज़त दें तो सुनाऊं।'

यह कह कर बिना मेरे उत्तर की प्रतीक्षा किए पुलिंदा बंद करके रख दिया और कहानी कहनी शुरू कर दी।

अब याद नहीं आ रहा है कि उस नई कहानी में उन्होंने क्या कहा था पर उस कथाकार की स्मरण शक्ति मुझे अभी तक याद है, लगातार दो घंटे बोर होने के बाद भी। उनकी आयु से उनका अनुभव बहुत बड़ा था। ठीक ही कहते थे वह।

उस घटना के बाद जब कभी कास्मापालिटन में बैठने की बात सोचता हूँ तब किंकर जी की याद से भयभीत हो जाता हूँ। कास्मा-पालिटन और रिबका के नाम उन दिनो साथ-साथ लिए जाते थे। इस चर्चा के प्रति मेरे मन मे आकर्षण था इस विश्वास के साथ कि कभी-कभी स्थिति उलटी हो सकती है। मेरे विश्वास बदल सकते हैं, मैं बदल सकता हूँ और यह दुनिया भी तो बदल सकती है। रिबका से मैं कभी नही मिला था पर कभी-कभी तो मन को ऐसा लगता था कि कई बार मिल चुका हूँ।

जितनी बाते रिबका के बारे में मैने सुनी थीं सब पर विश्वास करना असम्भव था। तिल को ताड़ पेण्ट करने वाले लोगों ने ईथर की लहरों पर मनमाने स्वर बोल दौड़ाए थे। इसे उनकी उदारता ही कहिए और कहने-सुनने के मामले मे प्रायः हर औसत आदमी उदार होता है। कभी कोई कंजूसी नहीं करता।

छोटे दरजे में पढ़ते समय आर्ट के प्रति मेरा अनुराग देखकर एक बार चश्में के नीचे से देखते हुए पंडित जी ने कहा था—'कलाकार होगा यह लड़का ? क्या मजाक किया था उन्होंने। हिन्दुस्तान में किसी भी लड़के के भविष्य का पता लगाना कितना कठिन है।

मैं टेढ़े-मेढ़े राधा-कृष्ण बना लेता था। टैगोर के रेखाचित्र अवस

करके साथियों से बतलाता था कि देखो कितना अच्छा चित्र बनाया है। अपने अन्दर यह भाव चिपकाए रहता था, कि 'तुम ऐसा चित्र नहीं बना सकते।' कैसा-कैसा सोचता था मैं। मुझे खूब याद है एक बार मैंने बगुला भगत की तस्वीर बनायी थी। नीचे लिख दिया था 'बगुला भगत' जिससे लोगों को उसे पहचानने में कोई कठिनाई न हो। आदमी और औरत के चित्र मैंने बनाए थे वे ब्रह्मा की सृष्टि से मिलते-जुलते नहीं थे। हाथ-पैर टेढ़े हो जाने पर, मुंह-नाक तिरछी बन जाने पर मेरे ऊपर कोई प्रभाव नहीं पड़ता था। निर्विकार भाव से मैं अपनी रचना करता था। उस रूप रंग की सृष्टि मेरी अपनी थी इसीलिए कोई कुछ कहता नहीं था। यदि कहीं कोई औरत यह जान पाती कि मैंने उसकी आँखें थोड़ा ऊपर नीचे बना दी हैं तो मेरे प्राण खतरे में पड़ जाते।

पुराना सभी कुछ जहाँ का तहाँ छूट गया था। बची थी केवल हल्की सी धूमिल स्मृति। नये के चक्कर में पुराना भूल भी तो जाता है।

मेरा बाल कलाकार अनेक कला-कृतियाँ बना मिटा कर स्वयं मिट गया था। उसने जन्म दिया था एक किरानी को जो दफ्तर से प्रेम करता है क्योंकि जीवन मे अब ऐसा कुछ नही बचा था जिससे वह प्रेम करता, जिसे वह चाहता।

महीनों का नहीं, वर्षों का अन्तराल रुकावट बन कर आ गया इस-लिए बचपन की करतूतें भूल गयीं हैं।

भूलना मनुष्य का स्वभाव है। अपने इस स्वभाव को स्थायी रखकर वह बहुत कुछ पा जाता है और कुछ न कुछ खोता भी है। पाने का पता तो मुझे नहीं है पर खोने की कथा शायद ही भूल पाऊँ।

कुछ चरित्र तो हमेशा याद रहते हैं पर मैं बहुतो को भूल जाता हूँ या यों कहिए कि जान-बूझकर ऐसा करता हूँ। भूँकने वाले कुत्ते भी तो भुला दिए जाते हैं।

कला के अनेक रूप-बंध, कागज की नाव, पन्नियों की झडी, फिरि-

हरी का नाच, सरसों के पौधों को विद्यार्थी मानकर उनका अध्यापन, किसी अपराध मे छड़ी की तलवार से उनके सिर साफ। यह सब रिबका की चर्चा सुनकर फिर याद आ गया था। मेरा बचपन स्वयं कलाकार था। यौवन की बात नही करता; क्योंकि इधर कई वर्षों से ब्रुश हाथ मे थामने का अवसर नहीं मिला। अन्दर से कोई टीस नहीं उठी थी।

बचपन बीत गया।

उसकी विशेषता समझ मे आ गयी। इसी प्रकार यौवन की विशेषता भी जान लूगा। कला की बात को लेकर अनेक विचार तरंगें मेरे हृदय मे उठ रही थी। रिबका के कलाकार की विशेषताएँ मेरे लिए सुनी-सुनायी थीं। प्रक्रिया में भी तो कला जन्म लेती है। शौकीन व्यक्ति भी कला को जन्म देता है। देता होगा। सेक्स की भूख मिटाने के लिए भी कला को आधार बनाते है लोग। नग्न, अर्ध-नग्न चित्रों के रेखांकन मे यही बात तो पायी जाती है। कहते हैं लोग कि किसी भी आब्जेक्ट का रेखाचित्र रिबका देखते-देखते खीच लेती है। अनासक्त भाव से उनका यह सारा काम होता है। कोई राग-द्वेष नही दीख पड़ता। चेहरे पर तनाव देखकर लोग कुछ भी सोच सकते है।

मेरे सामने समस्या है कि रिबका से मिला कैसे जाय।

ऐसा कुछ नहीं था कि मैं अपने से अपरिचित था या जानबूझ कर अपने को नही समझ पा रहा था। इन्सान होने के नाते दुनिया समझ में आती थी और खूब आती। इतना सब होने के बावजूद भी कोई अन्दर से प्रश्न करता था—'तुम तस्वीरें क्यों पसन्द करते हो ?'

तुम्हें कोई जिन्दा आब्जेक्ट नही मिलता क्या ? मै इन प्रश्नों का उत्तर खोजता हूँ। खोजता हूँ और जैसे बहुत दिनों से खोज रहा हूँ। कहाँ तक खोजना पड़ेगा। इतनी खोज !! आदमी ने दानापानी भी न खोजा होगा इस तरह।

अपने साथियों में या दफ्तर के किरानियों में इस प्रसंग को लेकर जो व्यंग्य विनोद होता था उसे मैं बड़े ध्यान से सुनता था। चर्चा करने वाले मेरे मन की हलचल को नहीं जान पाते थे। यदि ऐसा हो जाता

तो मेरी जिज्ञासा में कोई फर्क नहीं पड़ता।

एक शाम को साढ़े सात या आठ के आसपास मैं कास्मापालिटन में पूर्व की ओर की दीवार के सहारे लगे सोफे पर बैठा था। सामने दूसरी ओर मैगज़ीन और पाकेट बुक्स का एक स्टाल कई आदमियों और औरतों से घिरा दीख रहा था। कॉफी के प्याले से ध्यान हट कर उधर चला जाता था। स्टाल पर जानकार लोग गाँजा और चरस भी खरीद लेते थे। काफी देर से मैं देख रहा था—एक युवती सिर झटका कर छोटे बालों को छितराती हुई स्टाल के दाएँ बाएँ घूम रही थी। लेना-देना कुछ था नहीं क्यों कि उसे ऐसा करते पन्द्रह-बीस मिनट बीत चुके थे। उलट-पुलट कर तस्वीरें देखी जा रही थीं। खूब परेशान होकर कैश काउण्टर के पास चार कुर्सियों वाली मेज के पास एक कुर्सी पर बैठती हुई दूसरी पर अपना सामान रख दिया।

मेरे मस्तिष्क को एक झटका लगा था। सोचा—यह रिबका ही न हो। पर वह चंचल काया मुझे कलाकार नहीं लगी। कलाकार की दृष्टि में एक जो पैनापन होता है उसका उस युवती में सर्वथा अभाव जैसा था। वह तो स्वयं एक कलाकृति जैसी थी।

आँखों की सर्च लाइट दाहिनी ओर से पूरे हाल पर डालते हुए मैंने देखा कि मेरे सोफे के पास ही अलग दो युवतियाँ बैठी हैं। एक तो सोफे पर है दूसरी इसके सब्जेक्ट के रूप में सामने है। लगता था कोई विद्यार्थी मनोविज्ञान का प्रयोग कर रहा हो। सब्जेक्ट की पोजीशन में बैठी हुई लड़की की आयु ज्यादा नहीं थी। उसका आश्वस्त भाव देखकर लगता था जैसे वे आपस में एक दूसरे की रिश्तेदार हों।

उस कंचन केशी तरुणी के बैठने की स्थिरता मनमोहक थी। हिलती-डुलती न थी। स्थिर वृत्ति का रहस्य मैं समझ न सका था।

मैं अपने से ही प्रश्न करने लगा।

मन चाहा उत्तर पाकर फिर प्रश्न कर लेता था।

स्थिर शरीर वाली लड़की के सामने बैठी युवती कभी तो अपलक उसके मुंह को देखती और कभी नीचे सिर किए अपनी जाँघों के बीच में

स्थित किसी वस्तु पर ध्यान गड़ा देती थी। स्थिरता और अस्थिरता के बीच यह सारा व्यापार चल रहा था। लड़की की बैठने की शैली इतनी मनमोहक थी कि आँखें टाले नहीं टलती थीं।

पूरे हाल के कई लोग एक दूसरे की आँख बचाकर यह दृश्य देख लेते थे। सभ्य समाज में एक दूसरे की नुक्ता-चीनी अच्छी नहीं मानी जाती।

उन लड़कियों में कोई परायापन नहीं झलकता था।

क्या कला भी पराये देश की होती है!!

मैंने कभी यह परायापन महसूस नहीं किया।

फिर क्या रंगभेद का परायापन होता है!! होता होगा, मुझे पता नहीं। आदमीयत के नाम पर और कला के क्षेत्र में परायेपन की कोई स्थिति नहीं बनती। मैं नहीं सोच पाता हूँ ऐसा।

मेरा ध्यान उस तरुणी के लिबास पर गया। कटि देश के नीचे नीले रंग की मोटी जीन का पैण्ट था जिसका उड़ा हुआ रंग पुरानेपन की सूचना दे रहा था। कहीं-कहीं तो नीलिमा गहरी हो चली थी; किन्तु कुछ भागों में सफेदी का प्रभाव झलक रहा था। पैण्ट में नीचे मोड़ नहीं थे। बिल्कुल सपाट, रेतीली भूमि जैसा। टखने दिखाई नहीं पड़ रहे थे।

पैण्ट के ऊपर उसने कुर्ता पहन रखा था लखनऊ का। बाहें ढीली और कलाई से चार-पाँच इंच छोटी। उतनी दूर से मुझे मोटा मलमल लग रहा था। सामने की एक-दो बटनें खुली थीं जिससे कटाव का एक हिस्सा थोड़ा सा खुल गया था जैसे यौवन बाहर आने के लिए दरवाजा खोल रहा हो। शरीर के अंग मुक्त और निर्बन्ध थे। कोई कसाव नहीं, कोई तनाव नहीं। भोला सौन्दर्य जिसके पहरुवे के रूप में उसके चंचल नेत्र।

ग्रीवा के ऊपर का अंग नैसर्गिक सुषमा से भरा हुआ था। मेरी आँखें उस पर टिक गयी थीं। पास कोई था नहीं। न तो जोशी था और न कोई दूसरा साथी। जोशी की डींग तो सुनने लायक होती है

जब किसी औरत की चर्चा छिड़ती है। उस समय पौरुष के पहाड़ पर बैठकर बातें करने लगता है। असमर्थ, निठल्ला कहीं का।

प्रथम दर्शन में आँखें मुखमंडल की वीथियों में ही उलझी रह गयी थीं। सौन्दर्य की सीमा पर पहुँचने के बाद धीरे-धीरे उन्हें नीचे उतरना पड़ा।

एक इच्छा, एक दर्शन, एक इम्प्रेशन।

आपको दुनिया भर के प्रपंच से मतलब नहीं है। मन माने की बात है। अगर अल्लाह ताला कभी आपके नसीब की कुंडी खटखटाएँ और किसी को देखना पाप लगे, ज़ुल्म लगे तो आप कभी न देखें। मैं भी आप के नाम पर 'या खुदा' कह कर शान्ति-कामना करूँगा।

हाँ तो मैं कह रहा था कि उस लड़की के सामने जो युवती उसके शरीर के सूक्ष्म निरीक्षण में तन्मय थी उसके क्रिया कलाप का पता मुझे तुरन्त नहीं लग पाया। अधिक देर नहीं लगी थी कि मैं जान गया था कि युवती उस स्थिर तन लड़की के फेस का स्केच ले रही है। जाँघों के सहारे एक प्लेट है जिसपर चित्रफलक लगा हुआ है। एक छोटी और मोटी पेंसिल युवती के हाथ में है जो निर्बाध रूप से फलक पर नाचती है।

किसी को लगातार घूर-घूर कर देखते रहना कितनी बड़ी गुस्ताख है। वहाँ बैठने मे मुझे अच्छा लग रहा था। बेयरे से कहकर कॉफी मँगा ली थी मैंने। कॉफी—मेरे अकेलेपन की संगिनी, मेरे आकर्षण का केन्द्र बिन्दु, मेरे विकर्षण की राहत।

कॉफी सिप करते हुए मैं दो काम कर रहा था—एक तो उन युगल छवियों को देख लेता था और दूसरे चिन्तन के थपेड़े खाता हुआ सर्पिल विचारों की लहरों पर नाचता था।

मन में इतने प्रश्न उठ रहे थे कि उनका भार वहन करना आसान नहीं था। अपने से उस वक्त भयभीत नहीं था, क्योंकि स्वयं एक बड़ा प्रश्न जो था जिसका उत्तर मुझे कहीं मिल नहीं रहा था।

अगर कोई युवती यह जान जाय कि कोई उसे देख रहा है तो वह

अपने यौवन की निधि को सहेजने सम्हालने लगती है। यदि उसके पास कुछ है तब तो कोई बात नहीं पर पास कुछ न होने से एक अनोखी स्थिति सामने आ जाती है।

किसी भी युवती से यह संसार कभी निराश नहीं हुआ। उसका यौवन, रूप, साज-सज्जा, कमनीयता, नर्मज्ञता, बाँकपन और सेक्स की अपील आदि में से कुछ न कुछ तो अवश्य होगा। और इन्हीं तत्त्वों पर आदमी जान देता है, मरता है।

अधिकांश युवतियाँ इस तथ्य से परिचित हैं। गुणों को पूछने वाले लोग कम हैं। एक दूसरा पक्ष और है। किसी युवती ने क्रिकेट के खिलाड़ी को लवर घोषित करके उससे अँगूठी पहन ली, किसी ने तैराक की बाहों में कस जाना पसन्द किया, कोई मिलिटरी मैन की ताकत पर रीझ गयी, किसी को पत्थर के समान सख्त पुरुष-शरीर चाहिए और किसी को मक्खन के समान मुलायम हीरो चाहिए। पर आम पसन्द सख्ती की है, कठोरता की है, पुष्टता की है। गुण, विशेषता और कला पर बल देकर अपना हीरो या प्रेमी चाहने वाली युवतियों की संख्या बहुत कम होगी।

युवती को शिवेलरी चाहिए शिवेलरी।

पौरुष चाहिए जिसकी उसे तृष्णा है, प्यास है। जिसके अभाव में वह नागिन बनकर फुंकार सकती है, जिसकी सम्प्राप्ति में वह समर्पण कर सकती है।

इस तरह की बातों का वहाँ सोचने का क्या प्रसंग था। किसी के इस सवाल का कोई जवाब मेरे पास नहीं होगा।

देखा!! वह क्या कर रही है!! सुना!! ग़जब हो गया। ऐसे कुतूहल वाले स्वर दिल्ली के फैशन में कम हैं। किसी के प्रेम से दूसरे किसी को कोई मतलब नहीं रहता। इतना ही नहीं, आत्महत्या से भी कोई प्रयोजन नहीं होता। यह सब परदेशी प्रभाव है। कभी कभी तो यह तटस्थता खल जाती है। वैसे यदि कोई दुर्घटना हो जाय तो लोग दौड़ पड़ते हैं, निरपेक्ष नहीं रह पाते। कास्मापालिटन में उस युवती

आर्टिस्ट को देखकर जोशी वाली बात पुनः याद आ गयी थी। उसके साथ ही अपना उत्तर भी दिमाग़ में कौंध गया था। मैंने कॉफी का दूसरा कप भी पी डाला। उधर आर्टिस्ट का काम भी पूरा हो गया था। लड़की उस सीट से उठ गयी थी। शायद अब वह अपनी माँ के पास बैठी थी।

उसके चले जाने के वाद वह युबती अपना सामान बैग में रखने लगी। बैग...कपड़े का, राजस्थानी कढाई वाला कंधे पर लटकाने के लिए। बैग मे रखी वस्तुओं का कोई क्रम नही जान पड़ता था। बेतरतीब रखी हुई सामग्री में रुमाल सब से ऊपर दिखायी दे रहा था।

मुझे ऐसा लगा कि वह युवती आर्टिस्ट थक गयी है। थकान की छाया उसके मुख पर साफ झलक रही थी। बालों का रूखापन व्यक्तित्व की स्वाभाविक लापरवाही को प्रकट कर रहा था। चंचल नेत्रों की चपलता गंभीर हो चली थी। वह अपनी सीट से उठ गयी और काउण्टर के पास वाले सोफे पर बैठकर बेयरे के आने का सकेत किया।

आदाब की भूमिका में अपना सारा जीवन खपा देने वाला बेयरा आर्टिस्ट के समीप जा कर थोड़ा झुक गया था। इसलिए नहीं कि वह ग्राहक की कद्र करता है बल्कि ऐसा करने के लिए मालिक का हुक्म है। रेस्त्राँ की शान बढ़ती है। दूसरों का पेट भरने वाले बेयरे ने अपनी रोजी बचाने के उपाय याद कर लिए थे, रट लिए थे। युवती ने उसके कान मे कुछ कहा था। पाँच मिनट बाद जब वह लौटा तो एस्प्रेसो लेकर। उस युवती में रिबका होने की सम्भावना पर थोड़ा विश्वास किया था, बस यों ही।

कॉफी के कप पर वह युवती ऐसे झुकी थी जैसे मटमैले तरल पदार्थ में अपनी सूरत देखना चाहती हो। इस कल्पना को अपने दिमाग में लाकर मैं स्वयं लज्जित हो गया था। आज आप से कह रहा हूँ, कभी किसी से नहीं बतलाया।

कॉफी सिप करती युवती की ओर लगातार देखना मेरे बूते का नहीं था। लोग क्या कहेंगे !! समझेंगे—'कितना क्षुद्र है यह !!'

रेस्तराँ में बैठना भी नहीं आता। पर ऐसा नहीं है। न तो लोगो का देखना बन्द होता है और न कहना। दोनों साथ-साथ चलते रहते हैं।

कास्मापालिटन की भीड़ में लोग एक दूसरे को ताक-झाँक भले ही लें, किन्तु कोई किसी से खास मतलब नहीं रखता। लोग आते-जाते रहते हैं। दिल को बहलाने का यहाँ का नुस्खा कभी भी कम नहीं हुआ।

सोचा था कि उस युवती से नाम पूछ कर मन के कुतूहल को शान्त कर लूंगा, पर ऐसा नहीं किया। दो चार मिनट के अन्तराल से उसे देखकर आँखें मेज पर गड़ा लेता था। कभी 'इम्प्रिण्ट' के पन्ने पलटता था, कभी कलाकृति की टेढ़ी-मेढ़ी रेखाओं के सहारे बहुत दूर पहुँच जाता था। अपनी नाजुक स्थिति पर दया का अनुभव हो रहा था। दाहिने हाथ की तीन अँगुलियों से कप थाम कर युवती कॉफी सिप कर रही थी। शायद किसी का ध्यान उधर न रहा हो।

मैं धीरे-धीरे निश्चय कर रहा था कि उसके पास जाऊँ। समय काफी बीत चुका था। रिबका से मिलने वाली जिज्ञासा ने समय की ओर से ध्यान खींच लिया था।

अनिश्चय और निश्चय के बीच का समय जल्दी नही बीत पाता है। ऐसे अवसरों पर मै बहुत परेशान हो जाता हूँ। यह क्या कि किसी काम को करने के पहले घंटे भर सोचना। जल्दी निर्णय लेने की हिलोर मन में उठती है पर ऐसा हो नहीं पाता। इसका कारण मुझे खोजने पर भी नहीं मिलता।

फिर अपने पर ही खीझना पड़ता है।

कितना निरीह हो जाता है इंसान !!

रेस्तरां में इधर-उधर देखा तो लोग अपनी ही धुन में मस्त थे। कोई बेयरे से बिल मँगवा रहा था, किसी का आर्डर बुक हो रहा था, कोई आर्डर की प्रतीक्षा में था। तमाम लोग दिल के दर्द को सिगरेट के छल्लेदार धुएँ के साथ उड़ाकर हल्का महसूस कर रहे थे। व्यस्तता

सजग थी पर एक मेज के साथ दूसरी का लगाव बहुत कम दीखता था। कभी-कभी पास होने पर भी दूरियाँ बढ़ी हुई होती है।

□ □

रेस्तराँ के बाहर बीस-पचीस आदमियो का समूह नारे लगा रहा था—'होटल में हड़ताल होगी', हमारी माँगे पूरी हो', दुनिया के मजदूरो एक हो', 'धाँधागर्दी नहीं चलेगी', 'जोकें हमको चूस रही है', 'मेहनत हमको प्यारी है।' मैनेजर ने डर कर गेट कीपर को सजग कर दिया था। बेयरों को मना कर दिया था कि बाहर कोई ताके-झाँके नहीं। यह तो तमाशा है, रोज रोज होता रहता है। उसे चिन्ता थी कि उसके घर मे भी कहीं आग न लग जाय। बनी बनायी इज्जत माटी मे मिल जाय। नारे लगाने वाला समूह लोकल होटल के बेयरों का था। वे चाहते थे कि कास्मापालिटन का स्टाफ भी उनकी हड़ताल मे साथ दे। उनकी लड़ाई उचित थी पर उसे सही कहने वाले तो बहुत कम थे। महानगर की सभ्यता ऐसे ही होती है।

मै भी तो मजदूरी करता था। मजदूरों के प्रति सहानुभूति थी। नारे हवा में उड़ गये थे पर मेरे दिल में हलचल थी। एक तो पहले की उधेड़बुन और दूसरे झकझोर देने वाला यह दृश्य।

मेरी यह धारणा दृढ होती जा रही थी कि वह युवती रिवका ही थी। बाहर सुख-दुःख, खिन्नता-प्रसन्नता और आवागमन का नाटक हो रहा था पर मेरे मन मे उथल-पुथल थी। पीछे से किसी ने मेरे कंधे पर हाथ रखकर कहा—'हलो मिस्टर कपूर...।' मेरे सपने एक झटके से बिखर गये। मुड़ कर देखा तो पास जोशी खड़ा था। मुझे पता नहीं चला। किस दरवाजे से वह अन्दर आया था, मैं देख नही पाया। मेरे संकेत पर वह सामने से थोड़ा हटकर बैठ गया था। आदत है उसकी। हमेशा नये मैटर की टोह में रहता है। फिलासफर की तरह एक-एक वस्तु की छानबीन करता है। उसका निरीक्षण बहुत ही सूक्ष्म होता

है पर सदैव नही। मेरी समक्ष में तो वह मूर्ख ही है। बुद्धि से उसका रिश्ता बड़ी दूर का है।

मेरा ध्यान जोशी पर टिक गया था।

फार्मल बाते शुरू हो गयी थी। सोचने लगा कि अगर रिबका यही होंगी तो इन्हे देखते ही जोशी की वाणी कदम-ताल करने लगेगी। हो सकता था जोशी मेरा परिचय कराने लगता या फिर परिचय की बात ही करता।

माध्यम का परिचय मुझे बिल्कुल नही रुचता। मैं बहुत घबड़ाता हूँ। और जोशी जैसा बातूनी। कहो मुझे बोलने ही न दे। स्वयं अपनी हाँक कर दूसरे का नाम ही न ले।

ऐसा कुछ भी नही हुआ। वह युवती अब जा चुकी थी। मेरी जिज्ञासा का उबाल शीतल हो गया था। जोशी के पास से अचानक न उठ सका था। उसे अच्छा न लगता। संकोच कभी-कभी व्यक्तित्व मे चार चाँद लगा देता है पर ऐसा भी होता है कि संकोच के करण चाही हुई चीज समीप होने पर भी खो जाय।

मेरे जीवन म खोने वाले प्रसंग अधिक आए है। संकोचवश किसी 'महान' व्यक्ति के सम्मुख अपना मुँह नही खोला जिससे कोई उपलब्धि तो नहीं ही हुई और ऊपर से अपना अस्तित्व खतरे मे पड़ गया।

मुझे खोया हुआ देखकर जोशी कहने लगा—

'कल तुमने 'चित्रालोक' की पेण्टिग्स देखी' ?

मैं कुछ नहीं बोला। वह कहता जा रहा था—'साहब नयी कला ने तो पुराने कलाकारो का जनाजा ही निकाल दिया। उन्हें कौन पूछता है अब।'

झुँझलाकर मैंने कहा—'मेरे समझदार भाई, तुम दुनिया की चिंता छोड़ो, अपनी बात कहो। तुमने नयी कला को कितना समझा है !!

क्या सचमुच वह कुछ समझता है।

हर काम के लिए दूसरों की ओर ताकना ठीक नहीं होता। मैंने आगे कुछ नहीं कहा।

जोशी का मूड बातें करने का नही था । काफी देर से बैठा-बैठा मैं भी ऊब गया था । आगे न तो कोई बात बढ सकी थी और न कॉफी का आर्डर ही दिया गया था ।

प्रात:काल जब मैं सोकर उठा तो मेरे दिमाग पर तो दो बातो का बोझ था । रिबका वाली बात कुछ पुरानी पड़ गयी थी । क्षणों की पर्तों के नीचे वह झलमला रही थी, किन्तु 'चित्रालोक' जाने की बात ताजा थी ।

अभी कल ही तो जोशी ने संकेत किया था ।

जोशी बड़ा घुमक्कड़ है । अपने पालतू आँकड़ेबाजों से सरकार यदि घुमक्कड़ों की गिनती कराये तो वह घुमन्तू जातियों का भी नम्बर काट दे । देश दुनिया तो उसने कम देखी है पर दिल्ली का नया-पुराना-पन उसे मालूम है । उसकी आँखों के कैमरे ने जगह जगह के चित्र लिए है । उससे आपको बूढ़ी जामा मस्जिद का ताजा चित्र मिल जायेगा,

नये पुराने गेटों की तस्वीरें मिल जाएँगी। नयी दिल्ली की निर्मम भागती हुई तस्वीर होगी, पुरानी दिल्ली का बासीपन होगा।

उस दिन की धूप अच्छी नहीं लग रही थी। टेरेस के पास कुर्सी पर बैठा था। कोई बात पकड़ में नही आ रही थी। गहराई में जाकर जैसे कोई चीज खोज रहा हूँ। पर यह व्यर्थ का प्रयास था। इस प्रकार की व्यर्थता ढोता रहता हूँ। दफ्तर मे चारों ओर यही व्यर्थता तो है। होगी, मैं कर ही क्या सकता हूँ।

सूर्य की सीधी आती हुई तिरछी किरणे नंगे शरीर मे चुनचुनाहट पैदा कर रही थी। हरीतिमा युक्त वनाली की चोटी को चूमने वाले आसमान का मुँह उतरा हुआ लग रहा था।

मेरे सामने धर्मराज ने स्टूल रख कर उस पर कॉफी का प्याला रख दिया था। कुछ बोला नही। सोचा होगा जैसे मैं कुछ बिसूर रहा हूँ। दस-पन्द्रह मिनट बाद वह अखबार भी लाया। उसे अखबार स्टूल पर नही रखना पड़ा, क्योंकि मैं कॉफी पीने लगा था। विचार-शृंखला टूट जाने से धर्मराज को भी आसानी महसूस हुई। हाथ मे अखबार थमा कर चला गया था।

'चित्रालोक' मैं कई बार जा चुका हूँ। वहाँ का हाल मुझे याद है जिसमें अधिक तो नही किन्तु दो-ढाई सौ चित्र एक साथ लगाये जा सकते है। ऊंची ऊंची दीवारों पर आदमी की पहुँच के अन्दर चित्रों की पंक्ति रहती है। प्राय: आर्टिस्ट की इच्छा से सजावट का उपक्रम बनाया जाता है। अधिक भीड़ वहाँ नहीं देखी मैंने। ठीक भी तो है जिसके पेट मे रोटी न हो उसे कला का दर्शन अच्छा नही लगेगा।

□ □

मेरा दफ्तर हवाई चक्कियों के समान भयभीत करता रहता है मुझे। मैंने देख-परख कर जान लिया है कि जब-जब कला के मन्दिर में प्रवेश करने की बात सोची है, दफ्तर का भूत सामने आ कर खड़ा हो

गया है । डर जाता हूँ उससे । मेरी कामनाओं का रंग बिखर जाता है । इच्छाओं के पहाड़ टूट जाते है । आसमानी दुनिया से नीचे उतर आता हूँ । चुपचाप आदमियों की भीड़ के समुद्र में अपने अस्तित्व की बूंद को मिलाने के लिए तैयार हो जाता हूँ । आप मेरे प्रति कोई सहानुभूति न प्रकट करें; क्योंकि मेरी यही नियति है ।

सबेरे का सूर्य बांस भर ऊपर आ गया ।

अखबार में कोई नयी बात नहीं थी । मिनिस्टरों की प्रशंसा में बडे टाइप का शीर्षक बनाया गया था । एकाध स्थल पर पक्का वायदा किया गया था—'अब तक जो हुआ सो हुआ आगे हमें मजबूत बनना है । बस अगली पंचवर्षीय योजना तक और प्रतीक्षा कीजिए । सुधार और परिवर्तन होने में समय लगता है । जादू की लकड़ी घुमाकर कुछ भी नहीं किया जा सकता ।'

अब तो मैंने योजना की मुर्गी के अण्डे को गिनना बन्द कर दिया है इसीलिए वायदे वाले शीर्षक मेरी आँखों के सामने से गुजर जाते हैं । न तो उन्हें मैं पढने की कोशिश करता हूँ और न समझने की ।

अखबार पढना बन्द कर दिया । मैटर भी तो खत्म हो गया । इतने सारे विज्ञापन कौन पढ़े । ये अखबार वाले भी विज्ञापनों से अपना उल्लू सीधा कर लेते है ।

धर्मराज आ गया था ।

कहो क्या बात है ?

दफ्तर से चपरासी आया है ।

धर्मराज के चेहरे से लगा कि वह उत्तर चाहता है । उसने तो मात्र सूचना दी, कोई सवाल तो किया नहीं था ।

उससे कागज-पत्र लेकर मुझे दे जाओ ।

बिना कुछ कहे धर्मराज नीचे चला गया था । मेरी उधेड़बुन समाप्त हो गयी थी । सामने आ गयी थी दफ्तर की दानव जैसी इमारत और फाइलों का अंबार । कला की खुमारी उतर गयी थी । काम, काम, काम । चौबीस घण्टे काम । सोते-जागते, चारों तरफ काम ।

निरलस भाव से उठकर मैं कमरे के अन्दर चला गया था।

फ्रेम में लगे हुए अपने ही चित्र को उठाकर कुछ क्षण देखता रहा और फिर रख दिया।

दिमाग़ की डायरी पर नोट हो रहा था—

'अब धर्मराज फाइल ला रहा होगा। उसमें पिन लगे हुए काग़ज़ के पन्ने होंगे। किसी किसी पिन ने तो चार पन्नों को अकेले नाथ रखा होगा। जैसे वह काग़ज के पन्नों से निकल कर मेरे मन को नाथ रही है। कोई नही देख रहा है। मेरे पुकारने पर भी कोई नहीं दौड़ रहा है। मैं अकेला हूँ। फाइल मेरे अन्तर्मन के साथ है जैसे'।

मैं पूरी तरह पिनों से घिर गया हूँ। नुकीली पिनें। एकदम ताजा, ताजा। कहीं किसी हिस्से में जंग का नाम व निशान नहीं।

लोहे की पिनें तेज नोंकों वाली जैसे छेद डालेंगी मेरे सारे शरीर को। दफ्तर की नुकीली पिनें।

इन्हीं पिनों से मैं कागज के एक एक पन्नों को एक में बाँधता हूँ। केवल एक पिन और साथ में नाथे हुए कई पन्ने...। क्या सभी को लगती होंगी ऐसी ही पिनें।

धर्मराज मेरी व्यग्रता को जानने की कोशिश करता है पर पर्सनल मामले में उसकी बोलने की हिम्मत ही नहीं पड़ती। जब वह आँख बचा कर अपलक मुझे देखने लगता है तब मैं जान लेता हूँ कि वह चेहरे के अक्षर बाँच रहा है।

जिज्ञासा मनुष्य को सक्रिय बनाये रखती है।

कभी-कभी तो ऐसा होता है कि मैं किसी किताब में उलझा रहता हूँ, इसी बीच धर्मराज आ जाता है। पर्दा उठा कर मुझे अपने काम में लगा देख कर लौट जाता है। उसे देखकर मुझे एक विकृत सी हँसी आ जाती है। अनोखा लड़का है। यह भी अपने काम में मस्त रहता है। कोई चिढ़ाए न तो बस काम करता जाता है, करता जाता है।

कमरे की उत्तर वाली दीवार पर एक ऑयल पेण्टिग टांग रखी है। कई वर्ष पहले की बात है। मेरा एक साथी था। जूनियर पार्टनर कह

लीजिए। वह मुझे बहुत चाहता था। दिन में कई कई बार मिलना होता था। तब एक छोटे शहर में रहता था। वहाँ जिन्दगी की आपा-धापी दिल्ली जैसी नहीं थी। अपने साथी के साथ घंटों बैठा रहता। समय के भागने का ध्यान ही न रहता। जब काफी देर हो जाती, दोनों उठकर अपने-अपने घर जाते। बिना एक के दूसरे को चैन न मिलती थी।

एक दिन अचानक खबर मिली कि वह कलकत्ते जा रहा है। अच्छा नहीं लगा मुझे। उसकी बात नहीं कह सकता। यही तो मेरे वश में है कि मैं अपनी 'कहानी आपके सामने रखूँ। जाते समय उस साथी ने मेरी डायरी से मेरा छोटा चित्र निकाल कर अपने पास रख लिया था।

उस दिन की साँझ कितनी मनहूस थी। मुझे कुछ भी अच्छा नहीं लग रहा था। इच्छित वस्तु के दूर देश चले जाने का संदेश गीले मन पर और चोट कर जाता है। और नहीं जाती ऐसी चोटें।

चलते-चलते उसने कहा था कि वह मुझे कभी नहीं भूलेगा। दूसरे दिन सवेरे उसने अपनी छोटी सिस्टर के हाथ एक लिफाफा मुझे भेजा था। उसके ऊपर कुछ लिखा नहीं था। अन्दर उसका चित्र था जिस पर नीली स्याही से लिखा था आलोक गंगोपाध्याय।

पन्द्रह महीने बाद।

मेरे नाम कलकत्ते से एक पत्र आया।

मेरे साथी,

तुम्हें पत्र लिखते हुए जाने क्यों आज आँसू थम नहीं रहे हैं। सब कुछ याद आ रहा है। प्रगति के पथ पर यद्यपि विगत का विस्मरण ही श्रेयस्कर है तथापि अनुरक्त हृदय जिसने क्षण-क्षण के राग रंजित अंतर बिम्ब संजोना सीखा है, इसे कभी स्वीकार न कर सका। और उसकी यह असमर्थता भी कम स्पृहणीय नहीं।

मैं संध्या समय इसी शुक्रवार को रेलवे स्टेशन पर मिलूँगा—साढे आठ के आसपास। प्लेटफार्म नम्बर एक पर तुम्हारी प्रतीक्षा। प्रिय

बन्धु, मैं मरुभूमि की नदी की भांति रास्ता भूल गया हूँ। शायद इसी लिए अब तुम्हारा साथ न मिल सकेगा। शेष मिलने पर।

□ □

शुक्रवार की शाम को दिए हुए समय के अनुसार मैं स्टेशन पहुँच गया था। ट्रेन पन्द्रह मिनट लेट थी पर आयी आधा घण्टा बाद।

मैं प्लेटफार्म नम्बर एक पर आगे की ओर दक्खिन के अन्त पर खड़ा था। उत्तर से ट्रेन आती हुई दिखायी पडती थी। आती है पूरब से पर स्टेशन पहुँचते पहुँचते रुख बदल जाता है।

दैत्याकार इंजिन धीरे-धीरे रुकने लगा। चाय वाले 'चारम-चारम' की आवाज गुजाने लगे थे। कुलियों की भागदौड और वहाँ का जन-रव मुझे बहुत अच्छा नही लगा।

ट्रेन का मुँह दक्षिण की ओर था। मैं इंजिन के पास वाली बोगी को देखता हुआ उत्तर की ओर बढ रहा था। दाहिनी ओर जहाँ गीना-प्रेस की दूकान है वहाँ पहुँच कर मैं रुक गया। आलोक कहीं भी दिखायी नही दिया।

बेकली बढ गई। कुछ क्षण के लिए मैं परेशान हो गया। सधा हुआ लक्ष्य पकड मे नही आ रहा था। मेरे बायी ओर सभ्य-असभ्य इन्सानों को ढोने वाली लोहे की गाडी खडी थी।

ऐसा आभास होने लगा कि आलोक से नही मिल पाऊँगा। हो सकता है वह इस ट्रेन से आया ही न हो। प्रोग्राम तो कैंसिल नही होना चाहिए। हो भी सकता है। स्थिति कभी-कभी काबू के बाहर हो जाती है। इतना बाहर कि आदमी उसे पकड नहीं पाता। मेरे साथ भी तो ऐसा ही होता है।

नही, नही, ऐसा कुछ भी नही है। प्रोग्राम मे परिवर्तन होता तो आलोक मुझे सूचना अवश्य देता। देता सूचना।

मामला शायद उसका अकेला नहीं था। परिवार के लोग भी तो साथ होंगे ही।

ALLAHABAD

अकेला आदमी !!!

अपने मन का राजा होता है। झूठ कहते हैं लोग। न राजा, न रानी कुछ भी नहीं होता। अगर कुछ होता है तो अपनी समस्याओं में उलझा एक कीड़ा। हाँ केवल कीड़ा, और कुछ भी नहीं।

धीरे-धीरे स्टेशन की नियान लाइट के राज में मेरी आँखों के सामने अकल्पित अन्धकार घनीभूत होने लगा था। परेशानी और बढ़ गयी थी।

मैं थक गया था। आँखें सजग थीं। चलते-फिरते चेहरों को पहचानती छोड़ती आगे बढ़ जाती थीं। बायीं ओर से आवाज आयी। कोई मिस्टर कपूर कह कर पुकार रहा था।

आँखें भीड़ में खोई हुई आवाज को खोजने लगी थीं। पीछे से आ कर आलोक खड़ा हो गया था। समय के एक लम्बे अवकाश के बाद हम लोग एक दूसरे से मिले थे। कहने के लिए दोनों के पास बहुत था पर पहले शुरू करने की समस्या दोनों के सामने थी। थोड़ी देर तक दोनों एक दूसरे को देखते रहे।

331187

आलोक गंगोपाध्याय।

आँखों पर मनोहर फ्रेम का चश्मा था। दृष्टि की तीव्रता जैसे पास खड़े व्यक्ति के हृदय में बेध जायेगी। निहारते-निहारते मैं उससे लिपट गया था। यह भेंट और रूप दर्शन अधिक मुखरित नहीं हो सका था। दोनों मौन होकर एक दूसरे को देखने में तत्पर थे।

संकेत पाकर मैं कम्पार्टमेंट के अन्दर गया। आलोक अपने परिवार वालों के साथ मेरा परिचय कराने लगा --

'यह मेरा माता जी हैं। अब भी मुझे मारता है। चाहता है कि दुनिया की सारी सम्पत्ति मेरे बेटे को मिल जाय'—आलोक मुस्कराया। मैंने उसकी माता जी को करबद्ध प्रणाम किया।

और यह हैं मिस्टर रमापद, मेरे छोटे भाई।

इनको टैगोर की पुस्तकों की पंक्तियाँ की संख्या तक याद है। हाँ, रसगुल्ला खाते समय यह संख्या भूल जाते हैं। हम लोगों के लाख पूछने

पर भी याद नहीं आती। जिस समय हलके मूड में आलोक यह सब कह रहा था, रमापद शर्माया सा मुझसे नमस्कार कर रहा था।

मैंने पूछा—और तुम्हारे पिता जी ?

वे तो मेरठ पहले चले गये हैं। उनकी फेमिली अब जा रही है जिसका संरक्षक मैं हूँ।

खिडकी के पास वाली सीट पर एक युवती बैठी कोई पुस्तक पढ रही थी। नाम नहीं जान सका पर पुस्तक बंगला की थी। सारी बातें बड़ी तेज रफ्तार से आगे बढ रही थीं। ट्रेन जाने का समय हो रहा था।

आलोक ने पुकारा—

'दीदी···ओ दीदी ! देख कपूर आए हैं।'

अरे, मैं तो पहचान ही नहीं पाया। यह तो शैलजा है, आलोक की बहन ! मेरे समीप आकर बड़ी शालीन मुद्रा में नमस्कार किया था। पास वाली सीट पर मैं बैठ गया था। वह बोली कुछ नहीं। ऐसे ही करती है वह। जब बोलना शुरू करेगी तो रुकने का नाम ही न लेगी। नहीं बोलेगी तो नहीं ही बोलेगी। अपनी-अपनी रुचि है। रुचियों का अलगाव भी कितना रुचिकर होता है।

आलोक अटैची से कुछ निकाल रहा था। उसकी जबान बंद नहीं थी। बोलता जाता था। किसी के ऊपर व्यंग्य कसता था, किसी की तारीफ कर देता था। विनोदी स्वभाव है उसका। केवल चिढ़ाने की दृष्टि से बहन का परिचय कराने लगा—

'यह है हमारी दीदी शैलजा गांगुली ! तुमतो इनका घर का नाम भी जानते हो। लो ताजा कर देता हूँ। अच्छा···नहीं बतलाऊँगा। नाराज न हो।

इनकी योग्यता, या विशेष योग्यता से तुम परिचित हो। मनोविज्ञान की एम० ए०—रूसो इनके आराध्य हैं और टैगोर गुरुदेव। मैंने कई बार समझाया कि रूसो बासी हो गया है। टैगोर पुराने लोगों की धरोहर है। दोनों आउट ऑव डेट हो गये हैं। बुर्जुआ कहीं के।'

अटैची से एक तैल-चित्र निकाला ।

मुझे कहने लगा—'देखो कपूर, तुम्हें यह चित्र चाहे पसन्द आए या न आए पर इसे मेरी भेंट के रूप में हमेशा अपने पास रखना। यह हमारी दोस्ती का प्रतीक है ।'

रूँधे गले ने जबान की आजादी पर रोक लगा दी । वह आगे बोल नहीं पाया था। माँ, भाई और बहन सभी देख रहे थे—मूक और शांत ।

ट्रेन की सीटी बज गयी । मैं जल्दी से नीचे उतरा । रमापद और शैलजा दरवाजे की छड़ पकड़े खड़े थे । आलोक मेरे साथ नीचे उतर आया था । ट्रेन धीरे-धीरे रेंगने लगी थी । कंपार्टमेंट में जाता हुआ आलोक कह रहा था—

'कपूर, इस चित्र में रंग मैंने भरे हैं। रेखाओं की भूल मेरी नहीं होगी । रंग का जिम्मेदार मैं हूँ । रेखाएँ दीदी ने खींची है—समझे ।'

ट्रेन की रफ्तार तेज हो गयी थी ।

तैल चित्र में रेखाओं का नाम व निशान ग़ायब था । रेखाओं का महत्व देखने की फुर्सत मुझे नहीं थी । शुरुआत की गयी होगी रेखाओं से । पर आलोक कहता है रेखाओं में रंग उसने भरा है। रेखाओं में कहीं रंग भरा जाता है ।

स्मृतियों का बोझ लिए हुए दोस्ती का प्रतीक लेकर मैं लौट आया था। रात में काफी देर तक नींद नहीं आयी । कैसे आती ! सबेरे सोकर देर से उठा था । मन का भारीपन सम्हालना मुश्किल था ।

रात को जब स्टेशन से लौट रहा था, बूंदा बांदी थी । वातावरण गीला था । रास्ते में मन को रोक नहीं पाया । इच्छा हुई कि चित्र खोल कर देख लूँ । पर रास्ते में यह सब ठीक नहीं था । यह भी कोई सभ्यता हुई । सारी दुनिया तेज रफ्तार से गन्तव्य की ओर भागी जा रही है । मैं मैन पुलर रिक्शे पर बैठा था । धीमी रफ्तार से थमी हुई जिन्दगी का भार ढो रहा था रिक्शेवाला । थोड़ी देर पहले तेज पानी बरसकर निकल गया था । बहुत तेज पानी ।

वातावरण में गीली-गीली धुंध सी छायी थी। सड़क के किनारे की रोशनियाँ कुहासे को चीर कर नीचे उजाला उतार रही थीं। मेरा मन आलोक की ट्रेन के साथ भागा जा रहा था। जब कहीं किसी रोड़े के कारण रिक्शे के पहिए पर असर पड़ता तो समस्त चेतना सिमट कर पहिए पर टिक जाती थी।

□ □

बीते दिनों की यादें भूल नहीं पाता हूँ। दफ्तर से कहीं तबादला होना नहीं है। जब कभी कहीं जाने की बात सोचता हूँ तो तैल चित्र को ले जाने की बात और पास रखने की चाह को दोहरा लेता हूँ।

आलोक की दी हुई पेण्टिग मैंने दीवाल पर टाँग दी है। धर्मराज उसी को दत्त चित्त होकर देखता है। पता नही वह क्या देखता है और क्या समझता है। पर देखता है और देखता रहता है।

चित्र में बैकग्राउण्ड पर हल्के रंगों से पेड़ की एक शाखा अधूरे रूप में बनी है। बाहर से उसका कोई आधार नहीं दिखायी देता। शाखा का मिलाप वृक्ष के तने से नहीं है। जहाँ शाखा को तने से मिलना चाहिए वहाँ फ्रेम की सीमा आ गयी है। सीमा के पास शाखा का रूप कुछ संकुचित सा है। शाखा का रेखांकन सीधा-सादा नहीं है। उसमें झुकाव है।

नीचे एक सुन्दर सा कालीन बिछा हुआ है। कालीन पर नेचर ड्राइंग का काम किया गया है। अनेक रंगों के परस्पर मेल से नये-नये शेड्स उभारे गये हैं। कालीन पर इस्लामिक कल्चर की वेश-भूषा से युक्त एक पुरुष अर्ध नग्न रमणी को अपनी गोद में लिए बैठा है। उसके सिर पर पगड़ी बँधी हुई है। दाहिने हाथ की टेक जमीन पर लगाए हुए है। रमणी का एक हाथ उसकी अस्त व्यस्त केशराशि में खोते-खोते बच गया है। दूसरा हाथ पुरुष की ग्रीवा को छूता हुआ उसकी पगड़ी तक चला गया है। कमर के नीचे का वस्त्र अपनी व्यवस्था त्याग चुका है। पुरुष का बायाँ हाथ रमणी की कमर का आवेष्टन करता हुआ नाभि तक

पहुँचा है। हथेली के स्पर्श का भाव नही प्रतीत होता। पर दूर से देखने पर हथेली मिली हुई दिखायी देती है।

कमर के ऊपर का भाग वस्त्र रहित है। नुकीले शख के आकार वाले उरोजों पर सँकरी पट्टी मात्र बँधी है। रमणी तन्द्रालस अवस्था मे है। आँखें बिल्कुल बन्द जैसी लगती है। सिर थोड़ा झुका हुआ है। पुरुष के ओठों की ओर उसके ओठ बढ़े हुए है। समर्पित व्यक्तित्व वाली उस चित्रित रमणी का घुटना पुरुष के टिके हुए हाथ को स्पर्श कर रहा है। दूसरा थोड़ा सा हटकर निस्पंद सा टिका है।

पास ही एक पुस्तक खुली है जिसमे कुछ लिखा है पर पढ़ा नही जाता। पुस्तक के पास ही मदिरा का एक पात्र रखा है। भारतीय स्वतन्त्रता की भांति वह रमणी शासक पुरुष को अगूरी पिलाकर स्वयं अचेत हो गयी है।

जोशी बार-बार उमर खैयाम की याद दिलाता है।

मेरी जिन्दगी के लिए यह है स्मृति प्रतीक ! आलोक गंगोपाध्याय की याद का एक खूबसूरत आधार।

एकाध बार चोरी छिपे जब धर्मराज को उस चित्र को देखते देखा, कुछ नही कहा ! कहता भी क्या ? कोई चीज अच्छी लगती है, उसे देखता है। रोकने का अर्थ हुआ कलाकार का अपमान।

□ □

मुझे पता है कि वह पेण्टिग उमर खैयाम की है पर जोशी बिना बताए नही रह सकता। बुद्धू कही का !!

अगर मैं उससे कहूँ कि मेरी प्रेमिका ने यह चित्र उपहार में दिया है। इतना ही नही, मेरे चित्रों को अलबम में लगाया है। इसी तरह की अनेक बातें—यों कि प्रेम से पुलकित होकर मेरी पसन्द को ध्यान मे रखते हुए बहुत मुलायम ऊन का स्वेटर बुना है। नये-नये पोज़ में अपनी तस्वीरें भेजी है और चिट्ठियाँ तो बस गिनी चुनी लिखी होंगी।

मेरे साथ घण्टों पार्क में बैठी है। अजायबघर के जानवरों को चिढ़ाया है, झुग्गी-झोंपड़ियो मे साथ-साथ घूमी है। उसने मुझे सन्तरे की फाँकों का रस लेने दिया है, गुलाबी पंखुड़ी की गहराई पर आँखों की नाव को तैरने दिया है। मन्दिर से लौटते हुए गुलाब भेंट किया है। 'तीसरी कसम' फिल्म देखते हुए साथ-साथ दोनों की आँखें नम हुई है। आटो-ग्राफ पर उसकी लिखी पंक्तियों से साफ जाहिर है कि मेरे साथ वह वहाँ पहुँचना चाहती है जहाँ रास्ता खत्म है। उसे खत लिखकर जब भी उससे मिलने जाता हूँ वह बेसब्री से इन्तजार करती मिलती है। मिलने पर बातों के रस मे सराबोर कर देती है। चुन-चुन कर एक-एक खाद्य-पदार्थ खिलाने मे वह आनन्दमग्न रहती है। मेरा बैग अपने आप खोलती है। उसमें से मनचाही चीजें निकाल कर और मनचाही ही रख भी देती है। सारे पत्र, ग्रीटिंग्स, स्नेह संस्मरण सब कुछ मैने सम्हाल कर रख छोड़ा है।

आजकल की प्रेमिकाएँ !! किताबों से उनका क्या रिश्ता ! प्रेम कोई किताब पढ़ने के लिए होता है। बुद्धि और प्रेम का क्या नाता !! फैशन परस्त छोकरियों को प्रेम-व्रेम से क्या लेना-देना !! उन्हें ताकत चाहिए, केवल ताकत जिससे वे नोची, खसोटी जा सकें। लिपस्टिक के गारे से बनी पाउडर की प्रतिमाएँ।

यह सुनकर जोशी अपना सिर फोड़ लेगा।

अव्वल दर्जे का हिपोक्रेट है। मेरी याद का कसूर है—क्यों याद आया वह ?

अब तो आलोक गंगोपाध्याय से पत्र-व्यवहार भी नही हो पाता। उसका पता मेरे पास नहीं है। मै भी दिल्ली आ गया हूँ। इस बात की खबर उसको न होगी। खबर रहने पर भी तो लोग भूल जाते हैं। जान बुझकर भी याद नहीं करते। सम्बन्ध की डोरी को बढ़ाना नही चाहते। मुझे विश्वास है आलोक एक न एक दिन मुझसे अवश्य मिलेगा।

दफ्तर मुझे फुर्सत नहीं देता है। दूसरे कर्मचारियों की भाँति यदि

काम में मैं भी टाल-मटोल करता, अफ्सरो की तरह एक बजे दफ्तर जाता तो मेरा काम हो जाता। यहाँ तो काम करने वाला पिस जाता है, न करने वाला बैठा रहता है। बड़ी कुर्सियाँ उससे कुछ नहीं बोलती। यही रोज की जिन्दगी है। मेरे व्यक्तिगत दफ्तर की यह सामाजिक भूमिका है।

उस दिन चपरासी जो फाइल दे गया था उसमें कोई ऐसा विषय नहीं था जिसके लिए मुझे तुरन्त दफ्तर जाना पड़ता।

धर्मराज को हिदायत दी थी—'घर के काम मे जल्दी करो, मुझे साढ़े नौ बजे जाना है।

'दफ्तर, बाबूजी ?'

इस बात का उत्तर नही दिया। मन ही मन खीझ गया होगा। कह दिया होता कि दफ्तर जाऊँगा तो क्या बिगड़ जाता।

धर्मराज तैयारी करने लगा था।

चित्रालोक जाने का प्रश्न ही नहीं उठता था क्योंकि शाम को पाँच-छः के बाद घूमने-टहलने का समय होता है। मेरे खाते में कोई छुट्टी शेष नही है। इसीलिए जाना सम्भव नही होगा।

मेरा अस्थिर मस्तिष्क कुछ कर नही रहा था पर शान्त भी नही था।

□ □

मुझे यह उम्मीद नहीं थी कि चित्रालोक पहुँचने पर कोई परिचित मिलेगा। दिल्ली जैसे नगर में परिचय भी कभी-कभी अपरिचय बनने लगता है। रोज़ मिलने वाले संगी-साथी मेहमान लगते हैं। दूरी के कारण ऐसी स्थिति पैदा हो जाती है। किंग्जवे कैम्प से कुतुब जाने में कई घंटे लगते है। सभी तेजी से भागते रहते हैं फिर भी अपने चाहे हुए स्थान पर नहीं पहुँच पाते हैं। अगले दिन वही यात्रा फिर जो शुरू हो जाती है।

मेरा अनुमान सही निकला।

चित्रालोक में न तो जोशी दिखायी पड़ा और न सहगल। हाल के अन्दर प्रवेश करते ही एक मेज को घेरे हुए चार-पाँच लोग बैठे दिखायी पड़े। लगी हुई प्रदर्शनी की देखभाल करने वाले लोग होंगे। हाल की साज-सज्जा देख कर अपने देश के घूरों पर बसे गाँव याद आते थे। कीचड़ में बिलबिलाते कीड़ों की दुनिया में बसे टोले जिनमें सांस लेती चमार, पासी, लोध, कायथ, बाह्मन, ठाकुर की क्षीण काया। शहरी लोगों को तो वहाँ एक हफ्ता रहना मुश्किल हो जायगा।

हाल में भीड़ अधिक थी। बच्चे एक भी नहीं थे। यहाँ तक कि

माताएँ भी अपने साथ बच्चे नही लायी थीं । आदत के कितना प्रतिकूल था यह ! किसी समारोह में कभी-कभी बच्चों के रोने का अलग प्रोग्राम ही होने लगता है ! मन में लाचारी का धुआँ भर कर उपस्थित लोग बच्चों का रोना सुनने लगते है । वहाँ भी जिन्दगी का कचूमर निकलने लगता है । गुस्ताख फिकरे कसे जाते है । औरतों की विविध भारती—बेमिसाल ।

प्रदर्शनी देखने के लिए आए हुए स्त्री-पुरुषों की संख्या मे एक तीन का अनुपात था । किसी देवता के मन्दिर के महोत्सव में यह अनुपात उलट जाता है । धर्म और कला—अलग-अलग रुचि और अलग-अलग भीड़ । किसी से पूछा नहीं अन्यथा पता चल ही जाता । मुझे आम खाने से मतलब था इसलिए पेड़ गिनना मैंने पसन्द नहीं किया ।

दाहिनी ओर मुड़कर जब मै कार्नर के समीप लगे हुए चित्र के सामने पहुँचा तो मेरी दृष्टि ऊपर से नीचे की ओर चित्र पर तैरती हुई अंग्रेजी में लिखे नाम पर रुक गयी । ब्रश के एक बाल से लिखा हुआ लगता था वह नाम ! दूर से मैं उसे पढ़ नही पाया । बहुत पास जाने पर कलात्मक ढंग से लिखा नाम 'रिबका' पढ़ा था मैंने ।

मुझे कोई आश्चर्य नहीं हुआ । मन ने अच्छा-अच्छा महसूस किया । जोशी याद आ गया था और उसकी बात...अरे वही कास्मापालिटन वाली । मेरी आँखें आर्टिस्ट के नाम पर टिकी रही । अनजाने ही मैंने कई मिनट यह सोचने मे बिता दिए कि रिबका से भेट कैसे होगी । मै कोई आला दर्जे का आर्टिस्ट भी नही हूँ । राजनीति मे मेरी कोई कुर्सी नहीं है । पता नहीं नेचर कैसा हो !! क्या सोचे वह अपने मन में पता नही । एक विख्यात आर्टिस्ट की प्रदर्शनी का कोई अर्थ होता है । होता होगा पर इस अकाल, भुखमरी, बाढ़ और भ्रष्टता के देश मे क्या अर्थ होगा !! अब भी तो उच्च कोटि की पेण्टिग पैसे वाले लोग ही खरीदते है । इसीलिए आर्ट की प्रदर्शनी उसी नगर में सफल होती है जहाँ मोटे लोग रहते है । ऐसे मोटे कि दुबले होना तो चाहते ही नही ।

मेरी मनःस्थिति का पता हाल में घूमने वालों को नहीं था अन्यथा

वे कलाकृतियों को न देखकर मुझे ही देखते रहते। निश्चय किया कि पहले प्रदर्शनी के चित्रों को ही देखूँगा। जिस चित्र के सामने में खड़ा था उसमें कोई विशेष नयापन नहीं था पर विषय की प्रस्तुति बहुत आकर्षक थी।

तेज आँधी का दृश्य था। बालुका-प्रान्तर में काफी दूरी पर हवा से सताए जाते हुए वृक्ष पेण्ट किए गये थे। कुछ गिरे हुए, कुछ झुके हुए, कुछ की शाखाएँ टूटी हुई, कुछ टूट कर गिरते हुए। आँधी से केवल वनस्पतियाँ ही परेशान नहीं थी बल्कि धरती भी डरी डरी सी लग रही थी। यहाँ तक कि रिबका के नाम की पेण्टिग भी काँपती हुई की गयी थी। अनेक रंगों की अनेक छवियाँ। और उनकी कई प्रकार की अनुभूतियाँ। वह आँधी व्यक्तिगत हो सकती थी पर उसका सामाजिक रूप अधिक मुखर था।

राष्ट्रीय स्तर पर भी वह महत्वपूर्ण थी और अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि-कोण से भी वह अर्थवती थी। पर क्या जरूरत है इस खींचतान की। होगा कोई अर्थ। अर्थहीन ज़िन्दगी को यह सब सोचने का हक किसने दिया। मैं नहीं सोचूँगा। पर अपने पर काबू पाना भी बड़ा कठिन होता है। इतना कठिन कि व्यक्ति पागल हो जाता है। यह पागलपन सामाजिक दृष्टि से असह्य है।

□ □

आदमी की चिन्तन-शक्ति बहुत बढ़ गयी है। वह जल्दी से व्यक्ति को देखता हुआ, परिवार और समाज को छोड़ता हुआ, राष्ट्र पर थोड़ा रुककर अन्तर्राष्ट्रीयता की बात करने लगता है। सामने वाले चित्र को देखकर मैंने भी वही किया। करता क्यों न ? आदमी जो था, अपने में सहज और स्वाभाविक, निरा एक अदद आदमी।

कलाकार के भाव-क्षेत्र से बाहर आने के बाद कला का लोग मन-माना अर्थ लगाते हैं। ऐसा करने के लिए वे मजबूर हैं। कला की

अप्रोच व्यक्तिगत होती है। चिन्तन की दिशाएं उल्टी हो सकती हैं पर तर्काश्रित होने पर वह फायदेमन्द भी हो जाता है। पर शर्त है कि चिन्तन अनुजीवी न हो। उससे पराश्रय की दुर्गन्ध न आती हो।

कला बहुत पर्सनल होती है। उसके लिए जीवन का भोगना ही आवश्यक नहीं है। अपने को माटी में मिलाकर रस, गंध, परम्परा, संस्कृति के ढाँचे में ढालकर जो कलाकार बेदाग बाहर मैदान में आ जाता है उसी की कला शाश्वत हो जाती है। वह कभी मरती नहीं है।

रिबका की आँधी की पेंटिंग को आप चाहे जिस स्तर की समझें, आप को पूरी छूट है। अपनी बात साफ कह दूँ कि वह चित्र बोलता था। उसमें प्राण था, एक खिचाव था। अपने अन्दर यह सचमुच आँधी लिए था। उसमें मर्म और रहस्य की कोई बात नहीं थी। जो कुछ था सब ऊपर था, बिल्कुल साफ और समझ में आने लायक।

आँधी वाले चित्र को देखकर मन में विचार उठा था कि घर लौट जाऊँ। यदि सब जगह आँधी ही आँधी है तो जीना व्यर्थ है, जीने की कामना करना निराधार है। यह मामला बिल्कुल व्यक्तिगत था इस लिए यदि किसी का हस्तक्षेप इसमें न स्वीकार करूँ नो आप मुझे कुछ न कहेंगे।

उस चित्र ने मेरे हृदय पर ऐसा प्रभाव डाला था कि मैं उसे कभी नहीं भूल पाया। नहीं भूल पाऊँगा कभी। भयंकरता ने जैसे चारो ओर से घेर लिया हो। मुझे पता नहीं चित्र की भयंकरता से मैं क्यों डरता हूँ। कोई उत्तर नहीं। और आगे प्रश्नों की एक तालिका, सवालों की भीड़। कला एवं भयंकरता मुझे क्यों नहीं अच्छी लगती ?

मैं परीक्षा नहीं दे रहा था। इतने सारे सवाल मेरे मन को क्यों घेरे थे ? वह आँधी वाला सीन पीछे छूट गया था।

दाहिनी ओर दीवाल पर दूसरा चित्र टँगा था। आकार में पहले के बराबर ही था पर रूप-विन्यास में एकदम अलग-अलग। केवल सफेद और काले रंग का प्रयोग किया गया था। सबसे बोल्ड था नीम का एक सूखा और बूढ़ा पेड़। तने पर छोटे-छोटे उभार फोड़े जैसे लग रहे

थे। उसका आकार पतला था। ऊपर का हिस्सा काफी छतनार होता यदि पत्तियां पेण्ट की गयी होतीं। शाखाओं और टहनियों का विस्तार देख कर मुझे अचम्भा हो रहा था कि वह दुबला पतला पेड़ इतना बड़ा वोझ उठाए कैसे है। यदि पत्तियां पेण्ट की गयी होतीं तब तो विकट समस्या थी। वह वृक्ष तो ठूंठ था ही, बिल्कुल ठूंठ।

जो कुछ चित्र में बना था, वह आसानी से समझ में आ रहा था। दिमागी कसरत की आवश्यकता नहीं थी। पेड़ के नीचे एक छोटी सी हांडी में रखे हुए थोड़े से पके चावलों के लिए पाँच छः छोटे-छोटे बच्चे परस्पर झगड़ रहे हैं, छीना-झपटी कर रहे हैं।

कोई एक बार में अधिक निकाल लेता था। सब मिलकर उसे मारते थे। चित्रण में इतनी छीना-झपटी दिखायी गयी थी कि किसी के लिए एक कौर खाना भी कठिन था। बच्चों के चेहरों पर आतंक था पर वे सभी क्रूर भी लग रहे थे। एक दूसरे को अपना शोषक समझ रहा था। इसीलिए सभी को अपनी-अपनी पड़ी थी।

बच्चों में प्रतिक्रिया थी। गँवई-गाँव के बच्चे थे। उनके जीवन का आधार था अभाव। कितना दर्दनाक प्रभाव डालता है यह अभाव। ये बच्चे जीर्ण- शीर्ण वस्त्रों से अपने तन को ढके थे। माटी के बने हुए इनके शरीर जिन पर पानी का दाग़ जैसे बालू के महासागर में पानी के छोटे-छोटे, गोल-मटोल द्वीप। बच्चों की उम्र में ज्यादा अन्तर नहीं था। इनके माता-पिता होंगे। कमाते-खाते होंगे। फिर यह दरिद्रता वाली करतूतें क्यों !! ताकत यहाँ भी अपनी करामात दिखा रही थी। पर यह चित्रण था भाई। क्यों-क्यों की कोई आवश्यकता नहीं है।

पूरे चित्र को मैंने समझ लिया था।

बतलाने की हिम्मत नहीं पड़ती। आपको जाने कैसा लगे।

भूख-प्यास, रोजी-रोटी सभी की समझ को अखरेगी। कहाँ होती है एक जैसी समझ सभी की।

जो बेचारे खाने-पीने के लिए अधिक पाते हैं उन्हें यह लीला चोंचला लगेगी। पर ऐसे लोग अपने देश में बहुत कम हैं। आजाद

हिन्दुस्तान के पास पेट के अलावा और है ही क्या !! दिल···वह तो काफी छोटा होता है। बड़े दिल के पोषण के लिए वातावरण चाहिए। इस चित्र के नीचे भी 'रिबका' अंग्रेजी में लिखा था। मुझे विश्वास हो गया कि प्रदर्शनी के सारे चित्र रिबका के ही हैं। मैं ठीक पहुँचा हूँ।

□ □

दूसरी पेण्टिंग को देखकर मैं मुख्य द्वार के काउण्टर पर आ गया था। कुछ विशेष जानकारी चाहता था। काउण्टर कोई स्पेशल नहीं था। हाल के दरवाजे पर एक पुरबिया चौकीदार बैठा था जिसकी आँखें सजग थीं। हेंकड़ी उसकी रग-रग से फूटी पड़ती थी। वह किसी को आने जाने से रोकता नहीं था। बेरोक लोग आते-जाते थे। मैं उसी मेज के पास खड़ा हो गया था जहाँ कुछ लोग बैठे थे।

बैठे हुए एक सज्जन के संकेत करने पर पास की खाली कुर्सी पर मैं भी बैठ गया था।

कैसी लगी प्रदर्शनी आपको ?—सवाल आया।

जहाँ तक देखा है, अच्छी लगी है।

कौन चित्र आपने ज्यादा पसन्द किया है ?

कुल दो ही तो चित्र देखे थे मैंने उनमें क्या पसन्द बतलाऊँ। पर 'भूख' और 'आँधी' वाले चित्र मुझे अच्छे लगे थे। जन-जीवन से उनका लगाव था। उनमें किसी को पहला और किसी को दूसरा कहना मेरी इच्छा के विरुद्ध था।

काउण्टर वाले व्यक्ति ने भी अपनी पसन्द जाहिर की—'मैंने इन चित्रों के आकर्षण और उत्कृष्टता की बात कल रिबका से कही थी। वे हँसने लगीं थीं। उनके लिए तो सभी चित्र अच्छे थे क्योंकि ये उनके मस्तिष्क और हृदय की उपज थे।

अगर कोई कलाकार यह कहता है कि उसे उसकी सभी चीजें प्यारी हैं तो आप उस पर कहाँ तक विश्वास करेंगे। च्वायस का भी तो

जीवन में कोई स्थान है। इससे किसी के व्यक्तित्व का पता चलता है। यह बात सही है कि अपनी फीलिंग को बोल देने का प्रयास सभी कलाकार करते हैं। संसार की मुस्कराहट, दर्द भरी छवियां और रस में सराबोर कर देने वाले रूपाकार उनकी आँखों में तैरते रहते हैं।

किसी को अपनी सभी संतानें बराबर प्रिय हों तो कोई क्या आलोचना करेगा। करने वाले करते ही हैं। कहाँ चूकते है लोग !!

काउण्टर पर रखे हुए एक पैम्फलेट को मैंने ले लिया। वहीं खड़े-खड़े देखने लगा। कला कृतियों के मिनिएचर छापे गये थे। छोटे चिह्नों के साथ उनके नाम बारीक टाइप में अंग्रेजी में लिखे गये थे।

कुछ फुर्सत महसूस कर रहा था।

कुर्सी पर बैठ गया। उस पैम्फलेट पर एक सूचना छपी थी। अगले दिन 'मानव मूल्यों के संदर्भ मे कला का प्रयोजन' विषय पर लेडी अर्टिस्ट रिबका का लेक्चर था पास वाले हॉल में, सुबह आठ बजे।

□ □

दफ्तर का राक्षस याद आ गया था। सबेरे तो वहाँ जाना होता है। वहीं मेरी रोटी का मालिक रहता है। कला पर लेक्चर सुनना मेरे भाग्य में कहाँ बदा है !!

चित्रों को देखने की इच्छा थी पर आगे कुछ भी करने की इच्छा नहीं हुई। काउण्टर वाले व्यक्ति से कुछ भी नहीं कहा। सीधे लौट आया प्रदर्शनी से। मैंने चित्रों के सम्बन्ध में कोई उत्सुकता नहीं दिखायी। मन की बातें ऊपर नहीं आयी। हो सकता है उस व्यक्ति ने बोर फील किया हो। किया होगा। यह तो सब चलता है।

मैं नहीं जान पा रहा था कि मेरा मन वहाँ क्यों नहीं लगा। वैसे सभी चित्र रिबका के ही बनाए हुए थे। न भी होते तो उनका आदर करना मेरा फर्ज़ था ! यह मर्ज़ मैं नहीं पालता। आदर-वादर की बात पीछे की है। क्या अजीब मंसूबा है—कला का आदर करना। ध्वंस में

निर्माण सँजोने वाली कला मुझे बहुत पसंद है। इस प्रकार के चित्र वहाँ और रहे होंगे। यह अनिश्चय क्यों !! पैम्फलेट के छोटे चित्रों से आभास मिल गया था। उसी ने तो कुतूहल को बढ़ा दिया था।

लौटने पर कल वाली सूचना ही हाथ लगी थी। रिबका को कला के प्रयोजन पर बोलना था। मैंने सोचा था कि उनसे मिलूँगा। कल आने की योजना में व्यस्त था पर बात बनती नज़र न आती थी। फिर भी कोई न कोई रास्ता निकलेगा। सुबह का प्रोग्राम है। दफ्तर भी तो जाना है।

□ □

लेक्चर वाले दिन मुझे छुट्टी लेनी पड़ी थी। उस दिन कई पत्र सुबह की डाक से आने थे। अपने ही पत्र डालकर उत्तर की प्रतीक्षा थी। आना होता तो पिछले हफ्ते आ गये होते। अब क्या आएँगे। पर आ भी सकते थे। उनका मोह छोड़ना पड़ा था। आएँगे तो लेटर बक्स में पड़े रहेंगे। अगले दिन मिल ही जाएँगे।

प्रोग्राम के बारे में अनुमान था कि आठ बजे शुरू होकर साढ़े नौ तक खत्म हो जाएगा। पर सही-सही कुछ भी नहीं पता था। यह कोई सरकारी प्रोग्राम नहीं था कि भले ही लेट शुरू हो पर समय पर खत्म हो जाएगा। पर इतनी देर नहीं होनी चाहिए। पैसे वाले लोग कीमती पेंटिंग खरीद सकते हैं पर कला के विवेचन से उनको कोई लाभ नहीं। और बिना लाभ, आर्थिक लाभ के लोग कहाँ काम करते हैं !!

मैं जब अपने लाभ की बात सोचता हूँ, वह हानि में बदल जाती है। मेरे लिए नियति का उलटा विधान ज्यादा सही है। नतीजे के अनेक रूपों में घटनाओं की अनेक गतिविधियों ने मुझे पंगु बना दिया है। मैं फूंक-फूंक कर कदम रखने लगा हूँ।

अगले दिन देर हो जाने के डर से छुट्टी ले ली थी मैंने। काग़ज़ की छाती पर मैं बीमार हो गया था पर कला के मेले में मेरा आन्तरिक

आकर्षण जिज्ञासा का बोझ लिए घूम रहा था।

मैं आत्मतोष को व्यक्तित्व के विकास का सबसे बड़ा साधन मानता हूँ। करूँ क्या ? संसार के किसी कोने में यदि उसका कोष होता तो उसे लेकर जीवन पथ के प्रत्येक बटोही को दे देता। कहता कभी किसी से नहीं। वनैली तलहटियों की गोद में जंगली जानवरों की भांति संतोष की कामना सॅंजोकर घूमने वालों को भी फिर लौट कर बस्ती की ओर आना पड़ता है। बस्ती छोड़कर कहीं जाने की बात मैंने कभी नहीं सोची इसलिए ऐसी बातों का मेरे लिए कोई मूल्य नही।

जिस समय मैं अपने पड़ोसी दफ्तरी साथी को तबीयत अच्छी न होने की छुट्टी के लिए अर्जी दे रहा था, आँखों के आकार को माथे की ओर खीचते हुए उस मित्र ने कहा था—'वेल मिस्टर कपूर, क्या तुम सचमुच बीमार हो ?'

तुम्हारे पूछने की कोई जरूरत नहीं। सब कुछ अप्लीकेशन में लिखा है। वह कुछ नहीं बोला। बेचारे को दीन-दुनिया से कोई मतलब नहीं रहता। पता नहीं यह सवाल उसने पूछ कैसे लिया। बस एक चौकोर मेज पर छत छूती हुई फाइलों का पुलिन्दा, कलमदान की स्याही और होल्डर। दिन में दफ्तर रात मे घर। दफ्तर में देश की बढ़ी हुई आबादी का शोर, घर में परिवार की जनसंख्या की चीख। यही उसका दायरा है बिल्कुल कोल्हू जैसा। इस क्रम में मैं कभी भी अड़चन नहीं बनता। वैसे मुझे भी अपनी दुनिया में किसी की डाली हुई अड़चन पसन्द नहीं है। दुनिया घूम रही है, यह भी घूम रहे हैं और यही क्यों सभी घूम रहे हैं। इस घुमन्तू वृत्ति से कोई किसी को रोक नहीं सकता। रोका भी नहीं जा सकता।

मेरी छुट्टी की अर्जी यथा समय दफ्तर पहुँच गयी थी। दूसरे दिन जोशी ने मुझसे कहा था—'हलो कपूर, आज कैसी तबीयत है ?' 'फीलिंग वेल' कह कर किसी प्रकार पिण्ड छुड़ाया था। वह तो चाहता था घंटे-आध घंटे इसी पूछताछ पर बिताया जाय।

अपने दफ्तर के साथी को अर्जी देने के बाद जब मैं लौटा था तो

कुछ ऐसा लगा था कि वह मैंने अच्छा नहीं किया। यह कोई नयी बात नहीं थी। मैं ही क्यों ईमानदारी का व्यर्थ बिल्ला लगाऊँ जब ऊपर से नीचे के सारे अफसर और कर्मचारी यही सब करते हैं। बिना बीमारी की बीमारी। पर ईमानदारी बरतने पर छुट्टी भी तो नहीं मिलती। दफ्तरों का यही हाल है।

क्या-क्या सोचता रहता हूँ मैं।

अरे पगले तू अब गुलाम नहीं है। आजादी की राह से तू चल। यदि तू समाज की पूजा करेगा तो यही समाज तुझे काबुक के कबूतर की तरह हजम कर जायेगा किसी को पता भी न चलेगा। 'तू डार-डार हम पात पात' मान कर चलेगा तो इस उजाले के अंधकार में तेरी चाँदी ही चाँदी है।

आठ बजे से कुछ पहले ही मुझे चित्रालोक पहुँचना था इसलिए समझने-समझाने की बात को ताख पर रख कर तैयारी में लग गया था।

अभी आठ में बीस मिनट बाकी थे।

हाल के सामने भीड़ कम थी। कहाँ लोगों के पास इतना समय है। ठीक समय पर आएँगे। बस का कोई ठिकाना नहीं रहता। या तो समय से पहले पहुँचा देगी या फिर बाद में। दिल्ली में बस की सवारी करके कोई समय से कहीं पहुँच नहीं सकता। बड़ा मुश्किल काम है। वहाँ का जन समूह पतला था। इक्के दुक्के लोग इधर-उधर घूम रहे थे। लगता है जैसे पेट की रोटी जुटाने में सभी तल्लीन हों। कला से पेट की भूख तो मिटती नहीं। रोटी पहले और सब बाद में। शायद यही सब सोचकर ऐसे कार्यक्रमों में लोग कम भाग लेते हैं। सिनेमाघर की भीड़ यहाँ नहीं थी। सिनेमा वाली कला यहाँ नहीं थी। यहाँ तो थी केवल कला की बात।

बैठने से पहले मेरी आँखें जोशी को खोज रही थीं, किन्तु वह दिखायी नहीं पड़ा। नहीं आया होगा। अगर उसे मेरे आने का आभास मिल गया होगा तो जरूर आएगा। निश्चय नहीं कहा जा सकता। इस

वक्त उसका आना, न आना मेरे लिए कोई अर्थ नहीं रखता। बॉस से डरता है वह। सर्विस आवर्स में आना उसके वश का नहीं। ड्यूटी तो बस ड्यूटी है। इतना ही नही, तमाम ऐसी घटनाएँ घटी है जिनमें उसे अपने मन को मारना पड़ता है। ऐसे अवसरों पर वह चुप्पी साध जाता है। यह भी तो एक कला है। उसके घर मे कोई बीमार है, रहे बीमार। बॉस की आज्ञा के अनुकूल उसे काम करना ही होगा, चाहे कोई मरे या जिये।

जोशी के अतिरिक्त एक दो परिचित और आने वाले थे। कोई भी दिखायी नहीं दिये। इधर-उधर देख कर दूसरी पंक्ति की कोने वाली सीट पर बैठ गया। प्रोग्राम का समय नजदीक आ गया था। अधिक प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ी।

रिबका के साथ दो-चार व्यक्ति और स्टेज पर आए थे। कौन थे वे, कह नही सकता। उनके साथ एक-दो महिलाएँ भी थीं। संयोजक ने पंजाबी कोटेड हिन्दी में अपनी बात कही—'आप आए हुए लोगो, मेरा मतलब, भाइयो, बहनो और अपने बुजुर्गों को क्या कह कर पुकारूँ!! यह तो हमारे और आपके बीच की बात है। न तो मुझे आपको पुकारना है और न आप को बोलना है। आज तो आप रिबका, जो कि एक मशहूर कलाकार है, पेण्टर हैं, का भाषण सुनने आये है। दिल्ली का माहौल आप से छिपा नहीं है। इस प्रकार के परोगराम बनाने वाले लोग पैसे वाले होते हैं और बुद्धि और धन में वहुत फासला होता है। परोगराम में संयोजक जी बोलना चाहेंगे। न तो उन्हें अंग्रेजी आती है और न हिन्दी। अंग्रेजी मे शुरू किया तो 'यू सी' 'यू सी' कह कर छोड़ देते हैं और हिन्दी मे बोले तो 'हमन ने यह परोगराम रखा है' कहते हुए अपना वक्तव्य खत्म कर देते हैं। पैसा और बुद्धि!!

'यह बड़े भाग की बात है कि वे (रिबका) आज हम लोगों के बीच आयी हैं। मैं आप लोगों का अधिक समय नहीं लेना चाहता। पर एक बात जरूर से जरूर बतला देना चाहता हूँ कि चित्रालोक के लिए यह गर्व की बात है कि उसने एक बहुत बड़े आर्टिस्ट···नो नो नो

·· आई मीन कलाकार को बुलाया है। मैं तो सिर्फ एक बहाना हूँ। इससे ज्यादा आप मुझे कुछ न समझें। आपका अधिक समय नहीं लेना चाहता। यह आप जानते हैं कि साइंस की मशीनी सभ्यता की दौड़ में कला को बेइज्जत किया गया है। आप सब की तारीफ करते हुए मुझे खुशी होती है कि आप अपना कीमती टाइम निकाल कर यहाँ तक आये है। क्या मेरे लिए इतना काफी नहीं है। यह परोगराम आप का है। अब मैं अपने मेहमान कलाकार से अर्ज करता हूँ कि वे अपनी बातें आपके सामने रखें।'

जिस समय संयोजक ने कीमती समय की बात की थी, मेरा दिल हिल गया था। मन दफ्तर के लिए लौट गया था। यद्यपि अर्जी को साहब के वाक्यों की दुधारी के लिए ढाल बना कर भेजा था पर सबार्डिनेशन भी कोई चीज़ होती है।

संयोजक के छोटे वक्तव्य पर कुछ लोग मुस्कराए थे। बातें बहुत सम्हाल कर कही गयीं थीं। असमंजस की कोई बात नहीं थी। वक्तव्य पढ़ने से तो यह अच्छा ही रहा। भाषा और विचारों की प्रौढ़ता समाज के सामान्य व्यक्तियों में कहाँ से मिलेगी!! मिलेगी ही नहीं।

रिबका के खड़े होते ही हाल में कुछ क्षणों के लिए मौन छा गया। लेक्चर स्टैण्ड के पास जब वह आयीं तो उनके चेहरे पर शिकन नहीं थी। संयुत मुद्रा का प्रभाव स्पष्ट दीखता था। स्टैण्ड की साइड में खड़े होकर उन्होंने दायाँ हाथ स्टैण्ड पर टिका दिया था। उनके चेहरे से सादगी झलक रही थी। मुखमंडल तो प्रसन्न दीखता था; किन्तु क्षणों के अन्तराल से विषाद की एक अप्रत्याशित रेखा उनके चेहरे पर दौड़ जाती थी। पोशाक में कोई बनावट नहीं थी। बालों की लापरवाही की सुन्दरता में एक आकर्षण था। चेहरे पर अनेक लेपों की पर्तें नहीं थीं। बाल की साइज काट कर छोटी कर दी गयी थी। शरीर का रंग खुला हुआ था। एकाध बार बोलने के झोंक में जब लेक्चर स्टैड सामने आ गया था तो शरीर का कुछ भाग छिप गया था।

धीरे-धीरे श्रोताओं की संख्या बढ़ रही थी। लोगों का आना तो

अन्त तक बना रहा पर लेक्चर के मध्य कोई उठने का नाम न लेता था। रिबका ने 'सज्जनो और देवियो' के सम्बोधन के साथ लेक्चर शुरू किया।

आप लोगों ने मेरे लिए अच्छा अवसर दिया है। ऐसे मौके जीवन में कम आते है जब कला के पारखी और कलाकार आमने-सामने हों। वैसे अपने देश मे सुनाने वाले अधिक है, सुनने वाले कम है। मुझे तमाम लोगों की तरह आप बीती नहीं सुनानी है, राजनीति के बोल नही बोलने है, बाढ़ पीड़ितों के लिए चन्दा नहीं इकट्टा करना है, सूखे के लिए सहायता नहीं माँगनी है। यह इसलिए कि आपको विश्वास हो गया है कि आप के सहयोग से अधिकारी वर्ग मौज उडाता है। जो वस्तु जिनके लिए दी गयी है, वहाँ तक वह नहीं पहुँचती। इसलिए ऐसी व्यस्था से मुझे घृणा है। मैं अकेले उसका कुछ बिगाड़ भी नहीं सकती।

अभी तक जितना जीवन मैं जी आयी हूँ उसमें अनुभव और फीलिंग्स की अनगिनत तसवीरें है। दुनिया के दूसरे लोगों ने भी ऐसी तस्वीरें बनायी होंगी। कोई बनाकर मर गया, किसी को समय के साँप ने डस लिया। क्या कहूँ आपसे!! कोई पागल हो गया, किसी को भूखों मरना पड़ा, किसी के कफन के लिए चन्दा उगाहना पडा।'

हाल पर कथन की गम्भीरता का प्रभाव था। बात अगर ढंग की हो और कहने बाला गंभीर हो तो सभी सुनते हैं। वहाँ ऊबड़-खाबड़ आवाज अथवा अन्य कोई व्यवधान नही पाया जाता। तन्मयता की साकार मूर्तियाँ बैठी हुई थीं।

रिबका के कथन की रफ्तार तेज हो गयी थी। उनका चेहरा गंभीर लग रहा था। इस आन्तरिक गंभीरता की छाया उनके मुख से निकलने वाले वाक्यों पर थी—

'इस वैज्ञानिक युग में कला की नाव भौतिकता के सागर में डगमगाने लगी है। उसे कलाकार नही बचा सकता और आप भी नहीं बचा सकते। बचाने के लिए फीलिग की आवश्यकता है। संवेदना, सहानुभूति और परस्पर लगाव से सब कुछ संभव हो सकता है।

मैं नहीं कहती कि पूरा समाज कला की आराधना करे। इस वैज्ञानिक वातावरण में तो यह नामुमकिन लगता है। किन्तु यदि कला आपके जीवन की मरुभूमि में मधुर स्रोत का काम करती है तो कला की पूजा आप को करनी होगी, करनी होगी।'

वक्तव्य के आखिरी वाक्य पर बल देते ही तालियाँ बजी थीं। मैंने ताली नहीं बजायी। मेरी समझ में कोई ऊँची बात नहीं कही गयी थी। इसमें ताली बजाने की तो बात ही नहीं थी। औपचारिकता दिखाने का भी कोई समय होता है। यहाँ कैसी औपचारिकता!! मैं तो लेक्चर सुनने गया था—

"विज्ञान ने अपने समाज को नयी रोशनी दी है, सच है। पर उस रोशनी से निकलने वाले अदृष्ट धुएँ ने हमारी सभ्यता को चारों ओर से घेर लिया है। किसी प्रकार का गोपन अब अब्सर्ड माना जाने लगा है। मैं आपके सामने सुकरात, प्लेटो और अरस्तू के शिववादी विचार नहीं प्रस्तुत करना चाहती। साथ ही यह भी नहीं चाहती कि उलटी-सीधी रेखाओं के भ्रमजाल में आपका कीमती समय नष्ट करूँ। किन्तु यदि ये रेखाएँ आप के लिए, आपके जीवन के सम्बन्ध में कुछ कहती है तो इन्हें देखने के लिए आपको रुकना पड़ेगा।

हम कला के माध्यम से प्रकृति से प्राप्त अनुभव व्यक्ति में स्वीकार करते हैं। यदि हम व्यक्ति की आजादी की, जीवन के सौदर्न्य की, ऐन्द्रिक चेतना और प्रवृत्ति की व्याख्या और मूल्यांकन कला के माध्यम से कर लेते हैं तो हमारे जीवन में कला उपयोगी है उसे हम भूल नहीं सकते। और यह बात भी साफ है कि ऐसी स्थिति में कला भी हमें नहीं भूल सकती। जिस दिन कला से मानव, उसकी अनुभूतियाँ और संवेदनाएँ अलग हो जाएँगी उस दिन कला मर जायेगी।

मेरे लिए नैतिक सौन्दर्य केवल कल्पना है। हम इसे शब्दों का खिलवाड़ मानते हैं। यह मान्यता हमें 'शिव' की ओर खींचती है जिसका परिणाम यह होता है कि हम 'सुन्दर' से बहुत दूर हट जाते हैं। इसीलिए कलाकार के लिए सौन्दर्य का दर्जा ऊँचा होता है।

आज का प्रसंग बड़ा गंभीर है। केवल कला के जानकारों को ही नही, इस पीढी के समूचे प्रबुद्ध वर्ग को विचार करना होगा कि आज विज्ञान की उन्नति के बाद भी आदमी और आदमी के बीच का फासला क्यों बढ़ गया है, और यही नही, यह भी देखना है कि इस गिरावट के लिए उत्तरदायी कौन है ?

इन बातों को सुनकर सुनने वाले प्रसन्न हुए थे पर हाल की गंभीरता अपनी जगह कायम थी। रिबका का वक्तव्य बहुत ही संक्षिप्त और सिमटा हुआ था। उनके अनुसार समाज की सारी समस्याओं के मूल में आदमी है। उसी के पास पैसा है, उसी के पास पैसा नही है। इन समस्याओं का हल भी उसी के पास है पर वे ढूढ़ना नहीं चाहते। जादू की लकड़ी घुमाकर छूमन्तर करने का ज़माना बीत गया। अब तो बिना विज्ञान को साक्षी बनाये काम नही चलेगा।

ठीक समय पर प्रोग्राम खत्म हुआ। संयोजक ने अपनी औपचारिक शब्दावली में आगन्तुको के साथ रिबका के प्रति आभार व्यक्त किया। साफ झलक रहा था कि वे अपनी इस उपलब्धि पर लट्टू हैं।

मैं रिबका से मिलकर बात करने का अवसर खोज रहा था। हाल से बाहर निकल कर लॉन में वह थोड़ी देर रुकी थी। उनके साथ दो-चार लोग थे। कुछ तो लड़कियाँ थीं जो आटोग्राफ के चक्कर में इधर-उधर घूम रही थीं बाकि थे चित्रों के प्रशंसक, कलाकृतियों के जानकार। ऐसे अवसरों पर आलोचना सुनने का भी एक मजा होता है। विरोध में विरोधी लोग बोलने से नही चूकते। साफ गोई तो बहुत कम दिखायी पड़ती है। विरोध से मिलने वाला संतोष भी तो आह्लादकारी होता है।

मैंने देखा कि लॉन में रिबका की ओर एक सज्जन उन्मुख हुए।

'अपने 'भाषन' में तो आपने 'कमाल' कर दिया।'

इस बात का कोई असर नही हुआ। हाँ, एक मुसकान रिबका के अधरों पर तैर गयी। 'बच्चे हो अभी' लगा कि वह ऐसा कुछ सोच रही हैं।

मुझे भी 'कमाल' वाली बात अच्छी नहीं लगी इसलिए कि दिल्ली

में सब जगह 'कमाल' ही 'कमाल' है ।

आप भूखे हैं, 'कमाल' है । आप का पेट भर गया 'कमाल' है । रो रहे हैं आप 'कमाल' है । आप हँस रहे हैं—'कमाल' है । आप बीमार, है, 'कमाल' है आप भले चंगे है, 'कमाल' है ।

सारा संसार 'कमाल' है । रिबका और उनका भाषन 'कमाल' है । उसे सराहने वाले भी उसी श्रेणी में हैं ।

मेरा संकोच अपने डैने फैलाकर उत्साह को ढँकना चाहता था । उत्सुकता के कारण मैं पीछे नहीं लौटना चाहता था । उस समय रिबका की तारीफ़ में न तो मैं कुछ कह पाया था और न पूछ सका था ।

बस केवल इतना ही—

'मैं आपसे थोड़ा समय चाहता हूँ—इफ़ यू डोन्ट माइंड ।'

कल मैं आपको समय दे सकूँगी । आज तो बहुत बिज़ी हूँ । वैसे बतलाइए कोई विशेष तो नहीं है ।

नहीं, नहीं ऐसी कोई बात नहीं । आर्ट के ही सम्बन्ध में कुछ डिस्कस करना चाहता था ।

ठीक है, ठीक है,कल शाम को सात बजे कास्मापालिटन में मिलिएगा । मेरा ख्याल है आपको यह समय सूट करेगा ।

बिना किसी औपचारिकता के रिबका ने पूछा था—

क्या मैं आपका नाम जान सकती हूँ ?

सी० एस० कपूर कहते हैं मुझे ।

और बातें वहीं होंगी कल—कास्मापालिटन में ।

इसी बीच भीड़ मोटी हो गयी थी । रिबका के चेहरे से लग रहा था कि वह ऊब गयी हैं और जल्दी कहीं जाना चाहती हैं । वह आसपास खड़े लोगों से छुटकारा पाने की खोज में थीं । जो लोग वहाँ खड़े थे वे किसी न किसी रूप में उनके प्रशंसक ही थे ।

चहारदीवारी पार कर रिबका बाहर आना चाहती थी । हाल की ओर से एक आदमी जल्दी-जल्दी आया और पूछने लगा—'दीवाल पर लगे चित्रों में कुछ बिक गये है । उनकी जगह नये चित्र लगाये जाएँ या

नहीं ? कौन से चित्र लगाने हैं' ?

रिबका कहने लगीं—'मैं जल्दी में हूँ। एक चित्र है नम्बर थर्टी सिक्स, उसमें न्यायालय के सामने की सड़क पर एक पुराना नीम का पेड़ आँधी में टूटकर गिर पड़ा है जिसके नीचे अपनी माँ के साथ पाँच-सात साल का बच्चा दब गया है। पेड़ का आधा भाग टूटा है, आधा खड़ा है। माता और पुत्र के शव दबे पड़े हैं। इस चित्र को ज़रूर लगवा देना। हर काम पूछकर नहीं किया जाता। तुम लोगो को अपने मन से भी तो करना चाहिए।

सभी लोग इधर उधर जाने लगे थे।

चलते वक्त रिबका ने बड़ी लापरवाही से कहा था—'मिस्टर कपूर टुमारो इन कास्मापालिटन।

आप को याद होगी कास्मापालिटन की बात। जब तक रिबका से मेरा घनिष्ठ परिचय नहीं था तब तक वह मेरे लिए एक पहेली थीं। यह मत समझिएगा कि परिचय के बाद उनके जीवन के सारे अक्षर मैंने पढ़ डाले। वह तो मेरे लिए अभी भी वैसे ही हैं। थोड़ा बहुत अन्तर पड़

सकता है। वह स्वाभाविक है, जितना कि कोई चीज हो सकती है। मैंने स्वाभाविक जीवन क्रियाओं पर कभी बहुत गम्भीरता से नहीं सोचा। क्या करूँ सोचकर !! दुनिया अपने सिर पर उठाने से क्या लाभ ? और अपने उठाने से कहाँ उठती है दुनिया। दुनिया उठाने वाले खुद ही उठ गये।

रिबका के बतलाए हुए समय के अनुसार जब मैं कास्मापालिटन पहुँचा था, वह हॉल की कार्नर वाली सीट पर बैठी थीं। अपने काग़ज़ों की उधेड़बुन में व्यस्त दीखती थीं। मेरे पहुँचने पर मेरी ओर उन्मुख होकर उन्होंने कहा था—

'अच्छा तो आप आ गये।'

'बस केवल पाँच मिनट लूँगी आपसे। उसके बाद बात करती हूँ।' मुझे उनकी यह बात अच्छी नहीं लगी, क्योंकि किसी के साथ पाँच मिनट चुप बैठना मेरे बूते का नहीं था। कह नहीं सकता था कुछ। और कहा भी तो नहीं जा सकता था।

अपना काम दूसरे किसी समय भी तो पूरा कर सकती हैं। जैसे मेरे समय का कोई मूल्य ही नहीं है। अरे होगा मूल्य कौन पूछता है !! मुझे क्या करना है, सोच नही पा रहा था। जिस काम से गया था, यदि उसे बिना पूरा किए लौटता तो भी बात न बनती। इसी असमंजस की स्थिति में साड़े चार मिनट बीत गये। यह लीजिए पाँच मिनट पूरे हो गये।

ठीक समय पर रिबका ने मुझे प्रश्न भरी निगाह से देखा—

'आप कॉफी के साथ और कुछ लेंगे क्या ?'

'केवल कॉफी, और कुछ नहीं'

उनके संकेत पर बेयरा दौड़ कर आया। उसे कॉफी का आर्डर देते हुए रिबका ने बात आगे बढ़ायी। गया था मैं स्वयं कुछ पूछने और देखने में ऐक्टिव वह जान पड़ती थीं। पहले तो मुझे संदेह था कि मैं एक अदना आदमी था मुझे क्यों लिफ्ट मिलने लगी। यह सारी कल्पना परिचय के पहले की है। उसके बाद तो जीवन के अध्याय स्पष्ट होने

लगते हैं।

कोई बात नहीं, जीवन ऐसे ही चलता है। कभी-कभी जीवन की अच्छाई की खोज में हम निरीह प्राणी की भाँति दौड़ते फिरते हैं। मृग-तृष्णा तो कहने को होती है। आदमी मृग से भी गया-बीता है। पर इसमें अस्वाभाविक क्या है। सहज है सब और प्राकृतिक भी।

वहाँ ऐसा लगता था कि जैसे रिबका को कहीं और मैंने देखा है। विचार बदल गया। बतलाना चाहता था पर मुझे बात बासी लगी। कहीं और देखने की बात मन ही मन पी गया। ऐसा करना पड़ता है। अपने समाज की बनावट ही ऐसी है। तरह-तरह के समझौते करने पड़ते हैं। वाणी और मन का समझौता अगर हो जाय तो जीवन सरस हो जाता है पर ऐसी सरसता किस काम की जो व्यक्तित्व को दबा दे।

मेरे प्रति रिबका का व्यवहार परिचय वाला था। अजनबीपन कहीं था ही नहीं। उनकी नारी सुलभ कोमलता वातावरण को स्निग्ध कर रही थी। कास्मापालिटन का हॉल ग्राहकों से भरा हुआ था। रिबका की आँखें अपनी मेज़ की ओर थीं जैसे ताक-झाँक उन्हें रुचती ही न हो।

वहां जैसे मैं स्वयं हीन भावना का शिकार हो रहा था। इसके पहले दंभ का कोई प्रकार मेरे मन में अवश्य रहा होगा। पुरुष और नारी होने का दंभ तो प्रत्येक व्यक्ति में विद्यमान रहता है। मेरी सारी जिज्ञासा और बहुत दिनों से सँजोया हुआ कुतूहल मौन हो गया। सोचा कि इसी तरह बैठा रहूँ, और थोड़ी देर के बाद कॉफी पीकर चलदूँ। विचारों के जंजाल में उलझ गया था। टिड्डियों के समान अनेक विचार एक साथ उठते थे और मंद हो कर गायब हो जाते थे। संभव है यह असमंजस मेरे चेहरे पर भी उतर आया हो। उसका पता मुझे नहीं था।

हल्की आवाज में एक सवाल हुआ—

'आप कितने दिनों से दिल्ली में रह रहे हैं?'

'लगभग दस साल से।'

'क्या पहले कहीं बाहर रहते थे ?'

'हाँ, मैं बाहर से ही दिल्ली आया हूँ। परिवार के और लोग अलीगढ़ रहते थे। मेरा बचपन वहीं बीता। यूनिवर्सिटी से निकले हुए कई वर्ष हो गये। रोटी की तलाश में जीवन के अनेक चढ़ाव-उतार देखे। दिल्ली के साथ सम्बंध जुड़ने थे, यहाँ चला आया।

रिबका स्केच पेंसिल पर अपनी अँगुलियाँ फेर रही थी—

'तो, दिल्ली आपको कैसी लगी ?'

चाहता तो 'अच्छी' या 'खराब' में इस प्रश्न का उत्तर दे देता। इस तरह का उत्तर तो कोई उत्तर नहीं था।

बेयरा कॉफी लेकर आ गया।

'लीजिए कॉफी आ गयी। बातें भी होंगी और...

बेयरे ने बिना कुछ बोले सर्विस की और चला गया। ये लोग भी मशीन की तरह काम करते हैं। मुस्तैदी का अनुशासन बड़ी जिम्मेदारी का होता है। रिबका ने शुगर मिलाकर कप मेरी ओर खिसकाया।

'यहाँ कॉफी अच्छी सर्व की जाती है।'

रिबका का यह कथन अतिशयोक्ति युक्त नहीं था। कॉफी सिप करते हुए मैंने दिल्ली वाली बात को आगे बढ़ाया—

'दिल्ली के साथ अच्छा और बुरा होने का सवाल बड़ा गंभीर है। सभी बड़े नगरों के सम्बंध में यह बात कही-सोची जा सकती है। जब मैं दिल्ली आया नहीं था, तमाम कहानियाँ सुनी थीं। कुछ वाक्यों की धूमिल छाया अब भी साफ दीखती है—दिल्ली बड़ी मँहगी है, यह तो सेक्स और क्राइम का नगर है, यहाँ क्या नहीं होता है—जैसे कथन आज भी मेरे दिमाग़ से चिपके हुए हैं।

□ □

यहाँ आने पर सब कुछ बड़ा अजीब सा लगा था। आसमान की तरह फैला हुआ शहर, तेज भागती हुई सड़कें, मशीन बना हुआ आदमी

ग्रौर फासला कम करती हुई ग्रौरतें। बिड़ला मन्दिर में लक्ष्मी नारायण का दर्शन करने के लिए जाने वाली, गुरुद्वारे में अपने ग्राराध्य को नमन करने वाली, होटलों ग्रौर क्लबों में निस्संकोच भाव से जाने वाली तथा सामान्य रूप से बाहर घरों से निकलने वाली ग्रौरतों को देखकर लगता है जैसे वे सुहागरात मनाने जा रही हों। यूनिवर्सिटी ग्रौर कालेज गर्ल का भी वही हाल है। ग्रध्यापिकाग्रों का चेहरा तो बिसाती की दुकान बना हुग्रा है। शिक्षा के मन्दिर में लैवेण्डर की खुशबू से ये ज्ञान के देवता को अपनी ग्रोर ग्राकर्षित करती हैं।

इन बातों को सुनकर रिबका के चेहरे पर एक हल्की सी लालिमा दौड़ गयी थी। वे मुसकराई थीं। कहा कुछ नहीं पर कहने की इच्छा साफ़ दीख रही थी।

मेरी एक ग्रनोखी ग्रादत है।

जब तक कुछ कहता नहीं हूँ, कोई बात नहीं। यदि कहना शुरू किया तो फिर कहता जाता हूँ, कहता जाता हूँ। जब बातों का सिलसिला शुरू होता है तो उसका रोकना कठिन हो जाता है।

रिबका ने कॉफी की चुस्की ली।

मैं कहता जा रहा था—'केवल इतना ही नही है। थोड़ा ग्रागे बढ़ कर सोचिए तो सब जगह व्यक्तित्व का बिखराव ग्रापको मिलेगा। इंसान जैसे टूट गया है। एक ग्रोर सामाजिक ग्रसंतुलन उसे खा रहा है, दूसरी ग्रोर उसकी ग्रपनी पर्ससनल कमजोरियाँ है। ग्रब तो जुड़ने के लिए इंसान को नये सिरे से जन्म लेना होगा।'

'क्या मतलब ग्रापका ?'

'ग्रापकी बातों से निराशा की झलक ग्रा रही है। ऐसा क्यों है। निराश व्यक्ति इस लाइफ-कार्ट को कैसे खींच सकेगा ! !

दिल्ली देखकर ग्रापको इतनी हैरानी हो रही है, विदेशी शहरों की स्पीड तो इससे भी तेज है। ग्रौर जब बेमतलब दौड़ना है तो ग्रागे-पीछे देखने की क्या ग्रावश्यकता है। एक क्षण के लिए जहाँ ग्राप रुके, भीड़ ग्रापको छोड़ कर ग्रागे बढ़ जायेगी। ग्राप बहुत पीछे छूट जाएँगे। इसमें

किसी का दोष नही है। नेचर ने मनुष्य को बनाया ही इस प्रकार है।'

रिबका ने अपनी बात को एक नया मोड़ देते हुए पूछा—'आप कही सर्विस करते है ?'

'यों ही जीवन बिताने का तो कोई मतलब नही होता। सर्विस करता हूँ एक फर्म मे। उसके बारे में ज्यादा क्या बतलाऊँ आपको। मन ऊब गया है। यदि रोजी का मामला न होता तो इस्तीफा दे देता।'

'इस्तीफा देकर क्या करते ?'

'इच्छा थी कि एक बार अपने देश के सारे रमणीक स्थानों को देखता। कुछ दिन वही रहता। प्रकृति की गोद कितनी भली मालूम होती। कुछ नही बन पाया। परिवार के लोगों का पेट भरना मेरी सब से बडी समस्या है। अपनी बात छोड़िए मैं तो हर परिस्थिति झेलने के लिए तैयार हूँ।'

'दिल्ली में आकर प्रकृति से और दूर हो गया हूँ। जहाँ पहले जगलों, मैदानों और नदियों को घंटों निहारा करता था वहाँ अब गमलों के उदास और निरीह पौधों को देखकर संतोष करना पड़ता है। यहाँ वृक्षों और लताओं को मजबूर कर दिया गया है। उनके स्वच्छन्दता के पैरों मे मजबूरी की बेडियाँ डाल दी गयी है। हमारी सभ्यता किसी न किसी रूप में अभी भी जंगलीपन को पसंद करती है। तभी तो उड़ती हुई चिड़िया और लोमड़ी का रूपाकार अपने घरों मे लोग टाँगते है।'

रिबका ने कहा था—'आप ठीक कहते है पर यह डिबेट का विषय है। सर्विस के अलावा आप और कहाँ-कहाँ व्यस्त रहते है ?'

मेरे पास इस सवाल का कोई जवाब नही था।

मैं नही चाहता था कि कुछ कहूँ पर अपने को रोक नही पाया। बात आगे बढ़ गयी थी—

'दिल्ली जैसे नगर में सिवाय नये-नये बनावटी प्रोग्राम अटेण्ड करने के और क्या करूँ !! बनावटी इसलिए कि सारा आयोजन औपचारिक होता है। वहाँ सहज भावो का अतापता नही होता। सभी के मुँह वन्द होते है। ऐसा नही है कि लोग असलियत को समझते न हों। कोई कुछ

कहना नही चाहता । व्यर्थ परेशानी मोल लेना कौन चाहेगा । कला और साहित्य मे रुचि होने के कारण ही कभी 'कला सगम', कभी 'आर्ट गैलरी' और कभी 'आइफक्स' जाना पडता है । आपकी कला की तारीफ सुन चुका था, इसीलिए लेक्चर सुनने 'चित्रालोक' चला गया था । यह तो रुचि की ही बात है कि इस वक्त आपके सामने बैठा हूँ ।'

'कला की तारीफ' वाली बात सुन कर रिबका को अजीब लगा होगा, मुझे पता नही पर उनके चेहरे पर एक नरम तनाव दिखायी दिया था । मैं तो अपनी बात कहता जा रहा था । वह उत्सुकता से सुन रही थी पर मुझे ऐसा आभास होता था कि बीच मे टोकना चाहती हैं ।

मेरे प्रत्येक वाक्य के साथ शका और परेशानी जुडी रहती थी जैसे स्वय पर ही विश्वास न हो ।

वह अपने को रोक न सकी ।

मुस्कराते हुए बोली—'आप मेरी कला की तारीफ करते है । जहाँ तक मै समझती हूँ कला किसी की नही होती । न तो आपकी और न मेरी । वह यूनिवर्सल है और सब की है । मै कला को किसी के व्यक्तित्व की तारीफ का साधन नही मानती । यदि मेरे विचार से, थिंकिग से, आर्टिस्टिक अप्रोच से आपको प्रसन्नता हुई, कुछ आप ने महसूस किया तो इतना ही बहुत है ।'

हम लोग कॉफी खत्म कर चुके थे, किन्तु बातो के झमेले मे किसी को पता ही न चला ।

रिबका ने उत्सुकता से पूछा—

'मिस्टर कपूर, वुड यू लाइक टु टेक अनदर कप ऑफ काफी ?'

(क्या आप कॉफी का एक और कप पसन्द करेगे ?)

मैंने 'न' का पोज बनाकर अपनी घडी देखी थी ।

अच्छा हाँ, आपको देर हो रही होगी । बैठकबाजी मे देर हो ही जाती है'—रिबका ने कहा ।

कभी-कभी तो मै भी समय का ध्यान ही नही रख पाता उस समय

जाने कैसे घड़ी की ओर निगाह चली गयी। ऐसा क्यों हुआ था कह नहीं सकता। रिबका की बात सुनते ही मैं सतर्क हो गया था।

□ □

एक महिला ने कास्मापालिटन में प्रवेश किया। इधर-उधर ताका-झाँका और आकर रिबका से हाथ मिलाने लगी। उसकी बोली-बानी से जान गया कि दोनों आपस में परिचित हैं। रिबका ने उसे बड़े आदर से अपने पास बिठा लिया था। मुझसे परिचय देने लगी—

आप है मिसेज़ यामिनी—मेरी कम्पनी में रंग लाने वाली। मुझसे मिलने की कृपा कभी-कभी करती हैं। आज इधर भूल पड़ी हैं पर बड़े मौके से मुलाकात हुई। क्या तारीफ़ करूँ आपकी—मेरे आर्ट की तारीफ़ करके मुझे बोर करने वाली। कुछ नहीं मिलता कहने को तो गृहस्थी की बातें...।

मिसेज यामिनी के चेहरे पर अनेक भावों वाली पर्तें चढ़ उतर रही थीं। अपनी प्रौढ़ आंखों से मुझे भली प्रकार उन्होंने देख लिया था। उनकी आँखों की तेज किरणों ने जैसे मेरे हृदय का अक्स ले लिया हो।

जब तक नमस्कार के लिए उनके हाथ उठें उठें, रिबका ने कहा था—'और आप हैं मिस्टर कपूर, मेरी कला के प्रशंसक और क्या कहूँ इन्हें!! आप दोनों में फर्क इतना है कि एक का मेरा परिचय पुराना है दूसरा अभी ताजा-ताजा।'

'मैं तो ऐसा नहीं सोचता। आपको बहुत पहले से मैं जानता हूँ। बस मिलने का मौका नहीं निकाल पाया।'

'अच्छा अगर मेरी बातों से आपको कोई दिक्कत है तो उन्हें अपने अनुसार बदल लीजिए।'

क्षण भर के लिए मैं चुप हो गया और करता भी क्या!!

यामिनी ध्यान देकर रिबका की बातों को सुन रही थीं—

'आप हमारे लेक्चर में नहीं आयीं।'

कारण मे कोई बिजी-विजी रहने की बात यामिनी ने कही थी। आप से कारण क्या बतलाऊँ पर यामिनी का उस समय आना मुझे अच्छा नही लगा। रिबका से उनका वार्तालाप हो रहा था। मैं कुछ ऐसा बैठा था कि जैसे साफ-साफ उन्हें ही देख रहा हूँ। सड़क की आवाजें कान के पर्दे पर अंकित हो रही थीं। उन्हें मैं रोक नही सकता था। मेरा मन भी सड़क की ओर भाग रहा था।

शायद रिबका मेरे अन्दर के भावों को भाँप गयी थीं। कहने लगी—'वैसे मौका अच्छा था, मिसेज यामिनी भी थीं, हम लोग यही बैठ कर बातें करते पर काफी देर हो गयी है। कपूर साहब, आपके लिए देर की भले ही कोई बात न हो पर यामिनी को तो बड़े झंझट हैं। फेमिली की तमाम परेशानियों में यह उलझी रहती है। उनसे छूट पाने का मौका ही नही मिलता। यह तो यही है कि किसी प्रकार नाव को किनारे लगाने मे लगी है।'

'पर्सनल मामले को आप सोशल क्यों बनाती हैं। मेरी उलझन से मिस्टर कपूर को क्या लेना-देना। यदि ऐसी इंसान दूसरे की जिम्मेदारी का गट्ठर ढोने लगे तो दुनिया मे कोई दुखी न रह जाय या फिर सभी दुखी हो जायें। ऐसा इसलिए हो जायेगा कि दुख का बँटवारा सभी पसन्द करेगे पर सुख कौन बाँटना चाहेगा।

सुख, बिल्कुल पर्सनल सुख।

न तो लडकी अपनी माँ को देगी और न माँ लड़की को। आदर्श बघारना तो हिन्दुस्तान का तिनका भी जानता है। बात यहाँ तक पहुँची है कि प्रेमी और प्रेयसी, पति और पत्नी भी पर्सनल सुख में एक दूसरे ो हिस्सा देना नही चाहते। दुनिया बिखर रही है। व्यक्तिगत आधारों पर व्यक्ति टूट रहा है पर वह समझता है कि उसे कोई जानता-पहचानता नही है।'

यामिनी की बात का उत्तर देती हुई रिबका तुरन्त यथार्थ की ओर मुड़ गयी थी पर यामिनी रुकी नहीं—

'आग को कभी पानी की जरूरत होती है कभी घी की। वैसे आग कभी बुझना नहीं चाहती। जलते रहने पर ही वह आग है। घी चाहने वाली आग को पानी से बुझाया भी नहीं जा सकता। पानी की भी यही स्थिति है। जहाँ भाप बनकर उड़ा लोग उसे बादल कहने लगे। जब बरस कर धरती की तपन को बुझाने लगा तो फिर पानी की संज्ञा पा गया। आपको शायद याद हो—मेरा फेस-स्केच लेते हुए आपने कहा था—'यौवन की आग को स्नेह चाहिए, वह भी जुबान का नहीं, हृदय का ! केवल बातों का समुद्र उसके लिए धोखा है।'

□ □

कहते-कहते यामिनी परेशान हो गई थीं, जैसे किसी बच्चे के हाथ से खिलौना छिन गया हो।

बातचीत के बीच बेयरा एक कप कॉफी रख गया था। यामिनी ने सिप करते हुए गुस्ताख निगाह से रिबका को देखा था। उनकी आँख से निकलने वाली चिंगारियाँ उलटा प्रभाव डालने लगीं।

जितनी देर मैं रिबका के साथ बैठा था, किसी भी रेस्त्राँ में उतना बैठना बहुत आसान नहीं था। अकेले बैठना तो और भी परेशानी की बात है। उन्होंने परिचय कराया था मिसेज़ यामिनी से।

जाने कैसी मिसेज़ थी वह। बातचीत से लगा था कि वह कई बच्चों की माँ है पर उनके चेहरे पर बच्चों की कोई तस्वीर नहीं थी। रंग-रोगन का लेप असलियत को ढँके हुए था। हाव-भाव में बनावटी ताजगी थी। बोलने में ऐसा लगता था कि जैसे सम्हाल-सम्हाल कर शब्द निकाल रही हों।

बातचीत के दौरान अचानक यामिनी खड़ी हो गयीं और बोलीं—आज मुझे माफ़ करें। घर जल्दी लौटना है। कह कर आयी थी कि दफ्तर से सीधे आऊँगी पर इतनी देर हो गयी। इधर से जा रही थी तो आपका ध्यान आ गया। बस यों ही इधर चली आयी। फिर कभी देर

तक बैठूँगी आपके साथ। कपूर साहब के परिचय का फायदा हुआ। इसके लिए मैं बहुत खुश हूँ।

'बीच वाले की स्थिति बडी दयनीय हो जाती है'—रिबका के इस कथन पर यामिनी ने कोई ध्यान नहीं दिया। नमस्कार की मुद्रा बना कर वे झटके के साथ बाहर चली गयी थी जैसे उन्हें सचमुच देर हो रही थी।

'अब हमें भी चलना चाहिए।'

मेरे इस कथन पर रिबका एकदम चुप रहीं।

कुछ रुक कर कहने लगी—'अच्छा हुआ कोई नही आया। जो लोग जानते है कि मैं मिस रिबका हूँ...केवल रेखाओं द्वारा आकृतियों को बाँधने वाली, वे ही मेरे पास आते है या फिर वे कि जिन्हें असलियत का पता नही है। जब रस के लोभ में आए लोगों को मेरा जीवन रुई का जैसा रेशा रसहीन लगता है तो बेचारे बड़े निराश होते है। भीड मुझे पसन्द भी नहीं है। उससे बौद्धिकता की कोई उम्मीद भी नही की जा सकती है। पर सब जगह भीड़ ही भीड है। क्या आप अपने अन्दर की भीड को महसूस नही करते। और हम लोग भी तो उसी के एक अंश है।'

'यह बेचारी यामिनी इलाहाबाद से आयी है व्याह कर। इसकी इच्छा के विरुद्ध माँ-बाप ने शादी करके खुशियाँ मना ली। अब तो सूरज सिर पर चढ आया है। पुराना इसे भूला नहीं, नये की क्या बात करूँ। कभी मौक़ा मिला तो आपको बतलाऊँगी।

आज कुछ थकावट महसूस कर रही हूँ। किसी काम में मन नहीं लग रहा है। इसके भी अपने ढंग है। कभी-कभी तो कम्प्लीट हड़ताल कर देता है यह मन।

रिबका कास्मापालिटन के बाहर आ गयी।

कहने लगीं कि मैं तो दफ्तर की बंदिश में हूँ। ज्यादा घूमना फिरना होता नही होगा। अच्छा देखा जायेगा। पर हम लोग यहीं मिला करेंगे।

□ □

मैं ।

रिबका के चले जाने के बाद ।

बिल्कुल अकेला था । घर लौटने के अतिरिक्त कोई काम न था । वहाँ भी पसन्द की पुस्तकें घूरती रहती । निर्णय नही ले सका । धीरे-धीरे आगे बढ़ रहा था । रीगल का पोर्टिको पीछे छूट गया था । वहाँ अभी भीड़ नही थी । वेणी का हार बेचने वाला मुस्तैदी से आने-जाने वाली औरतो की ओर ताक कर अपना उल्लू सीधा करना चाहता था । पालिश वाले पेटी पर ब्रुश पटक कर ग्राहक बुला रहे थे । उनकी ओर कोई ध्यान नही दे रहा था, पर इससे वे खीझते नही थे । ऐसे परेशान होने लगें तो चल चुकी दुकानदारी । बातों और संकेतों की बंसी मे कोई न कोई तो फँस ही जाएगा ।

मै आगे की ओर बढ़ रहा था ।

एन०डी०एम०सी० की बिल्डिग के पास वाले स्टाप पर मुझे जाना था । इसे लोग रीगल का बस स्टाप कहते है । अरे भई, रीगल का नाम ढो रहे है लोग ! जनरल पब्लिक की तो बात छोड़िए, वह तो आकड़ो के अनुसार पढी लिखी नही है पर सरकार भी इस गलती को दुहराती है । उसके कण्डक्टर, ड्राइवर, ए०टी०आई० सभी तो रीगल बस स्टाप कहते है ।

मैं जाकर चुपचाप खड़ा हो गया और स्टेट बैंक की ऊँची इमारत की ओर आँखें फैला दी । पटेल चौक तक पार्लमेण्ट स्ट्रीट साफ दीख रही थी । कोई बस नही दिखायी दी । प्रतीक्षा की बात सोचकर वही रुक गया । जाना तो बस से ही था । और कोई रास्ता था नही । अगर रास्ते थे भी तो पैसे वाले थे । उतना पैसा मेरे पास था नही । कोई करना चाहे तो इस महानगर मे सारी कमाई टैक्सी-स्कूटर के किराए मे खर्च कर दे । यह भी नही है कि उसका काम ही बन जाए ।

स्टॉप पर अधिक भीड़ नही थी ।

वहाँ कोई एक स्टाप तो था नही, अनेक बसो का आना जाना रहता है इसलिए लगातार कई एक स्टॉप बनाए गये थे। थोड़ी दूर वाले स्टॉप पर कुछ लोग खड़े थे। सभी सावधान थे कि कोई बस आए नही कि टूट पडे। यह भी तो पता नही था कितनी देर खड़ा रहना होगा। बसो का आना-जाना तो सरकारी राज-काज है। होगा तो होता जाएगा नही तो नही होगा।

एक बस बड़ी तेजी से आयी और खड़ी हो गयी। कुछ सवारियाँ चढ़ी और कुछ उतरी। उतरने वालों की संख्या दो-चार से अधिक नही थी। मैने नेमप्लेट मे लगा बस का नम्बर पढ़ा। वह मेरे लिए नही थी। सामने जन्तर मन्तर का गेट था। उधर से ही पेट्रोल पम्प के सामने से आती हुई एक महिला दिखायी पड़ी। लग रहा था कि वह सड़क पार करना चाहती थी। देखते-देखते वह सड़क के बीच मे थी। तब तक आयी हुई बस चल दी। वह सड़क के इस पार आ गयी।

बिजली के खभो की नियान लाइट सड़क का अँधेरा पी चुकी थी। दौड़ती हुई कारे तारकोल की काली सडक पर रोशनी की कोटिंग करती हुई निकल जाती थी। रात का प्रभाव घनीभूत हो रहा था। किसी को दूसरे की परवाह न थी। सभी का गन्तव्य अलग-अलग था।

जिस खम्भे मे बसों के नम्बरो का प्लेट लगा है उससे थोड़ा दूर हट कर मैं खड़ा था। वह महिला बिल्कुल मेरे पास आ गयी। मैं उसके सम्बन्ध में कुछ सोचने के मूड मे नही था।

वह कुछ और पास आ गयी।

मेरी निगाह उधर मुड़ी। एक उड़ती दृष्टि से मैंने उसे देखा—

अधेड़ औरत।

काली तो नही कहेंगे पर गोरी भी नही कहा जा सकता। मुंह खाली था पर पान की लाली से होठो का मूल रंग गायब था। साड़ी मामूली सी जैसे अभी सोकर आ रही हो बिना कपडे बदले। रंग फीका-फीका लग रहा था। माथे पर कुछ नहीं था। बाल भी उलझे हुए थे। रूखेपन के कारण उन्हे भोला लगना चाहिए था पर उनकी कालिमा और

टेढ़ेपन में शरारत थी। आँचल का ढंग बेतुका था। ब्लाउज़ की अस्त व्यस्ता से जान पड़ता था जैसे उसे अभी-अभी किसी ने मसला हो। उस महिला की आयु के साथ यह अच्छा नहीं लग रहा था। चेहरे की रौनक उड़ी-उड़ी सी थी जैसे कोई चुनाव हार गया हो। कुछ तो थकान और कुछ किसी की खोज की उदासी।

वह मेरे और पास आ गयी।

पूछा—'क्या समय हुआ है ?'

यही कोई नौ बजा है।

'काफी देर हो गयी है। आपको कहाँ जाना है ?' कहते-कहते वह मेरे बहुत पास आ गयी। केवल स्पर्श मात्र बाकी था। उसके पास आने में एक प्रकार की निर्लज्जता का अनुभव मुझे हो रहा था।

मैं थोड़ा दूर हट गया।

अभी उसने कोई दूसरा प्रश्न नहीं किया था। और इतना तो प्रायः लोग पूछते ही रहते हैं। सहज भाव से वह जो कुछ पूछती जाती, मैं उसे बतलाता जाता। जब उसे अपने करीब खिचते देखा तो मैंने रुख बदल लिया किन्तु उससे कोई प्रभाव नहीं पड़ा।

वह मेरी ओर मुँह करके पूछने लगी—

आप कहाँ रहते हैं ?

प्रश्न पूछ कर बनावटी ढंग से उसने आँखें नीची कर लीं। मुझे लगा था कि वह महिला एक फरेब थी फिर भी उत्तर तो देना ही था। उसके प्रश्न भी ऐसे नहीं थे जिनका उत्तर न दिया जा सके।

मैंने अपने रहने का स्थान बतलाया—पहाड़ी धीरज।

बहुत दूर है यहाँ से। किस बस से जायेंगे आप ? दो-चार सेकेण्ड के लिए रुकना पड़ा था मुझे। कुछ कह नहीं सका। चुप रहना ज्यादा अच्छा समझा।

अकेले रहते हैं आप ?

हाँ।

इस 'हाँ' ने मुझे दौड़ाना शुरू किया। मन जाने कहाँ-कहाँ भटकता रहा। ऐसा मैंने क्यों कहा। आगे कोई छल-प्रपंच हो जाये तो कौन सम्हालेगा।

कुछ क्षणों तक दोनों मौन रहे।

मै थोड़ा शंकित हुआ, पर करता क्या!! यदि दूर हटता तो वह वही चली जाती। न तो मैंने कोई पूरा उत्तर दिया और न सवाल किया।

वह महिला कुछ कहने को होती थी पर उसकी जबान न सम्हलती थी। जहाँ वह खड़ी थी, हल्की शराबी दुर्गंध की लहरों का आभास होता था। मैं क्या करता। वह जान-बूझकर पास आ रही थी, मैं जान-बूझकर दूर हट रहा था।

उसने शरारत से मेरी ओर ताका था।

तो आपके साथ मैं भी चलूँगी। कहिए अभी साथ चलूँ या समय बतलाइए बाद में आ जाऊँगी।

मैं ऐसा प्रश्न सुनने के लिए तैयार नहीं था। उम्मीद भी नही थी कि एक अपरिचित नारी इस तरह का सवाल पूछेगी। पता होता तो अकेले होने की बात को छिपा जाता। अब तो मेरी जिज्ञासा के घर में आग लगी हुई थी।

वह अपने प्रश्न का उत्तर चाहती थी।

मैं गंभीर उत्तर देने की स्थिति मे नहीं था। भीरुता कहिए मेरी। मेरा प्राणवान व्यक्तित्व जड़ बन गया था। उसकी आँखें कभी नीचे और कभी सामने देखती थी जैसे मस्ती में प्यास के कारण मेरी आकृति पी रही हों। असलियत क्या थी, मैं नहीं जान पाया था।

मुझे घुटन सी महसूस होने लगी थी।

कुछ ऐसा लग रहा था जैसे किसी ताकतवर व्यक्ति ने मुझे पकड़ कर समुद्र की लहरों की गोद में फेंक दिया हो। अपने अन्त:करण में उठने वाले विचारों के वार झेल रहा था मैं। हृदय में था एक कोलाहल जिसका अंत बहुत पास नहीं दीखता था। अन्दर की आँधी को सम्हाल

पाना कितना मुश्किल होता है। उसे देखने की भी हिम्मत मुझमें नही थी।

वह अपनी बात ऐसे कह गयी जैसे उसे हमेशा कहने की आदत हो। और फिर कहने के बाद किसी पूजी वाले, दरिद्र, शराबी, नेता अथवा सभ्य पुरुष के साथ उसके घर गयी हो, किसी को क्या पता !! रात के एकान्त में समर्पित हो गयी हो। इस शरीर-दान के बदले मिला होगा घृणा अपमान और दस-बीस रुपये। उसे लेकर ज़मीन नापती हुई वह लौट आयी होगी। इस सच्चे नाटक को देखने वाले बहुत कम हैं। सभी अपनी मूक स्थिति में है, कोई बोल नहीं सकता।

उस महिला के सम्बन्ध ज्यादा पूछना ठीक नहीं। सब तो जानते है। अपने शरीर की दूकानदार थी वह। बेचा और पैसे लिए। ईश्वर का दिया हुआ सौदा। बेचकर भी वह सौदा अपने पास रखती थी। कोई ग्राहक खरीदकर भी उसे नहीं पाता था। दोनों इससे खुश थे। कितनी अच्छी थी वह दुकानदारी।

स्टेट बैंक की ओर से एक बस आती दिखायी दी। जो भी नम्बर हो पर सोच लिया था इससे चला जाऊँगा।

अब वह महिला कुछ दूर पर खड़ी हो गयी। बस आते ही पूछा उसने—

कौन सा नम्बर है ?

मैं कुछ नहीं बोला।

वह बड़े झटके से बस में चढ़ गयी। कण्डक्टर ने सीटी दी, बस आगे बढ़ गयी। मुझे भी उसी बस में जाना था पर मैं नहीं जा सका। पीछे हट आया था। महिला ने बस पर बैठ कर मुझे देखा था—प्रति-हिंसा की लपटों से घिरी हुई जैसे उसका तन-मन जला जा रहा हो। विकृति का रोगन उसके चेहरे पर पुत गया था। उसने पता नहीं अपने मन में क्या सोचा हो। अरे, सोचने दीजिए। सारी दुनिया का यही हाल है। कुछ लोग मौके की तलाश करते हैं और कुछ इतने भयभीत होते हैं कि मौका पाकर भी कुछ नहीं कर पाते। अधर में लटकना भी अच्छा

नहीं लगता है।

वह चली गयी। मैं बस की प्रतीक्षा में था। कब तक खड़ा रहेगा कोई पता नहीं रहता। अब दो-चार लोग आ गये थे। कुछ दफ्तरों के बाबू लगते थे कुछ नौकरी पेशा औरतें। मन की हलचल के बाद बोझ हट गया था। पर बड़ी कठिनाई से सम्हाल पाया था।

एक जवान और दूसरे अधेड़ ने मुझसे पूछा था—

'साँवले रंग की कोई लेडी तो यहाँ नहीं देखी आपने ?

'हाँ, कुछ मिनट पहले थी यहाँ। बस आयी और उसमें बैठकर चली गयी।'

'किस नम्बर बस से गयी' ?

'पैंतालीस नम्बर में रीगल की ओर गयी।'

वे दोनों तेजी से रीगल की ओर बढ़ गये थे। बिजली की तेज रोशनी की किरणें उनके शरीर में चुभ रही थीं। कौन थे वे ? वह महिला कौन थी ? मुझे क्या पता ? यह घटना मेरे लिए पहली थी अपते ढंग की। वे आदमी जाते समय खुसुर-फुसुर कर रहे थे—'यार आये तो ठीक समय पर साली चली गयी'।

उनके चले जाने के बाद एक कान्सटेबल आया। वह उन तीनों को खोज रहा था। उसकी बात से जाना कि वह भी ग्रुप का आदमी था। थोड़ा पिछड़ गया था। उनका पता लगाता हुआ वह रीगल की ओर चला गया था।

□ □

मैं बस में बैठ गया था। याद आयी कि मैं रिबका से मिलकर लौट रहा था। बस चलने लगी। उस स्टैंड वाली महिला में और रिबका में तुलना करने लगा। अन्तर, अन्तर और अन्तर।

बहुत अन्तर है दोनों में।

इसी अन्तर को कम करने वह मेरे पास आ गयी थी। क्या उसमें

कोई सच्चाई थी । यदि नही तो असंगत बात मन में क्यों आती है ? औरत और मर्द के बीच का फासला कम होने का क्या मतलब लगाया जाता है, पता है आप को ? एक अनुजीवी नारी बिना पराश्रय के कैसे जिएगी । जिस दिन उसे दूसरे के अवलम्ब की आवश्यकता न रह जाएगी उस दिन उसे मुक्ति मिल जाएगी । अपने देश में जल्दी यह सम्भावना नहीं की जा सकती । सम्पन्न परिवार की औरतें भी पराश्रय का जीवन जीती हैं । दो-चार की बात छोड़िए । उसे मर्द अपनी मुट्ठी में बन्द रखना चाहता है । लोग तर्क भी देते हैं कि बिना आधार के कोई नहीं जीता । अपनी साज-सज्जा के लिए यदि वह किसी पुरुष के सामने अपना मुँह खोलती है तो किसी को बुरा क्यों लगता है ! !

यह गोल मटोल दुनिया पैसे की धुरी पर टिकी है।

जिस दिन यह धुरी हट जाएगी, इसका क्या होगा, यह कहाँ जाएगी ! ! तभी तो लोग मजबूरी के खुले मुँह को पैसों से बन्द करने की कोशिश करते हैं ।

मैं आपकी बुद्धि पर विश्वास करता हूँ इसलिए नहीं कि सचमुच बुद्धिमान होना कोई बड़ी बात है बल्कि इसलिए कि बुद्धि पाकर आप उसका अपव्यय नहीं करते । बनिये के पक्के सौदे की तरह सहेज कर रखते हैं । बस इसीलिए मैं आपको समझदार कहता हूँ पर आज संदेह की स्थितियाँ पैदा हो गयी हैं ।

कपड़ा, रोटी, मकान रटते-रटते तो आदमी का शरीर छीज गया । आंतरिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए मनुष्य के चेहरे का नकाब कभी-कभी उतर जाता है । इसमें अचरज की तो कोई बात नहीं है । वह सारी दीवारें तोड़ कर अपने असली रूप में बाहर आ जाता है ।

मैं जानता हूँ लोगों के स्वभाव को । सभी अपने बाहरी अक्षांश पर बनावटी रूप में रहना पसन्द करते हैं । आप न भी देखना चाहें तो इससे क्या होता है । आपको देखना पड़ेगा । दुनिया में आप रहते जो हैं । इसे देखने के लिए मैं भी मजबूर हूँ ।

घर पहुँचकर देखा तो धर्मराज सोया हुआ था । आहट सुनकर

आलस में ही उठ बैठा—

'आज तो शाब देर हो गयी।'

'अरे नहीं धर्मराज आज तो मैं जल्दी आ गया। तुम तो जानते हो मैं इससे भी ज्यादा देर में लौटता हूँ। और हाँ, अभी तो ग्यारह के आस-पास ही समय होगा।'

'शाब, जोशी शाब आये थे। कहते थे—वे आप से बातें करना चाहते थे। मुझे एक चिट्टी दे गये हैं। अभी देता हूँ आपको।'

यह कहता हुआ धर्मराज अपने हनुमान चालीसा से निकाल कर चिट्ठी मुझे देने लगा।

'और तो कुछ नहीं कहा?'

'नहीं शाब, और कुछ नहीं कहा।'

मैं सोच नहीं पा रहा था कि जोशी ने चिट्ठी किस बात के लिए दी है। ऐसा तो वह कभी नहीं करता था। मेरे यहाँ उसका आना-जाना भी कम ही होता था। दफ्तर में मिला था। अगर कोई बात थी तो उसने वहाँ बतलाया क्यों नहीं।

जोशी की चिट्ठी मैंने नहीं पढ़ी।

मन मे जिज्ञासा ज़रूर थी पर उस वक्त मेज़ पर रख दिया था।

खाना लगाता हुआ धर्मराज कहता जा रहा था—

'शाब, जोशी शाब तो अपने यहाँ कभी नहीं आते थे पहले, आज कैसे आ गये?

मैंने उससे कुछ नही कहा। बहुत सोचता है वह। जब पूछिए—क्या सोच रहे हो—'कुछ नहीं, कह कर जैसे शरमा जाता हो।

सोने से पहले मैं अपनी जिज्ञासा को शान्त करने के लिए चिट्ठी पढ़ने लगा—

'...कल तुम्हारा दफ्तर आना बहुत जरूरी है। कहीं ऐसा न हो कि तुम छुट्टी ले लो। आजकल तुम्हारा ध्यान कला से हटकर कलाकार की ओर चला गया है। बतलाऊँ कल आना क्यों जरूरी है? दफ्तर में एक केस हो गया है, बस इसीलिए।

ईडियट कहीं का। केस हो गया है तो मैं क्या करूँ। मैं पुलिस का अधिकारी भी तो नहीं हूँ कि झूठ को सत्य या सत्य को झूठ करूँ। न मैं ज्योतिषी हूँ कि किसी के भाग्य का यात्रा-पथ विचारूँ। फिर मेरी क्या ज़रूरत है। मेरी समझ में नहीं आया कि वह जोशी का बच्चा यहाँ आया क्यों। मैं कुछ भी करूँ इससे मतलब। यह मेरे पीछे क्यों पड़ा रहता है!!

मैंने अवाज दी—

'धर्मराज।'

'जी शाब'

'जोशी और कुछ कह गया था?'

'नहीं शाब।'

'साफ-साफ कहो न?'

'नहीं शाब, उन्होंने और कुछ नहीं कहा। मैंने तो उन्हें बैठने को कहा था। यहाँ से वह चाय पीकर गये थे। चाय पीते वक्त वे तस्वीर की ओर देख रहे थे, बोले कुछ नहीं।'

'ठीक है, ठीक है, जाओ सो जाओ।'

जिस कला-चित्र की ओर धर्मराज ने संकेत किया उसे मैं जामा मस्जिद के पास न्यू मुर्गी अण्डा मार्केट के एक कबाड़ी से खरीदा था। उस पर किसी पेण्टर का नाम नहीं लिखा था। मुझे अच्छा लगा था, ले आया था।

फटे हुए बिस्तर पर एक पकी हुई औरत लेटी थी। तकिया नाम भर के लिए था। कवर एकदम चिथड़ा। शरीर के वस्त्र सिलवटों के भार से दबा-दबा सा।

छोटा बच्चा बायाँ स्तन दोनों हाथों से दबोचे था अग्रभाग अपने मुँह में डाले हुए। पास बैठा हुआ उसका बड़ा बच्चा अलमुनियम की कटोरी में चावल-दाल निकाल कर खा रहा था। बच्चे का पेट निकला हुआ था। हाथ पैर पर भूख का प्रभाव दीख रहा था।

मकान के पीछे एक पेड़ था—बिल्कुल ठूँठ। टहनियाँ वर्षा-घाम

ग्रौर समय की मार सहते-सहते सड़ गयी थीं। ग्राँधी ने कुछ के साथ बलात्कार भी किया था। तने को छोड़ कर पूरे ठूँठ की छाल उधिड़ गयी थी।

ऊपर ग्रासमान में एक हवाई जहाज उस ठूँठ के ऊपर से भागा जा रहा था।

मैं ग्रनुमान नहीं लगा पा रहा था कि जोशी इस चित्र की ग्रोर क्यों ताक रहा था। होगा—सामने ही तो लगा है, देखा होगा। हाँ दफ्तर वाली बात कुछ ग्रनोखी थी। यह जोशी मेरा हितैषी बना फिरता है। पीठ पीछे काटता रहता है। इससे बोलने को मेरा मन नहीं करता। दुसरों की बुराई करने वालों को ग्रपने जीवन की मैली चादर नहीं दिखायी पड़ती। ग्रच्छा तो कल दफ्तर ज़रूर ग्राना है—दफ्तर वही दफ्तर। □ □
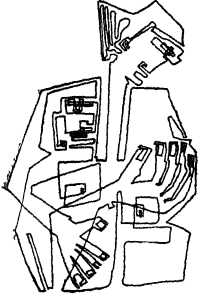
दूसरे दिन दफ्तर जल्दी चला गया था। जाता तो वैसे भी पर जोशी की चिट्ठी का प्रभाव मन पर था। अपने कमरे में जाने से पहले दफ्तर की बिल्डिंग के सामने वाले पोर्टिको में थोड़ी देर के लिए रुक गया था।

सोचा था कोई मिल जायगा तो असलियत जान लूँगा। जोशी की टोह में था, मिला नहीं। मिसेज़ सक्सेना भी नहीं दिखायी दीं। यह नया नाम सुनकर आप चिन्तित न हों। मेरे लिए यह नया नाम नहीं है। मेरे दफ्तर में इन्हें भरी-पूरी डायरी कहा जाता है। जो कुछ घटित होता है, इनमें अंकित हो जाता है। बातें इन्हें कभी भूलती ही नहीं। बस अपने सवाल की सुई इनके इयरड्रम के रिकार्ड पर रख दीजिए और मन चाहे प्रोग्राम सुनते जाइए।

किसने किसको घूर कर देखा? उसके घूरने के कितने अर्थ निकल सकते हैं? कौन किसके साथ गया या आया? दफ्तर में कौन-कौन नीचे सिर करके बैठते है। कौन मटरगश्ती करता है? कौन पिन उठा-कर उससे दाँत खोदता है? कौन दफ्तर में पर्सनल लेटर लिखता है? कौन औरतों की नंगी तस्वीर बनाकर दोस्तों में बाँटता है? ऐसी ही

अनेक बातें है और उन्हें उसी संदर्भ में ठीक-ठीक याद रहती है । इस प्रकार का लेखा-जोखा रखना आसान काम नहीं है । अगर सवाल ठीक से किसी ने नहीं किया तो बस उसी पर बरस पड़ीं । मेरी ओर जिज्ञासा से देखती हैं वे । इसलिए नहीं कि उनके मौन बंजर में मैं मुखर पौध रोपूँगा वरन् इसलिए कि मैं ऐसा कुछ नहीं करूँगा ।

जब पोर्टिको में कोई नहीं मिला तो मै अन्दर चला गया । पहले पहुँचने के कारण दफ्तर खाली-खाली लग रहा था ।

दफ्तर का समय होने वाला था ।

लोग आने लगे थे । दफ्तर की कुर्सियाँ भरने लगी थीं । पंखों की रफ्तार तेज हो गयी थी । चपरासी मेजों पर फाइलें रखने लगा था । चहल-पहल धीरे-धीरे बढ़ने लगी थी ।

मुझे जोशी की चिट्ठी का मैटर याद आया था । वातावरण की शाँति पर शंका का पिरामिड उठ रहा था । ऐसा उसी दिन हुआ था । कारण कई थे पर कोई इतना साफ नहीं है कि आप से बतलाऊँ ।

मै अपनी कुर्सी पर बैठा सिगरेट पी रहा था । धुएं का छल्ला घनी-भूत होकर ऊपर उठता था और टूट जाता था । मन कहता था किसी से बातें करूँ किन्तु कोई साथी-बराती दिखायी नहीं पड़ता था । कुर्सियां बेचारी बोल नहीं सकती थीं । बोलती वही है जिन पर कोई बैठा रहता है ।

चपरासी फाइलों के तीन पुलिन्दे रख गया था । मैं उन्हें ऐसे देख रहा था जैसे कोई सरोकार न हो ।

सामने से सेक्शन आफिसर गुजरे पर मैं देख न सका । जब उनके चपरासी ने दरवाजा खोला तो डोर-क्लोजर की आवाज सुनकर मेरा ध्यान उधर चला गया । जो खामोशी उनके आने पर अचानक छा गयी थी कमरे के अन्दर, जाते ही वह गायब हो गयी । कुछ तिकोनी मुस्कानों की हरकतें आसानी से देखी जा सकती थीं ।

सिगरेट खत्म हो चुकी । फिल्टर राखदानी में रख दिया । धुआँ आस-पास था तो जरूर पर दिखायी नहीं देता था । बड़ा भयानक होता है यह धुआँ ! मैं तो इससे प्रायः ऊब जाता हूँ । सिगरेट से ऊब खत्म

होती है ज़रूर पर धुआँ ! कुछ मत पूछिए ।

मिसेज सक्सेना मेन गेट की ओर से आती दिखायी पड़ीं । कुछ-कुछ मुस्करा रही थीं जैसे किसी को परास्त करके आयी हों । रंग-रोगन की कोटिंग से उनके चेहरे पर नयी चमक आ गयी थी । दूर से सचमुच वह बहुत सुन्दर लग रही थीं । चाल में गर्व था । इसे वह खुद भी समझती हैं । दफ्तर में उन्हें लोग 'मिसेज' की पूंछ लगाकर पुकारते हैं पर उन्हें देखकर नहीं लगता कि उनका विवाह हुआ है । ऐसा उनमें क्या है ! माँग में सिन्दूर नहीं होता, कलाई में चूड़ियां नहीं होतीं, एड़ी साफ-सुथरी रहती है । ललाट को गोल-मटोल टीका नहीं मिलता । बहरहाल उनके पास मिसेज होने का कोई प्रमाण-पत्र नहीं है, लिखित अलिखित कोई नहीं ।

मिसेज सक्सेना के हाथ में वैनिटी बैग था ।

जोशी कहता है कभी-कभी—'साली ऐसे बनती है जैसे इन्द्रपुरी की रूपकन्या हो । तमीज़ नहीं है । ऊपर से चमक-दमक इतनी पर वैनिटी बैग में भरे रहती हैं...।' जोशी चुप हो जाता है । बहुत पूछने पर बतलाता है । 'मूंगफली' ।

अब मिसेज सक्सेना मेरी मेज़ के पास आ गयीं ।

उस दिन उन्होंने सुआपंखी साड़ी पहन रखी थी । विधाता ने उन की हड्डियों को मांस की पूंजी जोड़ने से मना कर दिया था । आँखें बिल्कुल बिल्ली की आँखों जैसी । देखने-ताकने का ढंग भी ठीक वैसा ही । उनकी आंखों की शरारत किसी भी व्यक्ति की पहचान में तुरन्त आ जाएगी । पैड्स का आधार देकर व्यक्तित्व को आकर्षक बनाने की चेष्टा साफ जाहिर थी । हाव-भाव से लगता था कि दफ्तर के सभी कर्मचारियों को सजा देने के इरादे से दफ्तर में आयी हों ।

'ओ ! हलो, मिस्टर कपूर, भई आज तो मुझे बहुत देर हो गई । साहब आ गए होंगे'—मिसेज सक्सेना ने पूछा ।

'हाँ, साहब आ गये हैं पर इतना परेशान होने की क्या बात है । दस-बीस मिनट लेट का कोई मतलब नहीं होता ।'

'नहीं नहीं, ऐसा नही है। जब तक कोई माइण्ड नहीं करता, ठीक है। वैसे किसी भी अफ्सर के लिए एक मिनट की देर भी देर है।'

'फिर भी आज तो कोई बात नहीं है।'

मेरी बातों से मिसेज सक्सेना को कुछ राहत मिली। मैं तो चाहता था बिना पूछे कुछ बतलाएँ पर उनकी मुखाकृति को देखकर लगता था वह कुछ नहीं बतलाना चाहतीं। दृष्टि बचाती सी सहमी-सहमी सी अंदर चली गयी थीं। जिस समय वह दफ्तर में आती है, थोड़ी देर के लिए दफ्तर का काम बन्द सा हो जाता है। आकर्षण की बूँद बन जाती हैं वे। यह तो रोज की बात है।

जोशी की चिट्ठी।

बात का पता नहीं लग पाया। कर्मचारियों में परस्पर कोई बात नही हुई, सभी अपने काम मे लगे थे। लंच के समय की बात होती तो दूसरा भी सोचा जा सकता था पर अभी-अभी तो लोग आए थे और तब आए भी नहीं थे। हिन्दुस्तान के दफ्तरों में तो समय होते-होते होता है। थोड़ी देर में भर जाएगा दफ्तर। अब धीरे-धीरे काम जोर पकड़ रहा था।

जोशी !!

अभी नहीं आया था। क्या बात हो गयी, पता नहीं। सामने काम पड़ा था पर उसकी चिट्ठी बार-बार ध्यान में आ जाती थी।

आधे घण्टे बाद जोशी आया। हाँफ रहा था। मैं शान्त था। लग रहा था कि वह बोलने की स्थिति में नहीं है। जिस व्यक्ति को तौल-तौल कर बोलने की आदत पड़ जाती है वह धारा-प्रवाह बोलने में हिचकता है। भाषण नहीं देना है, केवल अपनी बात बतलानी है। जोशी से वह भी नही हो पा रहा है।

आते ही जोशी ने कहा—'आदाब अर्ज है जनाब।'

आओ भई नमस्कार।

कब से तुम्हारा इन्तज़ार कर रहा हूँ। कम से कम अपने सम्बन्ध में तो साफ-साफ लिखा करो। रहस्यवादी होना बड़ा खतरनाक होता है

कभी-कभी। अच्छा यह बतलाओ कि देर कहाँ हुई।

'यहाँ कुछ नहीं सारी बात मेरे कमरे में होगी'—जोशी ने कहा।

पास वाले साथी को कह कर मैं जोशी के साथ चला गया। वैसे तो कोई आता नहीं पर यदि आया तो साथी उससे बतला देगा कि मैं जोशी के कमरे में बैठा हूँ।

आगे-आगे जोशी पीछे मैं।

एक छोटा कमरा जोशी को मिला है। पहले तो वह अकेले बैठता था उसमें, पर बाद में एक लेडी टाइपिस्ट आ गयी। काफी दिनों तक दोनों एक साथ बैठते रहे। जब तक वहाँ टाइपिस्ट नही थी जोशी कुछ लापरवाही से काम करता था। बाद में बड़ा चुस्त-दुरुस्त रहने लगा काम के प्रति भी मन लगाने लगा। पता नहीं बीच में क्या और हुआ कि वह टाइपिस्ट उस सीट पर से हटा दी गयी।

कुछ फेर-बदल जोशी में भी हुआ पर उसका अधिक असर बाहर नहीं दीखता था।

'अकेले तुम्हारा मन इस कार्नर में लग जाता है क्या'?

'किसी तरह समय बिताता हूँ'।

'किसी प्रकार से तुम्हारा क्या मतलब'?

'मतलब मेरा कोई नहीं है'।

'जोशी, तुम पहेली क्यों बुझाते हो'।

झुँझला उठा जोशी—'मेरी पोजीशन माइनस है। प्लस की बात तो कभी सोचता भी नहीं। आओ बैठो'।

जोशी की सीट के सामने एक दूसरी सीट थी। मैं बैठ गया। दाहिनें-बाएँ कुर्सियाँ रखी थी पर आमने-सामने बात करने का मज़ा ही कुछ और होता है। जोशी ने अपने पीछे वाली दीवाल पर एक चित्र टाँग रखा है। सामने बैठने पर साफ दिखायी पड़ता है। दफ्तर ने तो यह चित्र लगवाया नहीं होगा।

चित्र का चुनाव जोशी का था।

रिबका की याद आ गयी। चित्र में केमरे का कमाल था। कला-

कार का शिल्प भी उच्च कोटि का था। वह छेनी और हथौड़ी भी धन्य है जिसने इसकी प्रतिभा को रूप दिया होगा।

चित्र में नाचते हुए गणेश।

कागज पर पत्थर की प्रतिमा कितनी सुडौल लगती थी। नृत्य की मुद्रा पूरी नही थी। दाएँ-बाएँ का कुछ अंश टूटा हुआ था। नृत्य मग्न स्थिति में नग्नरूप और कमर में आभूषण करधनी जैसा, पैरों में पायल और गले में माला के दो रूप। एक पत्तियों को काट कर बनायी गयी थी दूसरा मोतियों से। सूड थोड़ी सी नीचे आकर, ऊपर जाकर फिर नीचे आती हुई। अगला हिस्सा कुंडली बनाता हुआ। नाभि प्रदेश बिल्कुल नग्न। मस्तक आभूषण मंडित पर कुछ अंश विक्षत। कानों का रूप बड़ा-बड़ा। करधनी की लड़ी जाँघ पर आती हुई और जाँघ एकदम खुली हुई थी। सूड के पास के दाँत टूटे हुए थे। आँखें किसी दृश्य को देखने में इतनी विभोर कि देख सकने में असमर्थ जैसी थीं। पैर छोटे और शरीर भारी-भरकम था।

गणेश की बायीं ओर आधा चित्र दीख रहा था किसी अँगड़ाई लेती हुई युवती का। नीचे का भाग साफ नहीं दीख पड़ा। कुक्षि वाला हिस्सा सपाट सा था। एक उरोज अपनी गर्वोन्नत मुद्रा में झाँक रहा था। उसे कठोर बतलाने के लिए मध्यकालीन चिन्तन के आधार पर कोई उपमान खोजने की आवश्यकता नहीं क्योंकि वह मात्र एक चित्र था।

सच बतलाऊँ आप से तो यही कि वह पत्थर था। पत्थर की तस्वीर भी उसे कह सकते है। पत्थर के समान किसी व्यक्ति से भयभीत हो सकते है पर पत्थर से क्या डरना।

☐ ☐

ऐसा था वह चित्र।

मैं कहाँ उलझ गया। देर वाली बात मैंने फिर से कह दी।

'आज जिस बस से मैं आ रहा था स्पेशल थी। गुरुद्वारा रोड से उसी बस में एक लावारिस बच्चा चढ़ गया। रहा होगा चार साल का। सवारियाँ कम थीं। पहले तो एक सीट पर वह बैठा बाद में दूसरी, तीसरी खोजने लगा। देखने वालों ने ध्यान नहीं दिया। बस स्पीड में चली आ रही थी।

कण्डक्टर ने खोजबीन शुरू की—

'किसका बच्चा है सम्हालो' ?

कोई नहीं बोला। एक महिला, जिसका शरीर सजावट की दूकान था, से कण्डक्टर ने पूछा—'आपका तो नहीं' ?

महिला ने बड़ी अदा से नकारात्मक उत्तर दिया। सभी लोग हँस पड़े। कहा उसने कुछ नहीं पर कहती तो ऐसा कुछ कहती—'ऐसा कैसे हो सकता है'।

एक कालेज गर्ल ने बच्चे को गोद में लेना चाहा। बच्चा नहीं आया। संभव है मातृत्व का आभास वहाँ न मिला हो। बस रोक दी गयी। बच्चा रोने लगा। ड्राइवर ने उसे गोद में ले लिया। वह रोता रहा और रोता रहा। बस चल दी और बच्चा चुप हो गया।

अब कण्डक्टर और ड्राइवर से समस्या सवारियों ने छीन ली। सभी निदान खोजने लगे। साठ साल की बुढ़िया ने बतलाया—'बस गुरुद्वारा रोड लौटा लो। वहीं इसके माँ-बाँप होंगे'।

सरदार जी बोले—'थाने चलो'।

लाला जी ने सलाह की टोकरी में अपनी मोटी जबान का फल रखा—'डी. टी. सी. जिम्मेदार होगी जनाब, आपको क्या पता' ?

थाना पास ही था। ड्राइवर और कण्डक्टर बच्चे को वहाँ ले गये। थाने में दरोगा जी थे नहीं। पता लगा कि गश्त पर गये हैं। ऑफिस का समय हो गया था।

थाने के मुंशी ने कहा—'इस बच्चे का जिम्मेदार मैं नहीं हूँ'।

एक अहेतुक हितैषी बोले—'थाना तो होगा'।

मुंशी ने कुर्सी की भाषा में जवाब दिया—'नहीं वह भी नहीं होगा'।

आपस में कानाफूसी होने लगी कि किया क्या जाए ? किसी की समझ में कुछ नहीं आ रहा था कोई बहुत समझ रहा था ।

थाने में बच्चा रोने लगा । ड्राइवर ने उसे गोद में उठा लिया । पब्लिक सलाह हुई—'क्यों न कोतवाली चला जाए' । मुझे दफ्तर के लिए देर हो गयी थी । वह बस वहीं छोड़ दी । प्रश्न अपने साथ लेकर चला आया कि वह बच्चा कहाँ होगा । स्कूटर से आ रहा हूँ और करता ही क्या ? तुम तो समय से आ गये होंगे' ?

'हाँ, मैं आ गया था । तुम दिखाई नहीं पड़े तो थोड़ा परेशान जरूर हुआ था पर यह जानता था कि आ रहे होगे । दिल्ली मे कहीं भी समय से पहुँचना अपने वश में नहीं । अपनी मेज का काम आज जरा जल्दी निबटाना था और कल तुम्हारी चिठ्ठी मिली थी ।

जोशी मुस्कराया ।

मुझे अच्छा नहीं लगा । वह कुछ देर तक कुछ नहीं बोला । मैं भी चुप ही रहा ।

वह कहने लगा—'कुछ ऐसी घटना घट गयी कि उसे भूलना मुश्किल हो रहा है । उसी घटना को तुमसे बतला कर जी हल्का करना चाहता था । बात यों हुई कि मिसेज़ सक्सेना कल जरा कुछ लेट आयी थी । यहाँ एक [अचंभे वाली घटना घटी । कोई वैसी घटना के लिए उम्मीद नहीं करता था । चाहता था कि घर पर ही तुमसे बातें करूँ पर तुम मिले नहीं । धर्मराज को पत्र देकर लौट आया था । थका था, ज्यादा देर तक रुकना सम्भव नहीं था । सोचा दफ्तर में बात करूँगा । फिर सन्देह हुआ 'सम्भव है तुम दफ्तर न जाओ' ।

तुम भई जोशी, भूमिका बहुत बाँधते हो । साफ कहो कि घटना क्या घटी ?

बात यों हुई कि कल मिसेज सक्सेना देर तक हिसाब मिलाती रहीं । दफ्तर के कर्मचारी एक एक करके जाने लगे । उन्होंने अपना सिर नही उठाया । साहब भी अन्दर अपना काम निबटा रहे थे । तुम जानते हो सेक्शन इंचार्ज हफ्तों से लगातार मुझे डाँट रहा है । ग़नीमत तो

यह है कि मुझे चार्जशीट नहीं दी गयी । मेरा काम पीछे है। मन नहीं लग रहा था पर मन लगाये बैठा था । पिग्रन ने कहा था—'सभी चले गये है। क्या आप अभी बैठेंगे ?

सभी चले गए ! ! क्या साहब भी चले गए ?

हीं हीं करता हुआ वह बोला—'नहीं साहब नहीं, साहब है । और मिसेज सक्सेना भी हैं अभी ।

'मैं जब अपनी फाइलें बाँध कर बाहर आया तो मिसेज सक्सेना अपनी सीट पर नहीं दिखीं । काम से अन्दर साहब के पास गयी होंगी । मैं साहब के कमरे के दरवाजे पर खड़ा हो गया, 'सलाम साहब' का पोज़ बना कर । साहब की आदत का तुम्हें पता है । यदि कोई उन्हें सलाम न करे तो वह उनका दुश्मन है । उनकी हजार हाथ लम्बी झूठ में जब तक कोई 'हाँ' की ऐंठन न लगाए तब तक उन्हें सन्तोष नहीं होता। क्वालिफिकेशन का सर्टीफिकेट किसी यूनिवर्सिटी से लाए हैं उसे वे खुद ही चैलेंज करते रहते हैं । काम करते है कम पर स्वाँग ज्यादा होता है । होता उनसे कुछ नहीं । तुमने देखा होगा बड़े साहब के सामने यह कैसे भीगी बिल्ली बन जाते हैं ।

'फिर वही घुमाव फिराव की बातें ।'

'नहीं जी नहीं' की टेक लेकर बात आगे बढ़ायी जोशी ने—

'अन्दर बातें चल रही थीं । मैंने अपने कान उधर दे दिए थे । आवाजों की महक को केवल कान ही सूँघ सकते हैं ।

अच्छा-अच्छा कहो भाई—

मिसेज सक्सेना अन्दर बोल रही थीं—

'मैं क्या करूँ ! जितना हो सकता है उतना करती हूँ । आप मेरी मजबूरियों को समझने की कोशिश कीजिए । साहब, साहब, साहब अब तो चिढ़ लगती है इस शब्द से । मैं मानती हूँ कि आपने मेरी मदद की, सिस्टर की शादी में तमाम सामान दिया, सारा प्रबन्ध करवाया । दिल-चस्पी लेकर मेरा भार हल्का किया । पर क्या इसके पीछे...।

'जरा धीरे बोलो'—साहब ने कहा ।

'इममे धीरे-धीरे बोलने की क्या बात है ? अब तो सहते सहते इतना सख्त हो गया है यह दिल कि धीरे बोलने की हिम्मत ही नही रह गयी।

आप ही बतलाइए कि शादी के तीन महीने बाद वाली घटना के मूल मे क्या आप नही है। अभी तक धीरे बोलने की कौन कहे मैंने तो अपना मुह ही बन्द कर रखा था पर अब नही सहा जाता। फूल सी बहन का चेहरा बार बार याद आता है जिसे सूँघने के बाद तुमने मसल डाला...मसल डाला।' मिसेज सक्सेना गुस्से मे बोल रही थी। साहब चुप थे। बीच मे मौका ढूँढ़ कर उन्होने कहा—'बैठो तो सही।'

यह बात मिसेज सक्सेना को तीर जैसे लगी।

'क्या बैठूँ ? बैठना बेकार है। दफ्तर का काम खत्म हो चुका हे। काम बतलाइए या बाहर जाऊँ मै।

साहब की दबी-दबी जबान दीवाल भेद कर बाहर निकल रही थी—'अपनी गलतफहमी दूर करो मिसेज सक्सेना। यह शोर मचाने की जगह नही है। किमी को धन ऐसे नही मिल जाता। धन कमाने के तरीके होते है। मकान खड़ा करने की तरकीबे होती है। धन दुनिया मे बहुत है, बटोरने वाला चाहिए। तुम्हारी सिस्टर मे धन कमाने की कला थी। मेरे साथ उसका प्रयोग किया गया। यदि तुम अपनी तरक्की चाहती हो, चाहती हो कि काम कम करना पड़े और कुछ एक्सट्रा एक्रीमेट मिल जाए तो उसके लिए शोर सही नही होगा। मेरी बात पर सोचो, गभीरता से विचार करो, फिर जवाब दो।'

'अगर तुम्हारा इशारा है कि सध्या के जीवन के अन्त मे मेरा हाथ है, तो यह सरासर गलत है। पहले अपनी हैसियत देखो फिर बाते करो। तुम्हे पता है जिसे तुम दूध की धुली समझ रही हो उसमे क्या-क्या गुन थे। अगर बात आगे बढाओगी तो लपेट मे कई लोग आयेगे। मुझे पता है अपने दफ्तर का जोशी...' इतना बतला कर जोशी रुक गया जैसे कुछ गलत कर गया हो।

उस वक्त उसका भयाक्रात चेहरा देखने लायक था। वह नीचे की

ग्रोर देखने लगा । मैं कहता भी क्या ? बड़ी जल्दी उसने बात को ग्रागे बढ़ाया यह सोचकर कि मैं भाँप नही सका ।

जोशी ने कहा कि वह बैठा सुन रहा था । मिसेज सक्सेना भी ग्रपनी पर ग्रा गयीं—

'ग्रापको पर्सनल कमेण्ट करने का कोई हक़ नहीं है । मेरे पास ऐसे सबूत हैं जिनसे ग्रापको छुटकारा नहीं मिलेगा । साहब हैं ग्राप दफ्तर के । ग़रीबी से खेल खेलकर ग्राप सुखी नहीं रह सकते । इज़्जत सभी को प्यारी है, उसे बेच कर दफ्तर में तो क्या स्वर्ग में भी नौकरी करना मुझे पसन्द नहीं है ।'

'यह कहते हुए मिसेज सक्सेना दफ्तर के साहब वाले कमरे से बाहर चली ग्रायीं । मैं घर जाने के लिए तैयार बैठा था । उन्होंने मुझसे कुछ नहीं कहा । वह क्रोध में थीं । हाथ का बैग मनहूस के मुँह सा लटका हुग्रा था । पैर सही नहीं पड़ रहे थे जैसे बिना किसी दिशा ज्ञान के वह ग्रंधेरे में घुसी जा रही हों...ग्रागे...बहुत ग्रागे उससे भी ग्रागे। ग्रौर भी कि जैसे उन्हें वापस ही नहीं ग्राना है ।'

'मैं उनके साथ ही दफ्तर से बाहर निकला । ग्रपने पर काबू पाना कितना कठिन होता है पर निश्चय कर लेने पर वही ग्रासान हो जाता है । बहुत हिम्मत बाँध कर मैंने पुकारा—'मिसेज सक्सेना ।'

वे पीछे मुड़ीं, रुकीं थोड़ा ग्रौर कहने लगीं 'ग्राइए जोशी जी । सुनीं तुमने इस बदतमीज़ साहब के बच्चे की बातें । साले को बड़ा घमण्ड हो गया है । मेरी सिस्टर की जान लेकर ग्रब शान बघार रहा है । क्या क्या बतलाऊँ तुमसे । पोस्टमार्टम की रिपोर्ट से सारी बातें साफ हो गयी हैं । वह कहानी मुझसे दुहरायी नहीं जाती' ।

मिसेज सक्सेना रुग्राँसी हो गयीं । बोल नहीं फूट रहे थे । वेदना का नीहार घिर ग्राया था उसे चीरती हुई वह बस स्टाप को ग्रोर बढ़ रही थीं । उन्हें यह परवाह कम थी कि मैं भी उनके साथ रहा हूँ । चलने की तेजी से लगता था कि घर में समस्या का सारा निदान रखा है । पहुँचते ही एक घूंट पानी के साथ उसे गले के नीचे उतार लेंगी ।

मेरा-उनका साथ छूट गया।

मैं फिर कहीं नहीं गया, सीधे तुम्हारे पास पहुँचा। तुम मिले नहीं। करता क्या, धर्मराज को चिट्ठी देकर घर चला गया। आज आ रहा हूँ देर से। तुमसे एक बात डिस्कस करना चाहता हूँ कि मिसेज़ सक्सेना और साहब की खरी-खोटी में मेरा नाम क्यों आया? आखिर वह चाहता क्या है? तुम जानते हो संध्या के एक्सीडेंट में साहब का हाथ है। लोगों का कहना है जानबूझ कर सारा काम किया गया है। यह बात भी सही है कि इसके पीछे गम्भीर कारण भी हो सकते हैं पर उन कारणों का पता लगाना आसान नहीं था। अब क्योंकि मिसेज सक्सेना नाराज़ हो गयी है इसलिए सारा मामला अच्छी तरह सामने आएगा।'

जोशी की बातें मैं ध्यान से सुन रहा था। उसे पूरी उम्मीद थी कि मैं उससे कहूँगा कि मैं साहब की जबान खींच लूंगा। वह तुम पर चार्ज कैसे लगाएगा। यह अपमान की बात है। तुम जैसे व्यक्ति पर वह चार्ज कैसे लगा सकता है!! मैं तुम्हारा पूरा साथ दूँगा। पहले साहब को आगे बढ़ने दो अभी तो उसने प्राइवेटली बातें की हैं।

समझाने की मुद्रा में मैंने जोशी से कहा कि उसने सारी बातें दीवाल के पीछे सुनी हैं। मिसेज सक्सेना टेंशन में थीं इसलिए सारी बातें स्पष्ट रूप में नहीं कह पायीं इसलिए अभी से इस बात को तूल देना ठीक नहीं है।

जोशी भयभीत था। मैं कह नहीं सकता कि अपराध में कहीं उस का हिस्सा था या नहीं। उसकी मुखाकृति की विकृति मुझे अच्छी नहीं लग रही थी। वह असमर्थ दीख रहा था। किसी अथाह सागर में वह ऊभचूभ कर रहा था। उबरने का कोई रास्ता नहीं सूझ रहा था। मेरी निगाह उसके चेहरे पर थी। उभरने वाले अक्षर मेरी पकड़ में आने से पहले ही विलीन हो जाते थे। अनेक प्रकार के भावों का एक समवेत रूप।

कमरा छोड़कर आने लगा तो जोशी ने स्पष्ट कहा कि इस मामले में उसे मेरी सहायता चाहिए। इतना डरने से आदमी ज़िन्दा कैसे रहेगा।

जोशी का डर सार्थक हो सकता है, मैं नहीं जानता। चिन्ता करने से काम बिगड़ता है पर कभी कभी बन भी जाता है। जोशी को मेरे झंझटों का पता नहीं है अन्यथा रो पड़ता। पर क्या करूँ, दम तोड़ने या आत्महत्या से तो काम बनेगा नहीं और संन्यास से भी कोई अन्तर नहीं आता। बात बनेगी संघर्ष करने से, अन्याय के विरुद्ध आवाज़ उठाने से। जो अन्यायी है उसे इस मानवी दुनिया में रहने का कोई हक नहीं है। पर दूसरों से, हम से, आपसे साठगाँठ करके अन्यायी अग्रणी बन जाता है। इस अनाचार को रोकने के लिए पता नहीं कितने सन्त, महात्मा, राजनीतिज्ञ, समाज सुधारक पैदा हो होकर प्रयत्न करते रहे हैं पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा।

रही साहब की बात। वह तो बीत चुका है। दस-पाँच दरबारी लाल इकठ्ठा करके मूर्खों के दिमाग़ से शासन करता है। उसे अपना ध्यान अधिक रहता है दूसरों का कम। दफ्तर की अव्यवस्था इसकी गवाह है। कर्मचारी हड़ताल की धमकी देते हैं। उसकी हिम्मत नहीं कि उन्हें समझौते के रास्ते पर ले आए। अपने असिस्टेंट के कन्धे पर बन्दूक रखकर चलाता है। इसके एक्सटेंशन की सीमा नहीं। आयु से रिटायर हो चुका है पर सोर्स और सिफारिश इसे रिटायर नहीं होने देते। चपरासी से लेकर मिनिस्टर तक इसका लिहाज करते हैं। उम्मीद थी कि इसके जाने के बाद बढ़िया प्रशासक आएगा पर कुछ भी नहीं कहा जा सकता। उससे बेहतर भी आ सकता है और घटिया भी। संविद सरकार की भांति जाते-जाते यह रुक जाता है। अच्छा, छोड़िए इस चक्कर को। न जाने क्या समझ कर इस दफ्तर में रिटायरिंग उम्र कम रखी गयी है पर उससे लाभ क्या? सिफारिशी गाड़ियाँ तो दौड़ती रहेंगी। दफ्तर की तरक्की...उसे कौन पूछता है। काम बिगड़ जाय तो कर्मचारियों ने बिगाड़ा, बन जाय तो साहब ने बनाया। उलटी गंगा बह रही है।

जोशी चुपचाप मुझे सुन रहा था।

मैं अपनी सीट पर चला आया था।

इस दफ्तर की एक विशेषता यह भी है कि आगे की घटना का अनुमान नही लगाया जा सकता। और यह तो कही भी नही हो सकता फिर यह भी तो नही हो सकता कि घटना पहले सूचना देकर घटती हो।

मिसेज सक्सेना का मेरा परिचय घनिष्ठता के स्तर का नही है। एकाध बार मेरे घर आयी थी। बहुत फार्मल बातें हुई थी। जोशी उन्हें अधिक जानता है। उनकी अन्तरंगता के बारे मे तो मैंने कभी नहीं सोचा। एकाध बार सध्या का नाम भी मेरे सुनने में आया था पर कोई ध्यान नही दिया। इस तरह मन लगाया भी नही जा सकता। उसके लिए कोई कारण होता है। अकारण काम निरर्थक हो सकता है।

उस दिन जोशी के वतलाने पर जाना कि घटनाओं का सिलसिला पुराना है। सध्या के जीवन का अन्त, जोशी का भय और मिसेज सक्सेना का क्रोध बार-बार याद आते थे।

मेज पर रखी हुई फाइले। पेण्डिग पड़ा हुआ काम। और भी तमाम बाते। वह दिन ही बेकार चला गया। अपने सम्बन्ध मे कोई नयी तो क्या पुरानी बात भी नही सोच पाया। सध्या और जोशी के सम्बन्ध पर जो शक किया जा रहा था वह मेरे अक्षाश से दूर था।

□ □

दिन ढलने के बाद दफ्तर का ढग बदल जाता है जैसे सभी खुली हुई पोथी को बंद करना चाहते हों। काम की तेजी तो लंच आवर के पहले होती है। उसके बाद तो सारे कर्मचारी अपने-अपने कमरे मे लगी घडी बार-बार देखते रहते है। बंद होने के घण्टा भर पहले ही कुर्सियाँ खाली होने लगती है। समय होते-होते सभी चले जाते है चन्द लोगो को छोड़कर। मैं भी चला जाता हूँ।

शाम को जोशी मेरे पास कुछ जल्दी आ गया। उसका मन नहीं लगा। अन्दर से उसे कोई कचोट रहा था पर करता क्या!! कोई रास्ता भी नही निकलता था जिससे उसके मन की शका दूर हो जाय। वह दिन भर बेगार टालता रहा। बिना निश्चिन्तता के कोई काम नही

होता। मन अपने आप वातावरण पाकर लगता है। वह लगाने से नहीं लगता।

दफ्तर से मैं जोशी के साथ लौटा।

'जौशी एक बात बतलाओ—सम्बंधों के प्रति इस परदे वाली दुनिया मे लोग ईमानदार क्यों नहीं होते' ?

वह अपने को कारों की अवाजों से बचाने लगा। सवाल मेरा सुना था अच्छी तरह। कहने लगा—

'मेरा अनुभव अभी बहुत पक्का नहीं है। अतीत के आसमान में सम्बंधों और स्मृतियों का गुब्बारा इतने ऊँचे उड़ जाता है कि न तो उसे उड़ानेवाला देख पाता है और न देखने वाला जान पाता है'।

मेरी प्रतिक्रिया थी कि अपनी प्यास बुझाने के लिए कहीं का भी पानी पिया जा सकता है। केवल इतना देखना पड़ता है कि पानी खारा तो नहीं है। बल्कि कभी-कभी तो ऐसे मौके भी आते हैं कि प्यास, मन मुर्झाने वाली प्यास पानी की गन्दगी भी नहीं देखती। पी लेने के बाद सारे नियम याद आते है। जानते हो प्यास को पानी न मिलने का परिणाम होता है अध्याय का अंत।

जोशी साथ तो चल रहा था पर डग भरने में उसे कुछ जल्दी थी। मेरी बात के सिलसिले में कहने लगा—

'भई कपूर असलियत ढँकने की कोशिश सभी करते है। कभी-कभी यह लुकाव-छिपाव आवश्यक होता है जीवन के लिए। दोष का पर्दाफाश करना सभी चाहते है पर अपने का नहीं। बहुतेरे सत्य ऐसे भी होते हैं जिनपर विश्वास ही नहीं होता। अगर मैं तुमसे कहूँ कि मेरी प्रेमिका ने मेरे साथ छल किया है। समय देकर भी वह सिनेमा देखने नहीं गयी। मैं बस स्टैण्ड पर प्रतीक्षा करता रहा। मुझे घर बुलाकर कहीं चली गयी थी। मैं उस कमरे की आदमकद शीशे की रूखी याद लेकर जेठ की दुपहरी में लौट आया था। यह वही कमरा था जहाँ उसने मुझे सब कुछ दिया था। कुछ क्षणों के लिए जानवर बन गयी थी। लीलना चाहती थी मुझे। लगा कि जैसे पागल हो गयी है। हिंसक आँखें बड़ी डरावनी

लग रही थीं। या फिर कहूँ कि मेरी प्रेमिका पत्रों में बातें बहुत बनाती है पर ऐन मौके पर मुकर जाती है। वायदों की आग में मुझे जलाती रहती है। यह भी तो कह सकता हूँ कि उसने सचमुच मुझे दिल से चाहा है पर उसे समाज ने जो कैद दी है उसे स्वीकार करके गृहस्थी के भार को वह ढो रही है, ढोती जाएगी। मुझे उससे कोई शिकायत नहीं हो सकती।

उसने खत में लिखा है कि मेरी चिट्ठी उसके पति के हाथ लग गयी है। मुझे ऐसा नहीं लिखना चाहिए था। सही बात तो यह है कि मैंने उसे फार्मल पत्र लिखा था। उसने उसे ग़लत समझा। किसी की समझ का मैं क्या करूँ। और असलियत यह है कि जाने कितनी बार एकान्त की छाती पर बैठकर मुझ से उसने मन चाहा पाया है। पत्र में उसने प्रेम का अर्थ सेक्स बतलाया है। बतलाया होगा अपनी बुद्धि के अनुसार वह कहती है कि औरतों के दिमाग़ का एक स्क्रू ढीला होता है। मैं नहीं जानता, होना होगा। अभी-अभी एक ताजा ख़त आया है कि हम लोग बदल गये है। मैं तो बदला नहीं हूँ, दूसरे की बात का क्या पता ? क्या तुम इन बातों पर विश्वास करोगे। मानलो ये बातें मैं गलत कह रहा हूँ तो... ।

मुझे ग़लत समझने की कोशिश मत करो जोशी। तुम अपनी जगह सही हो सकते हो और तुम्हें होना भी चाहिए, पर बिना पूरी जानकारी के कुछ भी नहीं कहा जा सकता।

जोशी एकदम रूँआसा हो गया। मैंने कोई ऐसी बात भी नहीं कही। कौन सही है और कौन गलत, इतनी जल्दी तो निर्णय नहीं किया जा सकता।

'ह्वाट डू यू मीन...' जोशी चिल्ला पड़ा।

मेरा मतलब कोई पेचीदा नहीं था। बहुत साफ बातें कही थीं। और दुनिया की परिभाषा यही तो है कि कहीं चोरी हो गयी, भूचाल आ गया, प्रेम हो गया, मिनिस्टर ने गबन कर लिया, उपद्रव हो गया, धर्म सम्मेलन हो रहा है, भ्रष्टाचार हो गया, निरोधक समिति बन गयी,

लड़की भाग गयी, अवैध बच्चा पैदा हो गया, बीमारी फैल गयी, अस्पताल बन गया, दफ्तर खुल गया, कोई सही हो गया कोई ग़लत। किसी ने ताक़त से कानून को मुट्ठी में बन्द कर लिया, किसी ने पैसे से न्याय खरीद लिया। आने के पहले सभी एक जैसे बाद में अलग-थलग। यही है तुम्हारी दुनिया जिस पर तुम शक करते हो और जो तुम पर शक करती है।

जोशी अपने में नहीं था। वह केवल नाम के लिए साथ चल रहा था। साहब और मिसेज़ सक्सेना के बीच जोशी का नाम आ जाना ही हलचल का कारण है। अशान्ति, हृदय की गहराई की अशान्ति। सांत्वना के स्वर में कहा था मैंने—'उतावलेपन से काम नहीं बनेगा। मामले को बासी होने दो। अगर तुम्हारा दोष नहीं है तो भय का कोई कारण नहीं दीखता।

'अच्छा फ़िर' कह कर जोशी बस पर बैठ गया था। बच गया था मैं और कनाट प्लेस की सर्प कुण्डली मार्का सड़कें। शोर वैसे ही था—जाना पहचाना। उसमें किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं था। प्रतीक्षा में अपना बहुत समय नष्ट किया है। अब घबड़ाता नहीं। वह भी अपने जीवन का एक अंग है। अपनी आज़ादी बनी रहनी चाहिए बस।

जोशी की समस्या से मैं तनिक भी विचलित नहीं हुआ। सच बतलाऊँ आप से, जितनी सहानुभूति होनी चाहिए थी उतनी नहीं हुई। बात बहुत छोटी है पर जोशी का सन्देह काफी बड़ा है। अभी तक जितना मैंने इस आदमी को जाना पहचाना है, एक साथ रहने के लिए, काम करने के लिए उतना पर्याप्त नहीं है।

उसका दिमाग तो छोटी-छोटी बातों का खजाना सँजोये रहता है। अवसर पाकर उस खजाने को इधर-उधर बाँटता है। कभी-कभी बातों को बढा-चढा कर सामने लाता है। हमेशा कहता रहता है कि सत्य की विजय होती है। होती होगी पर सारी दुनिया क्या करती है, सभी जानते हैं। जब कभी जोशी हलके मूड में होता है, दिल की निचली तह में छिपी हुई बात को सतह पर लाता हुआ कहता है —'अभी तक सत्य बोलने का लाभ मेरी समझ में नहीं आया। मेरी समझ में स्त्री, पुरुष, वकील, नेता, दुकानदार सभी असत्य बोलते हैं। यह तत्व जीवन का अभिन्न अंग है। मोटी-मोटी पोथियों में सिद्धान्त अनेक मिलते है पर उनका असली रूप कहाँ है !! धर्माधिकारी बन कर देखो, कष्टों का हिमालय मिलेगा।

अपनी ज़रूरत के लिए पैंतरा बदल लो, रास्ता आसानी से मिल जायेगा।'

यह पैंतरे बाजी कोई नयी बात तो नहीं है। समाज की नसों में उसका ज़हर व्याप्त है। व्यक्ति, परिवार, समाज सभी उसके शिकार हैं। ईमानदारी करके व्यर्थ हानि का लाभ कौन उठाये!! व्यक्ति तो हमेशा अपने को धोखा देता रहता है, अपना सब कुछ जानते हुए भी। सारी जानकारी रहते हुए भी वह अनजान बना रहता है। कितनी मज़ाक वाली बात है यह।

रिबका के सम्बंध में सोच रहा हूँ।

अगर जोशी की बात को सच मान लूँ तो हर व्यक्ति को सन्देह की दृष्टि से देखना पड़ेगा। पर दुनिया में रहने के लिए विश्वास का सहारा कहीं न कहीं लेना पड़ेगा। परस्पर विरोधी विचार-धाराओं के जन्म में भी व्यक्ति का ही हाथ है। वही विश्वास की भूमिका भी बनाता है। रिबका के जीवन का सत्य उनका अपना है उसे समाज का सत्य कैसे मान लिया जाय। सामाजिक सत्य को जानने के लिए भी व्यक्ति के पास न जाना पड़े, ऐसी बात नहीं है।

कास्मापालिटन में बैठ कर आज कुछ अकेलापन महसूस कर रहा हूँ। रिबका के आने की कोई संभावना नहीं है। पहले से प्रोग्राम तै नहीं था। इसीलिए खाली दिमाग़ इधर-उधर घूम रहा है। उनके साथ मेरा परिचय गाढ़ा हो गया है। काफी क़रीब हूँ मैं। सारी बातें आपसे इस विश्वास के साथ कही हैं कि उन्हें आप किसी से कहेंगे नहीं।

सिनेमा वाली बात से मैं जान गया था कि रिबका मेरे पास आ गयी हैं। यह इसलिए नहीं कि उन्हें मुझसे कुछ पाना है वरन् इसलिए कि शायद मैं भी एक आदमी हूँ। आम आदमियों की भांति एक कमजोर हारा थका आदमी। पर असली कारण का तो मुझे बिल्कुल पता नहीं है। वह जानती होंगी। मैं पूछ भी तो नहीं सकता। यह भी कोई सवाल हुआ। और इससे समाज का अहित भी नहीं हो रहा है।

पूँजी मेरे पास है नहीं। ऐश्वर्य की कहानियाँ सुनता रहा हूँ। संघर्ष से भरे इस जीवन में ऐश्वर्य भोगने की फुर्सत कहाँ है, पर सारी

दुनिया उसी ओर बढ़ी जा रही है।

आत्मचिन्तन की एकाग्रता कभी-कभी मुझे बड़ा कष्ट देती है। मैं स्वयं अपना ही ग्रास बन जाता हूँ। लगता है कि स्वयं अपने को समाप्त कर रहा हूँ, खा रहा हूँ। पर मैं ऐसा करना नहीं चाहता। यह आत्म-घात है। मेरी व्यक्तिगत ऊब का समाज के लिए क्या महत्व है!! क्या इस तरह के सवाल रिबका के मन मे भी उठते होंगे? मुझे लगा तो कभी नही। बहुत ऊँचे स्तर का आर्ट आम आदमी के लिए तो होता नही। उनकी परवाह ही कौन करता है। आर्टिस्ट भी अपना उल्लू सीधा करता है, बिल्कुल राजनेता के रास्ते पर चलता हुआ। अपनी महानता में वह किसी का नही होता। सुपर मानव बनने की खोज तो लगातार चलती ही रहती है।

रिबका को पता है कि उनकी कला पर रीझने वाले बहुत है। यह देखकर लगता है कि वह सब की है, उनकी कला आम आदमी के लिए है। अभी जल्दी क्या है, सब धीरे-धीरे पता चल जायेगा। काश! प्रकृति की असली कला को देखने-परखने का शौक प्रत्येक व्यक्ति को उत्पन्न हो जाता। फिर आदमी द्वारा तैयार अनुकृतियो का कोई मूल्य न होता। अनुकृतियाँ तो बस अनुकृतियाँ है।

□ □

समय दिन के कागज पर रात की स्याही से मुहर लगा कर पन्ना पलट देता है। रिबका के साथ जितना समय बीत जाता है उसका हिसाब-किताब मै नही करता अब। यह ज़रूर महसूस होता रहता है कि समय बीत रहा है। वह किसी की पकड में भी नही आता।

रिबका से मेरा परिचय देखकर अगर कोई यह कहे कि मैं उनके बारे मे सब कुछ जानता हूँ तो यह मेरे प्रति ज़्यादती होगी। व्यक्तिगत जीवन के रहस्यो का भेद पाना आसान नही है चाहे वह अपनी ही बात हो। ऐसा कुछ महसूस होता रहा है कि रिबका के हृदय में कही एक

कोई अग्निकण सुलग रहा है। अन्दर चिन्गारी है पर ऊपर दिखाई देता है धुआँ और काली-कलूटी राख जो अपने मौलिक रंग को त्याग चुकी है। जब कभी रिबका ने उस जलन को महसूस किया है, मैंने उसे जाना परखा है।

किसी यथार्थ को छिपाने का उनका प्रयास ही हँसी का कारण बन जाता है। अगर सन्दर्भ कुछ सीरियस हुआ तो एक बूढ़े का कार्टून बना दिया।

'मिस्टर कपूर, आपको यह चेहरा पसन्द है ?'

मुझे हँसी आ जाती।

रिबका की दृष्टि में 'यह दुनिया ही निराली है। ऐसी है यह कि मुर्दे को भगवान बनाएगी, जिन्दा को कोई लिफ्ट नहीं देगी। एक राम थे हमारे यहाँ। हम उन्हें अवतार मानते हैं। उनका नाम भी तो जाने के बाद ही हुआ। कवियों की बात नहीं करती।क एक्षण में साधारण आदमी को भगवान बनाने वाले और दूसरे ही क्षण इसका उलटा करने वाले। इनकी कविता बिल्कुल जादू लगती है। ऐसा जादू जो जनता के सिर चढ़ कर बोलता है। बिना औरत के उनकी रचना नहीं होती है। वे औरत के रजस्राव का कुल्ला करने के लिए तैयार हैं। वे चाहते हैं कि औरत के योनिमार्ग से अन्दर घुस कर छातियों के पहाड़ों को चरमरा दें। जरूरत पड़ने पर जाँघ की झाड़ियों में दुबक जायें और बाहर समाज में एक-एक रेशे पर काव्य-रचना करके नाम कमाएँ। कैसी-कैसी तो तमन्ना है।'

'मैं राम की बात कर रही थी। लंका से लौटने पर भी चैन नहीं थी। धोबी ने व्यंग्य किया। फिर क्या था, बिना औचित्य पर विचार किए सीता को त्याग दिया। और ऐसी ही अनेक बातें भगवान बनने के लिए काफी थीं। पूजा का आरम्भ हो गया।'

'आज नहीं तो कल बाबा गाँधी का भी यही होना है। अपना देश तो शुरू से ही भगवान बनाओ आन्दोलन चला रहा है। अन्दर ही अन्दर उनके सच्चे सपूत कहलाने वाले भली प्रकार उनका श्राद्ध कर

रहे हैं।

टापिक ऐसे ही बदलती हैं वह। आसानी से पता लग जाता है कि वह बात को कोई मोड़ देना चाहती है। मैंने उनके जितने अलबम जितनी बार देखे हैं उनमें हर बार कोई न कोई नया चित्र अवश्य मिला है। मैंने कभी अपनी जिज्ञासा का मुँह नहीं खोला।

जिस बूढ़े चेहरे के कार्टून की चर्चा मैंने आप से की थी उसकी बनावट पर रिबका का हाथ सेट है। विनोद के मूड में प्राय: वही चित्र बना देती है। कुछ देर तक उसे देखती रहेंगी। ऐसे समय पर कई तरह के भाव उनके चेहरे पर लिपट जाते हैं। सारे भावों को एक साथ पढ़ पाना आसान काम नहीं है। शायद वह मेरी मजबूरी को जानती हैं। उसी बीच प्रश्न का एक तीर छूटता है—'क्या बात है मिस्टर कपूर, आपको यह कार्टून अच्छा नहीं लगा क्या' ?

नहीं नहीं, ऐसी कोई बात नहीं। बात यह है कि इसी कार्टून को कई बार बनाते हुए मैंने आपको देखा है। यही सोचता हूँ कि आप ऐसा क्यों करती हैं!! यह दुहराना क्यों!! आप तो आर्टिस्ट हैं, दूसरा क्यों नहीं बना लेतीं ?

'आपको नये-नये चित्र दिखाती तो रहती हूँ। सारा कुछ एक ही दिन दिखा दूँ तो फिर आप मेरे पास क्यों आएँगे। मेरे अलबम में जो चित्र पुराना हो गया है वह भी आपके लिए नया है। वह कार्टून जिसे मैं बार-बार बनाती हूँ, एक बूढ़े का है। उठ गया इस दुनिया से। बेचारा था वह। उसकी याद आती रहती है।'

क्यों, आपका रिश्तेदार था क्या ?

'वाह, आप कैसी बातें करते हैं। क्या याद आने के लिए किसी का रिश्तेदार होना जरूरी है ?'

मैं सोचता हूँ कि बिना परिचय के कोई कैसे याद आएगा। वैसे तो दिन की छाती पर असंख्य लोग चलते रहते हैं, पर उनकी याद कहाँ आती है!! याद तो किसी एक की ही आती है...कोई एक ही याद आता है।

रिबका के चेहरे पर मुस्कराहट खिल गयी—

'यह फिलासफी बहुत पुरानी हो गयी। अब तो याद के बगीचे में कई लोग एक साथ बिना पूछे घुस आते है। याद के लिए एक की शर्त अस्वाभाविक है, अमानवीय है। क्या एक साथ फादर, मदर, सिस्टर सभी नहीं याद आते है ?

यह बूढ़ा किस श्रेणी में आता है ?

'इस कार्टून को अच्छी तरह देख लीजिए। कोई भाव बाकी न बचे। इतने पर भी यदि समझ में न आए तो बताऊँ सारी कहानी। आप स्वयं समझ लेंगे, मुझे बतलाने की आवश्यकता न पड़ेगी। अब पीछे नहीं, लौटना चाहती। आप सवाल पूछेंगे। बहुत पुरानी बातें टटोलनी पड़ेंगी।

□ □

मैंने कई बार घुमा-फिरा कर उस कार्टून को देखा। केवल रेखाओं से कहानी बाँधना मुझे नहीं आया। आँखें उसकी अनोखी थीं खुली-खुली सी। एक अतृप्ति थी उनमें। आभास मात्र जान पाया था। मेरा ध्यान कार्टून पर केन्द्रित देखकर रिबका अपना अलबम उलटने लगी थीं।

मैं कार्टून के बारे में कुछ कह नहीं पाया। कुछ समझा, कुछ नही समझा। मेरी असमर्थता को रिबका ने भाँप लिया। वह कार्टून की ओर उन्मुख हुई और कहने लगीं—

'यह बूढ़ा आदमी अपने झुर्रियों वाले चेहरे में अनेक कहानियाँ और घटनाएँ छिपाए है। जब जवान था, बैलों की जोड़ी चुरा-चुरा कर बेंचता था। कई बार इसके रुपये डाकुओं ने छीन लिए। इसे मारा भी। पर यह माना नहीं। अपने रास्ते पर चलता रहा। ठोकरें लगीं, इसने ध्यान नहीं दिया। मार्ग में धूप निकली, इसने चिन्ता नहीं की। पानी बरसने लगा, इसने अपनी रफ्तार बढ़ा दी।

जब चलते-चलते थक गया तो आगे की चिन्ता हुई और इस पर लोक सुधारने का ध्यान आया।

जेठ का महीना था, लू दौड़कर शरीर से लिपट जाती थी। सड़कों पर सन्नाटा बिखर गया था। छाया में गर्मी घुल गयी थी। जमीन आसमान दोनों जल रहें थे। एक क़सबे मे मेन रोड के किनारे दूर तक फैले हुए ऊसर मे तपती हुई भूमि पर यह लेट गया। दिन भर किसी का ध्यान उधर नही गया।

प्यास के रूखेपन ने शरीर पर काबू पा लिया। फेफड़े सूखने लगे। अचेत स्थिति मे यह अपने भविष्य की अंतिम घड़ी की प्रतीक्षा करने लगा। बिना खतरा मोल लिए लाभ नहीं मिलता है। शाम को किसी ने यह दृश्य देखा। एक-दो-तीन, फिर तो मजमा लग गया। लोग अटकलें लगाने लगे—'कोई बेचारा आफत का मारा है। पता नही कब से यहाँ पड़ा है, किसी का ध्यान नहीं गया। कौन है यह कोई पता नही। पानी लाया गया। इसके मुंह पर छींटे मारी गयी पर यह तो सफल नाटककार था। सारे प्रश्नों के उत्तर इसने मौन मे दिए।

काफी-कुछ पूछताछ के बाद जब इसका मुँह खुला तो लोग सकते मे आ गये —'मेरे देवता की आज्ञा है कि मै ऐसे ही रहूँ। बतलाओ तुम लोगो को क्या तकलीफ है? मेरी भूख-प्यास की चिन्ता मत करो पागलो। मैं साधारण आदमी नहीं हूँ। बोलो, तुम लोग अगर भूखे-प्यासे हो तो मैं सारा इन्तजाम करता हूँ।'

चारो ओर से नही-नही की आवाजें आने लगी। थाने के मुंशी ने दो कांसटेबल भेजकर पता लगाया कि हो क्या रहा है। खबर पाकर मन चाहा पाने के लिए थाने के मुशी और दारोगा भी उस भीड़ मे शामिल थे। फरमाइशे आने लगी। फिर यह किस्सा रोज का हो गया। वही कुटी बन गयी। डाक्टर की बाँझ बीवी के बच्चा हुआ, ब्लाक के बी-डी-ओ भ्रष्टाचार वाले केस से छुट्टी पा गये। भले घरों की औरतें आने लगी। यह 'बाबा' पुत्र बाँटने लगा। जिसने इसकी सेवा मे अपने को समर्मित किया उसे पुत्र लाभ हुआ। अजीब जादू था इसकी कला में।

कोई असलियत नहीं जान सका। न खाने की कमी थी, न पीने की। चारों ओर इसकी वाह-वाही होने लगी। दस-पाँच सेवक कुटी पर हमेशा बने रहते थे इस उम्मीद में कि नारायण का दर्शन पता नहीं किस वेश में हो जाय।

थोड़े दिन के बाद मैंने सुना कि शहर में आकर इसने स्कूल खोला। पुरानी कहानी से कोई परिचित नहीं था। और अगर परिचित भी होता तो कोई बात नहीं थी, क्योंकि समय की धारा में सब बह जाता है। प्रवाह में नया जल आ जाने पर हम उस जल की याद नहीं करते हैं जो बह जाता है।

बच्चों का वरदान देने वाले इस बाबा की अपनी बीबी से दस बच्चे थे। पूरा किस्सा मुझे नहीं मालूम। किसी एम०एल०ए० की सहायता से इसे हाई स्कूल का सर्टीफिकेट मिल गया। थोड़ी-बहुत अंग्रेजी आती थी। अधिक ज्ञान की आवश्यकता ही क्या थी। स्कूल का मैनेजर यह स्वयं बना। दौड़-धूप से मान्यता कुछ जल्दी मिल गयी। साधारण लेडी टीचर का कोई महत्व नहीं था इसके लिए। एक हेड मिस्ट्रेस एक वर्ष के लिए काफी होती थी। चुनाव स्वयं करता था। पढ़ाने लिखाने में टीचर चाहे कमजोर ही हो पर देखने मे आकर्षक होनी चाहिए, इससे स्कूल की शोभा बढ़ती है।

स्कूल चलाते हुए इसे कभी पैसे की कमी नहीं पड़ी। स्वयं कोई वेतन लेने की स्थिति नहीं थी पर बावन धंधे थे। सिलसिला चलता रहा। धीरे-धीरे इसकी हाँ से हाँ मिलाने वाले साथी दूर हटने लगे।

यामिनी इसके स्कूल में तीन महीने होम साइंस पढ़ा चुकी है। उसी के साथ एक बार मैं भी मिली थी इससे। अनेक लेडी टीचर्स के आँसुओं का यह कारण बना। कुछ के आँसू इसने पोछे भी। पैसा सारी इच्छाएँ पूरी कर देता था। मन की प्यास बुझाने के लिए भाँति भाँति के तरीके खोज निकाले थे।

इस 'बाबा' के जीवन का बड़ा दुखद अन्त हुआ। अनेक आहों का बण्डल समेट कर अपने बाजार से चला गया। और अन्तिम समय...।

आगे कहने से मैने रोक दिया। किसी व्यक्ति को समझने के लिए इतनी जानकारी काफी है।

आपने उसे कार्टून के माध्यम से क्यो याद किया ?'

रिबका जैसे उत्तर के लिए तैयार बैठी थी—

'कार्टून को देखिए। उसकी हर एक रेखा साफ है। सेक्सी होठो की बनावट उभरी हुई है। अब तो कहानी खत्म हो गयी हे। अगर अपने जीवन मे इसे पता लगता कि इसके फेस का कार्टून किसी लेडी आर्टिस्ट ने बनाया है तो यह मेरे पास जरूर आता। इसलिए नही कि मै एक आर्टिस्ट हूँ वरन् इसलिए कि मै एक औरत हूँ। और आता एक प्राब्लम की तरह।'

'क्या मतलब है आपका' ?

'यही कि 'बाबा' कन्ज्यूमर था। और कुछ भी नही करता था, केवल कन्ज्यूम करता था। किसी आह से उसका दिली रिश्ता नसी था। कोई खुशी भी उसके काम की नही होती थी। वह कन्ज्यूमर जो था।'

'कभी सोचा है आपने—प्रकृति को यह सब नापसन्द नही है। यदि नापसन्द होता तो ऐसी रचना ही क्यों करती ! ! कुछ कहने की गुजाइश नही है। केवल इतना कहा जा सकता है कि सब कुछ प्रकृति की देन है। यह भी जान लीजिए कि जो चलने मे एक लकीर खीच लेते है वे प्रकृति के विरोधी है। प्रकृति स्वच्छन्द है। प्राणियो को भी स्वच्छन्द रहना चाहिए। बंधन प्राकृतिक नही, मनुष्य के बनाए हुए है। 'बाबा' ने सारा काम स्वच्छन्द होकर किया। अपना अन्त भी वैसे ही इसे अपनाना पड़ा।'

'वह कैसे ?'

रिबका आवेश मे थी। ऐसा लगा कि 'बाबा' के लिए जो तेवर उनके पास है उसे मेरे चेहरे पर चिपकाना चाहती है। साफ जाहिर था कि उस पुरुष के प्रति रिबका के मन मे घृणा थी। ऐसी घृणा जो व्यक्तित्व को पी जाती है और जिसकी दुर्गन्ध से नाक फट जाती है।

एक ओर तो कहती है कि प्रकृति ही प्रधान है दूसरी ओर पुरुष के

प्रति मन में ज़हर भी सँजोए हैं। इसका पता सामान्य रूप से उनके साथ बातचीत में नहीं चल पाता। यदि किसी सन्दर्भ में पुरुष का अकारण आना होता है तभी प्रतिक्रिया का रूप निखरता है।

मेरा सवाल अभी अनुत्तरित था।

रिबका कहने लगीं—

'पता है आपको सवेरे पर्वत की ओट से सूरज निकलता है और दिन भर उजाला बाँट शाम को अन्धकार की ओट में छिप जाता है। कभी उसने साथ की इच्छा की क्या ? उसके काम में कोई कमी नहीं आयी।'

इस बात का उद्देश्य मेरी समझ में नहीं आया। उस समय पूछा भी नहीं मैंने।

□ □

जब से मैं रिबका से मिला हूँ, कई प्रकार के सवालों से घिरा रहता हूँ। उत्तर तो हर एक सवाल का दिया जा सकता है पर सही उत्तर के लिए प्रश्न का ठीक होना ज़रूरी है।

रिबका का दिमाग़ भी एक अलबम लगता है। उनकी स्मृति में चित्रों का एक सिलसिला चलता है जिन्हें समझना बिना किसी संकेत के बड़ा कठिन लगता है। पर इस कठिनाई के पीछे भागने का मन होता है। बातचीत में उस अलबम के चित्र फलकों का आभास मिलता है। मेरे लिए आभासजीवी होना बड़ा कठिन है। हो सकता है आपको मेरी बात अच्छी न लगे पर है यह मेरे मन की। रिबका का हाव-भाव, चेहरे की दौड़-धूप, आँखों की मुद्राएँ संकेतों की पिटारी हैं। बातचीत में यदि किसी बात का आघात असह्य हुआ तो उसकी प्रतिक्रिया में कोई नयी बात आ जाती है।

मुझे जानकारी चाहिए।

रिबका के जीवन की जानकारी का कोई एक रेशा जैसे हाथ लगता है तैसे दूसरा छूट जाता है। उनके कथन ही इस ढंग के होते हैं। यह

सब वह जानबूझ कर करती हैं। कोई उद्देश्य पूरा होता होगा। अपने आप सारे प्रसंग सम्भव होते चलते है। अपने पर विचार करता हूँ तो परेशान हो उठता हूँ। होंगी कलाकार रिबका, मेरी बला से।

इतना बडा देश है अपना ! कला के कितने सारे पुजारी होंगे !! कला की पूजा के लिए, यहाँ तक कि भगवान की आराधना के लिए पैसा चाहिए। बिना पैसे पूजा नहीं होती है। गरीब की सहायता कोई नही करता। अभी दफ्तर जाना बन्द कर दूँ तो सारी कला भूल जाय।

क्या सोचती होंगी रिबका !!

'कैसा विचित्र आदमी है ? क्यों आता है मेरे पास ? और भी आर्टिस्ट तो है दुनिया मे।

ऐसी बात नही है भाई ! मेरे प्रति उदासीनता उन्होने कभी नहीं दिखायी, अपने गौरवशाली व्यक्तित्व को मेरे साथ कभी नहीं तौला। जैसा मै सोचता रहता हूँ ऐसा वह नही सोचती होंगी। मेरा शंकालु स्वभाव अब क्या बदलेगा !! काफी दूर चला आया था। बचपन बहुत पीछे छूट गया है। अब बुलाने पर भी नही आएगा। उसे कोई रोक भी तो नहीं पाएगा।

इस प्रकार के संघर्ष मे सबसे भली लगती है आत्मीयता ! पर मिलती कहाँ है !! आत्मीयता का जादू बड़ा असर डालता है। मैं तो तरस जाता हूँ इसके लिए।
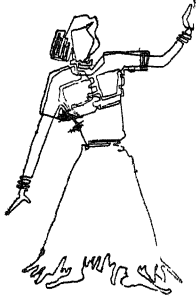
अपनी राह पर चलते हुए, अंधेर नगरी के आसमान की नीलिमा निहारते हुए तेली के बैल बने बटोहियो को देखा है मैंने। जैसे सिंह अपना एक रास्ता बना लेता है, उसी पर चलता रहता है, उसी प्रकार वे भी जाते हैं और लौट आते हैं। आप परेशान न हों, यही काम है उनका। करें क्या उनके सामने और कोई उपाय नहीं है। इसी क्रम को वे जीवन कहते हैं। मैं अपने कई साथियों को जानता हूँ जो दफ्तर में मेरे साथ काम करते हैं। ठीक बारह बजे दफ्तर पहुँचते हैं। अफसर ने कुछ कहा तो यूनियन में मामला पेश होता है। यूनियन उनकी ओर से पैरवी करती है। उनके ऊपर कोई आँच नहीं आने पाती। 'घूंस लेना पाप है' जैसे वाक्य उनकी ज़बान से फूल जैसे झड़ते रहते हैं पर मन तो सारी इन्द्रियों का राजा है और 'किंग कमिट्स नो रांग'। मन के कार्य अन्त:करण से प्रेरित होते है। अन्त:करण की प्रेरणा पर कौन उँगली उठा सकता है।

अपनी बात को सार्थक सिद्ध करने के लिए वे अनेक प्रकार के तर्क प्रस्तुत करते हैं। तार्किक होना अच्छी बात है पर ऐसा तर्क किस काम का जो व्यक्तित्व को खा जाय। यह कमेण्ट मेरा नहीं उन्हीं का है। मैं क्यों व्यर्थ अपने सिर बला मोल लेने लगता।

मेरे जीवन की पुस्तक बहुत छोटी है ।

पुस्तक न कहकर उसे डायरी कह लीजिए । कही कुछ लिखा दीखता है, कहीं केवल लकीरे हे, वह भी बिल्कुल हल्की स्याही की। इन लकीरों का सहारा लेकर कोई अक्षर कही तो नीचे की ओर लटक गया है और कोई पन्ने पर आया ही नही । उसे लाकर क्या करूँ !! और फिर जितना आनन्द दूसरे की बात कहने सुनने मे आता है उतना अपने जीवन के सूत्रों के गिनने मे नही ।

आपको याद होगा—रिबका ने कहा था उस कार्टून के सम्बन्ध मे कि 'अब तो कहानी समाप्त हो गयी' । यह वाक्य मुझे अभी तक याद है । यह ऐसा नही है कि जल्दी भूल जाय । यह जितना छोटा है उतना ही हमे सोचने के लिए मजबूर करता है । जब दुनिया के सारे लोग यह जानते है कि एक दिन सब की कहानी खत्म हो जाएगी तो इतनी दौड़-धूप क्यों की जाती है । इस प्रकार के प्रश्न मन मे लाना वेकार है । ऐसे प्रश्नों का कोई अन्त भी नही है । मै स्वय अन्त खोजना भी नही चाहता । कहानी चाहे जो हो पर बीच में रुकना ठीक नही होता । चलते-चलते पाव थक जायें तो सिर के बल चलना चाहिए, किसी ने बिल्कुल ठीक कहा है । यही सब बातें जानते हुए मैने ऐसा सवाल किसी से नही किया ।

रिबका के जीवन मे प्रश्न अनेक हो सकते है पर उनका चेहरा देखकर कुछ भी अनुमान नही लगता । जैसे उन्हे अपनी सारी समस्याओं के समाधान मिल गये हों ।

□ □

दफ्तर में ओवर टाइम चल रहा था । काम कोई नही करता था सभी दीवाल घड़ी पर अपनी आँखें केन्द्रित किए थे । जोशी आकर सामने की मेज़ पर बैठ गया । बिना किसी प्रसंग के कहने लगा—'यार साली अजीब है, न शादी करती है और न किसी को लिफ्ट देती है । तुम्हें पता है कपूर, रिबका की उम्र कितनी है ? जिन्दगी भर मिस ही बनी रहेगी

क्या ? यह आर्ट-वार्ट तो समय काटने का चक्कर है बस।'

प्रतिक्रिया से मेरा दिल जलने लगा ! कहता भी क्या !! ज़बान तो अपनी है, कोई कुछ भी कह सकता है। इतना ही नहीं, आगे और सुनना पड़ा—'सुनो भई, तुम तो एकाध बार मिल आए हो। कुछ मिला तुम्हें या केवल रूप का दर्शन ही हाथ लगा ? क्या है बेचारी के पास !! रूप का प्रसाद कब तक बाँटेगी ? अब तो धीरे-धीरे बिना बुलाए बुढ़ापा आ जाएगा। मैंने तो सुना है, पता नहीं सही है या ग़लत कि रिबका मर्दों से बहुत चिढ़ती हैं। उन्हें पता नहीं है कि यदि मर्द न होता तो उनका जन्म ही संभव नहीं था'।

धीमे से मैंने कहा—

'क्या बात है जोशी, आज बड़ी खूबसूरत बातें कर रहे हो ? दुनिया के बनने में मर्द और औरत में से किस का महत्व ज्यादा है यह इतनी जल्दी तो निश्चित नहीं किया जा सकता।'

जोशी कुछ नहीं बोला।

बोलता भी क्या !! तर्क से हमेशा पीछे भागता है। निंदा-रस कितना सुखदायी होता है। अक्सर इस रस से जोशी आनंदित होना चाहता है।

'जोशी, अगर तुम्हारे पास बात का उत्तर नहीं है तो बेसिर-पैर की बातें मत किया करो। रिबका मर्दों से चिढ़ती है तो इसमें तुम्हें परेशान होने की क्या बात है। तुम्हारी दिलचस्पी का विषय क्या है, मैं नहीं जान पाता हूँ। कला का मूल्य तुम्हारे लिए कुछ भी नहीं है। मैं तुमसे उम्मीद भी तो नहीं करता। इतनी लम्बी-चौड़ी दुनिया में तरह-तरह के लोग हैं, कहाँ तक लेखा-जोखा रखोगे। पहले अपने को देखो फिर दूसरों की डायरी भरो।'

'कपूर, मैं जो कुछ कह रहा हूँ, ठीक है। मिसेज़ सक्सेना ने मुझसे एक-एक बात बतलायी है। इस कला के पीछे कहीं वासना काम कर रही है। हम लोग दूर रहते हैं, इसलिए पता नहीं लग पाता। कहीं गहरे जाकर क्या-क्या मिलेगा, कुछ भी नहीं कहा जा सकता।'

जोशी ने अपनी बात बहुत ही सहज रूप में कही थी, पर मेरे लिए तो उसमे अनेक अर्थ छिपे थे। दिमाग़ मे विचारो की रीलें दौड़ने लगी। लगा कि जैसे नसें तनाव से फट जाएँगी। मैं दफ्तर में ही बैठा था।

मुझे एक तो मिसेज सक्सेना की बात पर संदेह हुआ दूसरे रिबका की कला से दृष्टि हटकर उनके व्यक्तित्व पर चली गयी। विचारों की भीड़ आती-जाती रही। पकड़ने की कोशिश मे वे छूटे जा रहे थे। यदि रिबका के हृदय में वासना का सागर लहरा रहा है या वह समाज की दृष्टि मे हीन है तो जोशी बेचारा क्यों परेशान है!! मैं कह नही सकता कि मिसेज सक्सेना के जीवन का इतिहास कैसा है? सध्या के सम्बन्ध में जो बातें सुनी है उन्हें याद कर दिल भर आता है। सारी दुनिया एक जंजाल लगती है। केवल शब्दों का जाल हम लोगों को बाँधे हुए है।

मकड़ी का जाल कितना मुलायम होता है!!

इसी में तो मकड़ी फँसती है, अपने बनाए हुए जाल में।

अभी स्त्री की स्वतन्त्र सत्ता स्वीकार करने मे इस कोढ़ी समाज को सदियाँ लगेंगी। जब तक लिजलिजी प्रवृति वालो का सत्यानाश नही हो जाता तब तक यह बात असंभव जान पड़ती है।

तरक्की की रोशनी को पाने के लिए एकजुट होने की प्रवृत्ति अच्छी है। अकेले चलने वाला सचमुच बड़े जीवट का व्यक्ति होता है। मिसेज सक्सेना को दफ्तर के साहब ने कहा था—'अगर तुम्हें तरक्की करनी है तो शोर करने से काम नही चलेगा'।

पता है आपको, जबान पर तैर कर बाहर आने वाला स्वर तो सभी सुनते है पर अन्दर के शोर को मन की गहराई वाले शोर को सुनना बहुत आसान नही होता।

अपने दफ्तर के किरानियों के चेहरों को पढकर अन्दर के शोर का पता लगाता हूँ तो कुछ भी हाथ नहीं लगता है। रिबका के साथ भी पहले यही हुआ है। उनकी जिन्दादिली ने मुझे प्रभावित किया है। उसके सामने कोई समस्या नही टिक पाती। रिबका की बातें कभी-कभी ऊपर से तैरती हुई जान पड़ती है। सभी तो ऐसा करते है।

जोशी की बातों से चकित नहीं होता मैं अब । वह कहता है, कि 'सँसार का अंधेरा पीना आसान नहीं है पर यह भी कोई बात हुई की अपना उजाला दूसरे को देकर अँधेरे में आफत मोल लूँ ।'

मिसेज़ सक्सेना का स्वभाव नार्मल है पर जब वह जान लेती हैं कि बात बहुत प्वाइंटेड है तो कावा काट कर बातों की पुरानी राह से आगे निकल जाती हैं या फिर मौन साध लेती हैं जैसे उन्हें 'स्पीट लिमिट एन्ड्स' का साइन बोर्ड मिल गया हो ।

मेरे दफ्तर के साहब के व्यक्तित्व में भी यह फिसलन दिखलायी पड़ती है । उठने में, बैठने में, बात करने में वह गंभीरता चिपकाए घूमता है । देखने में लगता है कि ऐसे तालाब में नहाकर आया है जिसमें आफिसरी का पानी भरा है ।

संध्या वाले मामले पर उसने आगे कोई बात नहीं की । जोशी के लिए वह घटना ऐसी थी कि जैसे आँखों के सामने तेज बल्ब जलाकर किसी ने अचानक बुझा दिया हो । वह शाम मुझे भूलती नहीं । दफ्तर से निकलते हुए जोशी की चाल से ऐसा जान पड़ता था कि जैसे किसी गर्म तवे पर पानी की एक असहाय बूँद इधर-उधर भाग रही हो । चारों ओर ताप और ताप । कहीं ठिकाना नहीं, शीतलता का कहीं नाम व निशान नहीं । अपनी सामान्य स्थिति में आदमी शीतलता चाहता भी नहीं । वह चाहता है तब, जब उसे गर्मी सताती है ।

दफ्तर में मिसेज़ सक्सेना के नाम से तमाम बातें उड़ायी जाती थीं । जोशी का नाम संध्या वाली घटना में पूरी तरह जुड़ गया था । कुछ लोग तो कल्पना का रंग चढ़ा कर नयी-नयी कहानी गढ लेते थे, कुछ के पास मोटी-मोटी बातें थीं केवल । सीमाहीन बातें ।

इन बातों से मेरा दम घुटने लगा था । निश्चय कर लिया कि दफ्तर छोड़ देना है । यहाँ साहब से लेकर चपरासी नक खोजबीन में लगे रहते हैं । बिल्कुल पर्सनल रिसर्च आफिस है यह । सभी अपनी-अपनी छोटी-बड़ी अक्ल की शार्टहैण्ड की बुक पर हवा में उड़ने वाले वाक्यों को दर्ज कर लेते हैं । अंत में एक दूसरे से मिलाते हैं । जो वाक्य मिलते-

जुलते है उन्हे रहने देते है, बाकी काट देते है। केवल काट ही नही देते वरन् भूल भी जाते है।

दफ्तर के ऐसे लोग जिनके बाल पक कर सन हो गये है, केवल साहब की ही नही, उनके नौकरों की, कुत्ते की और पाली हुई चिडियो की चापलूसी करते है। इस काम के लिए भी बडा धैर्य चाहिए। एक बार तो एक कर्मचारी अपने सेक्सन इंचार्ज के तीतर के लिए दीमक चुन कर ले गया। साहब ने उनकी बडी सराहना की। तीतर ने दीमक नही खाए। शायद साहब के पालतू जानवरो की आदत अभी नही बिगडी है। वे पालतू आदमियों को कोई लिफ्ट नही देते है। उनका भी अपना एक स्तर है।

अंग्रेज चले गये है पर उनके गुलाम अभी' पुरानी आदतो को ढो रहे है। यह असर पूरी भारतीय जाति पर है। सारी रेस बर्बाद हो गयी है। बहती गंगा मे कौन हाथ धोना नही चाहता। सैतालीस के बाद हिन्दुस्तान की आजादी ऊँची-ऊँची इमारतो पर जाकर टिक गयी है। नटखटपन और आजाद हो गया है। यह अहसास सभी को है कि उच्छृंखलता बढ गयी है पर उसे मिटाने के लिए कोई तैयार नही है। नारे लगाए जाते है, शोर होता है पर कोई सक्रिय होना नही चाहता। समाज सड गया है। बूढों ने दूसरों के कंधों पर रखकर बंदूके दागी है। उनका निशाना बेकार नही गया। लाभ ही लाभ है चारों तरफ।

मेरे दफ्तर के साहब का भी यही हाल है।

हाँ हुजूरी करने वाले तमाम है। अपनी बडाई सुनने मे जो मज़ा आता है वह दूसरों के कीर्तिगान मे नही आता।

□ □

शनिवार को दफ्तर से कुछ जल्दी लौटा था। धर्मराज उत्सुकता से प्रतीक्षा मे था। खिडकी से झाँकता रहता है। रोकने पर भी नहीं मानता। आदत ही बन गयी है उसकी।

मेरी प्रतीक्षा मे उसने गली से जाते हुए जाने कितने लोगों को

अपनी आँख का निशाना बनाया होगा। कोई उससे पूछे, कि 'बाहर क्या देख रहे हो ?' तो उत्तर में वह हक्का-बक्का हो जायेगा। या फिर बड़े भोलेपन के साथ कुछ भी कह देगा जो प्रश्न कर्त्ता की कल्पना के बाहर होगा।

जब धर्मराज गम्भीर मूड में होता है, कहता है तब—'शा'ब हमारा हनुमान चालीसा नहीं लाए ? चन्दिकन के मेले से जो हम लाए रहे वह फट गया। बहुत पुराना हो गया था। आखर उधिड़ गये थे शा'ब, पढ़ा नहीं जाता था। बात ई अहै कि जब तलक बढ़िया-बढ़िया लिखावट न होय, पढ़ै मा मन नाहीं लागत। अउर श'ाब—इतना कहते-कहते वह मेरे चेहरे का रुख़ पहचानने लगता है। कुछ बूझना चाहता है वह।

स्थिति कैसी भी हो, वह चुप्पी साध लेता है। मैं जब तब धर्मराज की बात को दिलचस्पी से सुनता हूँ। भावुकता की लीक पर चलता जाता है वह। अधिक पढ़ा लिखा है नहीं। हनुमान चालीसा पढ़ने के लिए हिन्दी सीखी थी। अंग्रेजी के दो अखबार एक साथ दे देता है, एक माँगने पर भी। कौन परेशानी में पड़े। मुझे उसकी असमर्थ चालाकी पर हँसी आती है।

धर्मराज कवि तो नहीं है पर बातें उसी अन्दाज में करता है। कभी-कभी उसकी ज़बान से कविता जैसी चीज़ निकलती है। कितना अबोध है उसका व्यक्तित्व।

रिबका को धर्मराज नहीं जानता। मैंने उसे कभी बतलाया भी नहीं। यह बात नहीं थी कि मैं बतलाना नहीं चाहता था। मौका ही नहीं मिला। और अगर बतलाता भी तो क्या ? उसे बतलाने में एक खतरा है। कहेगा—'शा'ब तौ फिर हमैं दिखाय देव।'

इस प्रकार का प्रस्ताव मेरे लिए असुविधाजनक होगा। पर मैं अपने जीवन में असुविधाएँ पालता हूँ। पहले क़समें खाता हूँ। फिर वही काम करता हूँ, बार-बार करता हूँ। करना पड़ता है। प्रवृत्ति से रोक नहीं पाता हूँ अपने मनुष्य को। समाज की इकाई मनुष्य के कल्याण के लिए

होती है । मुझे विश्वास नहीं हो पाता । कोई आधार भी नहीं मिलता विश्वास करने के लिए । यह कोई धर्मराज अकेले की बात नहीं है । वह तो अपना, अपने घर का साथी है । सभी के साथ ऐसी बात है । परिवार के दूसरे लोग इसी आदत से नाराज रहते हैं । क्या करूँ, कहाँ तक अपने को समझौतों के भँवर में डाले रहूँ !!

मेरे दफ्तर में काम करने वाले कर्मचारियों के अनेक वर्ग हैं । सभी से मेरा मिलना-जुलना है । सभी को प्रायः अपने से शिकायत है । समाज से शिकायत है, और तो और सरकार से भी शिकायत है ।

□ □

घाम कुछ पतला हो गया था ।

साँझ होने में अभी कुछ देर थी । चील और कौवे अपने पंखों का संतुलन साध कर आदमी की बनायी हुई सृष्टि पर मँडरा रहे थे मानो संहार की कल्पना में तल्लीन हो कर अपने राज्य का दिवा स्वप्न देख रहे हों । जितनी तेजी लोगों के घर लौटने में थी उससे कहीं ज्यादा घर से बाहर जाकर घूमने की ललक थी । यह दिल्ली है न !! यहाँ घर-बाहर एक जैसे हैं । घर की घुटन से ऊब कर मर्द, औरत सभी बाजारों में, सडकों पर, गलियों में घूमने निकल जाते है ।

धीरे-धीरे पश्चिम का रंग परिवर्तित हो रहा था । एक-एक क्षण अपना नया रूप ले रहा था । बीच आकाश की ओर देखा नहीं जाता था । अभी थोडी ही देर इस प्रकाश के गोले को अंधकार निगल जायेगा । एण्टेना पर बैठे हुए पक्षी स्थिर चित्त लग रहे थे । इस आपाधापी वाले महानगर में प्रकृति की ऐसी कायापलट का कोई महत्व नहीं है । संघर्ष के जगत में प्राकृतिक उत्फुल्लता का अर्थ ही दूसरा होता है । मैं सिद्धांत पढ़ कर आप से कुछ नहीं कहना चाहता । अमल मे मैं जो कुछ भी देख रहा हूँ वह मुझे अपनी ओर आकर्षित करने के लिए कम नहीं है ।

धर्मराज के हनुमान चालीसा वाले बलशाली हनुमान ने सूर्य को एक बार निगल लिया था। उस दिन की कल्पना करता हूँ। दिन क्यों रात कहिए, क्योंकि सूर्य तो था ही नहीं। ब्रह्मा की इस बेचारी सृष्टि पर कृपा करके हनुमान ने सूर्य को छोड़ दिया था। यह बात बतलाते हुए धर्मराज के चेहरे पर नयी चमक आ जाती है। प्रसन्नता की नदी में वह नहाने लगता है। यह वही हनुमान है जिनके बल पर राम ने लंका जीती थी और जिनके सहारे धर्मराज की मनोकामनाएँ पूरी होती है। उसके लिए सूर्य का छोड़ा जाना नहीं, बल्कि निगला जाना कठिन है।

शनिवार की संध्या की बात कर रहा था।

वातावरण में उदासी तो थी नहीं पर बहुत चहल पहल भी नहीं थी। मैं कुर्सी पर बैठा 'अवधूत' मासिक के पन्ने पलट रहा था। सम्पादक ने तमाम उद्धरण दे रखे थे। शिक्षा और नीति के इण्ट्रो से शायद ही कोई पन्ना बचा था। उपदेश की प्रणाली में बहुत कुछ कहा गया था। पत्र पत्रिका, देवालय, शिक्षालय सभी जगह उपदेशों की भरमार है। सुनते-पढते ऊब सी होने लगती है। हिन्दुस्तान के सम्पादक अपने मालिकों के तलुवे चाटते है और चाटते रहते हैं। उनको जीवन-जगत से कोई सरोकार नहीं। इसीलिए देश की पत्रकारिता भ्रष्ट है।

'अवधूत' में एक लेख था 'अनेक गतिरोधों वाला समाज,। राइटर थीं मीरा खन्ना। लेख की भाषा में वजन था। शैली साफ-सुथरी लग रही थी। प्रस्तुतीकरण में रूढियों पर चोट की गयी थी। विचार एकांगी नहीं थे। जहाँ पुरुष कमजोर था वहाँ उसकी कमजोरी को उभारा गया था। स्त्रियों की ओर से कोई अहेतुक वकालत नहीं की गयी थी। समाज का सही चित्रण करते हुए लेखिका ने लिखा था—'अपने समाज में सब जगह गतिरोध है। यह गतिरोध केवल धर्म के नाम पर नहीं है। चाहे जितने गिरजे बनवाइए, चाहे जितने शंकर पूजिए कोई नहीं रोकेगा। असमर्थ को सहारा दे दीजिए, किसी जाति विशेष के अवगुणों की ओर अंगुली उठा दीजिए, किसी विधवा को विवाह की सलाह दे दीजिए, किसी लड़की

को अपने पैरों पर खड़ा होना सिखा दीजिए बस समाज के ठेकेदार आपके पीछे पड़ जाएँगे। आपसे जाने कितनी तो जिरह की जाएगी। पैर पकड़ कर नीचे की ओर घसीटा जाएगा। आपके जीवन का दस्तावेज देखा जाएगा। हो सका तो दस-पाँच व्यक्तियों के सामने आपको जलील किया जाएगा। यही है अपना समाज।'

ये विचार स्पष्ट है, भली प्रकार सोचे गये हैं। स्थिति को बहुत पास से देखा गया है। पूरा लेख नहीं पढ़ पाया यह सोचकर कि ऐसे लेख से क्या होगा!! क्या सोसायटी पर कोई प्रभाव पड़ेगा?'

जाने कब से साहित्य रचा जा रहा है, कानून बनाये जा रहे हैं, पाबन्दियाँ लगायी जाती है पर संघर्ष और अत्याचार कम हुए हैं क्या? लाख समाज की भदेस का चित्रण कर लीजिए पिछड़ेपन की कथा कह लीजिए समाज अपने रास्ते चलेगा। साफ कपड़े पहन लेने से परिवर्तन नही हो जाता। परिवर्तन के लिए जरूरी है इण्टरनल चेन्ज। जब तक ऐसा नही होगा, ये लेख, पेण्टिंग्स और दूसरी कला कृतियाँ बेकार है।

कला मनुष्य के खाली मस्तिष्क का पागलपन है। अभी तक उसकी जितनी अभिव्यक्ति हुई है उससे समाज को क्या मिला है। यही न कि कला कृतियों की प्रदर्शिनी लगा दी गयी। क्रय-विक्रय हो गया। कला बिक गयी, कला खरीद ली गयी। इस प्रक्रिया का परिणाम क्या निकला? क्या आँधी का चित्र बना देने से किसी समस्या का निदान मिला। यदि नहीं तो कला का निष्कर्ष क्या रहा? केवल इतना कि कला के साधनों ने मनुष्य के रहने की जगह घेर ली और कला सम्बंधी विचारों ने दिमाग में अड्डा जमा लिया।

यह परिणाम चाहने वाली दुनिया काम पर उतना ध्यान नहीं देती। मेरे सोचने विचारने में कोई क्रम नहीं था। कोई विचार आता था और तुरन्त ग़ायब हो जाता था। जिसे हठात् पकड़ने की कोशिश करता था वह तो ज़रूर हाथ से छूट जाता था।

धर्मराज बिना कुछ कहे सामने स्टूल पर चाय रख गया। मेरा ध्यान कहीं दूसरी ओर था। चाय आने पर मैंने कुछ कहा नही। उसने सुनने

की प्रतीक्षा भी नहीं की । मैं कप उठा कर चुस्की लेने लगा ।

□ □

गली से किसी की कार का हार्न बजा । मैं बाहर झाँक कर देखने लगा । नीचे सड़क पर एक टैक्सी खड़ी थी । रिबका मेरे मकान का पता पूछ रही थीं । टैक्सी की रफ़्तार तेज हुई । दूसरी ओर से घूम कर टैक्सी मेरे दरवाज़े के सामने आ गयी । रिबका प्रसन्न दीख रही थीं । जब तक मैं बाहर निकल कर आऊँ आऊँ, टैक्सी जा चुकी थी । उसकी भागती हुई आवाज़ मुझे सुनायी पड़ी । मन में उठने वाले सपाट विचारों में एक बात खटकने वाली आगयी थी । एक मन तो रिबका के आने पर पुलकित हो रहा था पर दूसरा अपने अन्दर शंका की बिजली का एक टुकड़ा दबाए था ।

उतने कम समय में मन ही मन में मैं गुन रहा था—

यह बात आवश्यक नहीं है कि आकाश यदि धरती पर झुका हो तो धरती भी आकाश की ओर झुक जाय । लोग कहते हैं कि झुकाव दुहरा होता है । होता होगा । मुझे इन बातों में नहीं उलझना है । ऐसे छुटकारा मिलना बड़ा कठिन है । मैं कोई इस शर्त पर रिबका की कला के प्रति आकर्षित नहीं था कि बदले में वह भी मुझे चाहें । मैंने कहा न कि मेरे पास ऐसी कोई वस्तु है भी नहीं । रिबका का सद्व्यवहार भी कुछ सोचने के लिए बाध्य करता है ।

विचारों की लहरें उठ-उठ कर टूट जाती थीं । कारण था अचानक रिबका का आना । यह एकदम अप्रत्याशित था । कोई बात होगी । इतनी परेशानी की क्या बात है । जो होगा देखा जाएगा ।

रिबका साड़ी में आयीं थीं । कन्धे पर वह बैग नहीं था जो कास्मा-पालिटन में रहा करता था । बैग था जरूर पर बहुत ही सोबर कलर का ।

उनके चेहरे पर वही जिज्ञासा का पुराना भाव । सब कुछ जान

लेने के लिए उत्सुक ग्रॉखे । वह काफी एक्टिव लग रही थी । 'हलो' के साथ कोई वाक्य नही ग्राया । ग्रपनी सफाई देते हुए उन्हो ने कहा—

'भई मिस्टर क्पूर, ग्राज कुछ डल फील कर रही थी । कास्मा-पालिटन जाने का इरादा था पर नही जा सकी । पता नही वहॉ ग्राप मिलते या नही । बस इधर ही चली ग्रायी । ग्रापको देख कर लग रहा है कि मैने ठीक ही किया । रेजिडेस पाने मे थोडी सी दिक्कत जरूर हुई पर मिल गया इसलिए उसकी भी कोई बात नही ग्रौर फिर चाही हुई चीज के लिए ग्रपना कुछ खोना भी तो पडता है ।

बातो का सिलसिला चल रहा था। रिबका मेरे साथ कमरे की ग्रोर बढ रही थी । उनकी लापरवाही देख कर मै सतर्क हो गया था ।

ग्रन्दर बैठते ही धर्मराज दो गिलास पानी दे गया । बडा चतुर है यह । यदि ग्रपनी चतुराई का ज्यादा प्रयोग करता है तो वह काम उसकी मूर्खता का ग्रच्छा नमूना होता है । क्सिी भूल पर जब उसे कुछ कहता हूँ तो का करी शा'ब, हाँ शा'ब हम तो बेकूप ग्रही' जैसे जुमलो से वह ग्रपनी रक्षा करता है । वह भी प्रयोगवादी है । सब तरह के प्रयोग करता है । उसके खतरनाक प्रयोगो की ग्रॉच क्भी-कभी मुझ तक भी ग्रा जाती है । मेरी इन बातो पर ग्राप विशेष ध्यान न दे धर्म-राज एक विश्वसनीय नौकर है ।

गिलास उठाकर रिबका पानी पीने लगी।

मेरी ग्रॉखे एक साथ उन्हे देखती रह गयी । पानी की शीतलता उनके रूखे ग्रोठो को तृप्ति देती हुई गले के बीच उतर गयी । लगा कि वह देर से प्यासी थी । दूसरे गिलास के लिए पूछने पर बतलाया कि दूसरा नही चाहिए । पानी बहुत ठडा है । जी हल्का हो गया, काफी देर स प्यास लगी थी । रास्ते मे पिया नही, ग्राप के यहॉ तो ग्रा ही रही थी ।

रिबका के व्यवहार मे एक नयी बात दिखायी पड रही थी । वह

पहले से अधिक फ़ैक लग रही थीं। उस समय उड़ती निगाह से सब कुछ देख नहीं रही थीं। यह पहला अवसर था कि वह मेरे यहाँ आयी थीं अचानक। पहले से कोई सूचना तो हमें थी नहीं। बिना बतलाए उनका आना मेरे लिए आश्चर्यजनक था। एक प्रश्नावली मेरे दिमाग़ में आयी थी। कोई बात होगी। पर वह तो कह रही हैं, कि 'यों ही चली आयी।'

संभव है कोई सलाह करने आयी हों। यह भी हो सकता है कि मेरे लिए कोई संदेश लायी हों। पर ऐसा नहीं हो सकता। आत्मीयता का रेशमी जाल कलाकार के लिए क्या है!! कभी मुट्ठी भर चना कभी वह भी मना। देखने में आता है कि स्नेह दान का नाटक करने वाला बड़ा कंजूस होता है। यही तो उसके जीवन की धरोहर है। इसी की बदौलत वह जीवित रहता है। यह वृत्ति इतनी प्राणदायिनी है कि कुछ कहते नहीं बनता।

□ □

अनुमान की सचाई जितना सुख देती है उसकी असत्यता उतनी ही प्राणलेवा होती है। रिबका के सम्बंध में कई अनुमान ग़लत निकले हैं इसलिए अब लगाने की हिम्मत नहीं पड़ती। केवल जिज्ञासा ही हाथ लगती है। अबोधता की जिस भाव-भूमि पर जिज्ञासा का बिरवा उगता है उसकी नाप-जोख करना कठिन है।

रिबका मेरे पास बैठी थीं। मैं विचारों के जंगल में भटक रहा था। यह भी तो एक सहारा ही है।

पानी पीकर रिबका कुछ देर तक शान्त रहीं। ऐसा लगा कि जैसे थकान की चोट को भूल रही हों। मैं जब विचारों के जंगल से घूम कर लौटा तो देखा कि उनका ध्यान मेरे चेहरे पर है। उधर देखते ही उन्होंने अपनी नजरें घुमा लीं। कुछ क्षण और बीत चले।

'आज तो इधर आते वक्त ऐसी प्यास लगी कि जैसे प्राण ही निकल

जाएँगे।'

'हां, कभी-कभी ऐसा हो जाता है। पर हम हैं कि सब कुछ सह लेते है और सहना पड़ता है। करें भी तो क्या करें!!'

समझाने की मुद्रा में रिबका ने कहा—

'सारा दोष प्रकृति का ही नहीं है। इंसान भी दोषी हो सकता है। अपने काम के लिए इधर-उधर मारा-मारा फिरता है।'

मैंने उनकी बात का विरोध नहीं किया। कुछ क्षण चुप रहा। उन्होंने समझा होगा कि जैसे मैंने उनकी बात मान ली है।

अब उन्होंने अपने बैग से अंग्रेजी की एक पत्रिका निकाली और कवर पर बने चित्र को देखने लगीं। कुछ क्षणों बाद कवर पर से उनका ध्यान हटा तो एक सन्दर्भ हीन बात छेड़ दी उन्होंने।

'सचमुच बात ऐसी है कि माडर्न आर्ट ने हमें और चाहे कुछ न दिया हो पर सोचने की नयी जमीन तो अवश्य दी है। इस वैचारिक युग में बुद्धि को इससे अच्छा खाद्य और क्या मिल सकता है। जिस दिन इस बेचारी दुनिया का अंत होगा, और जरूर होगा उस दिन बड़ा मज़ा आएगा। पता नहीं हम लोग वह दिन देखने के लिए कहाँ रहेंगे। मानव जब अपने नये रूप में जन्मेगा और अकेला इस बची हुई दुनिया के करिश्में देखेगा तो उसे हँसी आएगी। सोचेगा वह कि अपनी तृष्णा की तृप्ति के लिए उसने क्या-क्या स्वांग रचा था।'

'मैं जिस कलाकार की बात कर रही हूँ उसे हिन्दुस्तान बहुत प्यारा लगता है। रहता रूस में है वह। जीवन में ऐसा बहुत कम होता है पर प्रेम के लिए दूरी की अड़चन व्यर्थ होती है। फ्रेडरिक पिन्काट तो इंग्लैण्ड में रहकर हिन्दी में कविता करते थे। यह प्रेम क्या कम महत्व-पूर्ण है!! जिस कलाकार का यह जिक्र है वह माडर्न आर्ट के विरोध में बातें करता है। अभी-अभी हिन्दुस्तान की यात्रा पर आया था। उसका कहना है कि माडर्न आर्ट की उलझी-सुलझी रेखाओं में दर्शकों की आँखें बहक जाती हैं, कोई निश्चित आधार नहीं मिल पाता। सब से कठिनाई अर्थ निकालने की है। हिन्दुस्तान के क्रिटिक अपना पुअर शो देते है।'

'यह तो ठीक है पर आगे की बात न सोचने देने का मतलब तो यह हुआ कि हम जहाँ हैं वहीं बने रहें ।'

'ऐसी बात नहीं है । उस आर्टिस्ट ने एक हिन्दुस्तानी औरत का चित्र बनाया है । सिर पर घड़ा है । एक हाथ से वह घड़ा थामे है, दूसरे से अपना वस्त्र सम्हाले है । आँधी और तूफान से उसकी आकृति तिरछी हो गयी है । रुकावट के बावजूद वह आगे बढ़ रही है । अंधड़ और बवण्डर को सहती हुई अपने कदम पीछे नहीं लौटाती । चेहरे पर परेशानी अंकित की गयी है परन्तु पाँवों में आगे बढ़ने की ललक है ।'

'हिन्दुस्तान के कुछ अखबारों ने इस चित्र को छापा था । कुछ बुद्धिवादियों में इसकी चर्चा भी हुई थी । यौनवादी साहित्यकारों और कलाकारों ने इसकी ओर ध्यान ही नहीं दिया ।'

अखबार और हिन्दुस्तानी अखबार वास्तव में जनता के दुश्मन हैं । दो-एक की बात जाने दीजिए । अखबार, उसके सम्पादक और मालिक जनता का हित क्यों सोचेंगे । काग़ज का कोटा सरकार देती है, विज्ञापन का लाभ भी उसी से मिलता है । फिर वे जनता के हितों की बात क्यों करने लगे । वह तो व्यापार है, जो लाभ की भूमिका उन्हें देगा, उसी के विचार छपेंगे, फोटो प्रकाशित होगी । किसी मंत्री की छींक को, किसी रईस के पॉकेट डॉग को, किसी अधिकारी के विशेष पोज को छाप-छूप कर ये पूंजीवाद की ज़मीन पर खड़े सम्पादक और उसके गुर्गे अपने कर्त्तव्य का अंत समझ लेते हैं । आर्ट के नाम पर अपने देश के पत्र और पत्रिकाओं में जो कुछ छपता है, उसका आधार कला के प्रति कोई प्रेम नहीं है ।

पूंजीवादी व्यवस्था का एक मात्र उद्देश्य है 'पैसा' । पत्रकारिता का मुख्य उद्देश्य पैसे से आगे नहीं जाता । कला कृतियाँ इसलिए नहीं छापी जातीं कि जनता उन्हें चाहती है वरन् इसलिए कि जनता के स्वाद से पैसा कमाया जा सकता है ।

छापा होगा पत्रों ने उस रूसी कलाकार का चित्र । उस अंक की प्रति रूसी अधिकारियों के पास भी भेजी गयी होगी । रूस और भारत

की मित्रता की नींव मजबूत बनी होगी। यह कहा गया होगा कि भारत की जनता रूस के कलाकार का सम्मान करती है। सम्मान जनता ने व्यक्त किया है या किसी फर्म ने।

उस समय ज्यादा कुछ सोचने का अवकाश नही था। एक आगन्तुक सामने था। उसने एक समस्या उठायी थी। उस पर मैंने पूरी तरह ध्यान दिया था। उस चित्र को मैंने भी देखा था। उस समय अच्छा लगा था। मैं रिबका को ही सुनना चाहता था। उनके व्यक्तित्व को पूरी तरह जानना-पहचानना चाहता था। अभी तो कुछ भी नही जान पाया। कितना असमर्थ पा रहा हूँ अपने को।

पहले रिबका की कला का रूप मेरे सामने था अब उनका व्यक्तित्व मेरे बहुत पास आ गया है। वह अनबूझी पहेली है मेरे लिए। जितना आगे बढ़ता हूँ उतना ही नया महसूस करता हूँ। कास्मापालिटन में बैठे हुए एक बार उन्होने कहा था—'समर्पण में मादकता का आनंद मिलता है।' पर कुछ लोग ऐसे होते है जो अपना सब कुछ समर्पित कर देने के बाद भी बचाए रखते है। कैसे-कैसे तो लोग होते है!!

उस रूसी आर्टिस्ट के सम्बन्ध में मैंने रिबका से कहा था—

'दृष्टिकोण की भिन्नता को हमें ध्यान रखना चाहिए।'

'वह तो ठीक है पर समझ की सामूहिकता का भी तो अपना अलग एक महत्व होता है। हम सब को उसे स्वीकार करना चाहिए।'

'आप ठीक कहती हैं पर इस समय गम्भीर बातों में मन नहीं लग रहा है। कोई और बात कीजिए।'

रिबका मुस्कराई थीं। उस समय उनके मुस्कराने में सहज लज्जा उभर आयी थी। खुलकर हँसी नही थीं, पर मुस्कराने में भी ऐसा लगा था कि जैसे प्रसन्नता की सफेदी में किसी ने दर्द का हल्का नील घोल दिया हो।

□ □

कल की बातचीत में मिसेज यामिनी की चर्चा का प्रसंग जाने कैसे आ गया। एक बार रिबका ने कहा था, कि 'कभी यदि अवसर मिला तो मिसेज यामिनी की आप बीती बतलाऊँगी। यद्यपि मेरा और मिसेज यामिनी का परिचय बिल्कुल नहीं था पर रिबका उनकी बातें मुझे क्यों बतलाना चाहती हैं? इस दिलचस्पी से मुझे परेशानी नहीं हुई पर आश्चर्य जरूर हुआ। अपनी व्यथा की कहानी आत्मीयों से बतलाकर सुख मिलता है। प्रत्येक व्यक्ति इस सुख से वंचित नहीं होना चाहता। मैं स्वयं इस दुनिया से बाहर नहीं हूँ। यामिनी के जीवन की बातें रिबका के जीवन की नहीं है। वह रिबका की आत्मीय होंगी। अगर यामिनी को इस बात का पता लग जाय कि रिबका दूसरों से उनकी व्यक्तिगत बातें कह रहीं हैं तो वह क्या सोचेंगी!!

प्राय: होता तो यह है कि लोग अपनी कहानी भूलने का नाटक करते हैं और दूसरों की बातों को इधर-उधर कहते फिरते हैं।

मिसेज यामिनी इलाहाबाद से आयी हैं। कई बच्चों की माँ हैं। बच्चे उनके साथ नहीं हैं। दिल्ली में वह अकेली रहती हैं। ढलती हुई अवस्था है। रिबका का कहना है कि यामिनी उनके साथ थोड़े दिन तक

रही है। बाद में उन्होंने अपने रहने का प्रबंध अलग कर लिया था।

रानी झाँसी रोड से मिलती हुई जो सड़क पहाड़गंज की ओर जाती है उसके उद्गम स्थान के ठीक पीछे नाज सिनेमाघर है। इसे देखकर ऐसा लगता है कि जैसे जमीन खोदकर बनाया गया हो। सड़क के स्तर से काफी नीचे, एक दम गहराई में। नाज से आगे चल कर ओरिजनल रोड की ओर बढ़िए। दाहिने बाएँ सड़कें घूमी है। उन पर जाने की आवश्यकता नही है। सीधे ढलान की ओर चलकर बायी ओर बस स्टैण्ड के पास मिसेज यामिनी रहती है।

उस मकान मे नीचे एक दूकान है। कबाड़ी तो नही कहा जा सकता उसे पर वहाँ लाल किला, ताजमहल, जामा मस्जिद, राष्ट्रपति भवन, इण्डिया गेट, गाँधी, नेहरू सभी बिकते है। कुछ चीजें मिट्टी की कुछ लकडी, और कुछ पत्थर की। नयी पुरानी सभी तरह की होती है। उस दूकान पर एक लडकी बैठती है। वह दूकान उसी की है। उस लड़की के पिता चप्पलों का एक कारखाना चलाते थे। माँ छुटपन मे ही चल बसी थी। सौतेली माँ और उस लड़की की आयु में बहुत कम अन्तर था। फादर की फिजूल खर्ची ने उसके परिवार को बर्बाद कर दिया। कुछ दिनो तक कर्ज से काम चलाया गया, कार बेंच कर दीवाली मना ली और नौबत आयी की दूसरों के ऊपर झूठे मुकदमे दायर करके रुपये ऐंठे जाँय। जायदाद गिरवी हो गयी। उस लड़की के पिता ने अंतिम सांस लेकर झंझटों से मुक्ति पा ली। सौतेली माँ एक वर्ष की लड़की और पाँच वर्ष के लड़के को लेकर अपने नैहर नासिक चली गयी। यह लड़की अपने दो छोटे भाइयों को लेकर चाचा के साथ रहने लगी थी।

पिता के रहते-रहते उसने यू. पी. बोर्ड से इण्टर पास कर लिया था। एक दिन उसकी चचेरी बहन ने व्यग मे कुछ कह दिया। बस अगले दिन भाइयों के साथ अलग रहने लगी। कुछ दिन तक वह एक छोटे से स्कूल में पढाती रही। एक छोटे भाई को स्कूल मे दाखिल करवा दिया। उससे बड़ा किसी फर्म में नौकरी करने लगा। किसी प्रकार जीवन

की गाड़ी चलने लगी।

स्कूल की नौकरी परवशता होती है। व्यक्तित्व की दुर्दशा तब होती है जब किसी स्कूल का मैनेजर पानवाला और हींग वाला अपढ़ होता है। ऐसी जगहों पर मनमानी होती है। मनमानी वेतन दिया जाता है, मनमानी काम लिया जाता है। लड़कियों के स्कूलों की दशा तो सब से ज्यादा खराब है। वातावरण बहुत गन्दा हो गया है। समाज के लोग इसी में फँसे हुए हैं। वे निकल तो सकते है पर निकलना नहीं चाहते।

उस लड़की ने स्कूल की सर्विस छोड़ दी।

यद्यपि स्कूल की गवर्निंग कमेटी के मेम्बरों की सहायता उसे प्राप्त थी। उसे बस स्कूल से घृणा ही हो गयी। अपनी एक सहेली की सलाह पर उसने यह दूकान खोल ली। उसी के पीछे वह रहती भी है।

उस लड़की का आना-जाना यामिनी के यहाँ है। यामिनी उसे चाहती है। उसकी मर्दानगी की तारीफ़ करती है।

रिबका की बातों में मेरा मन रमा था। हालत मेरी ऐसी थी कि जैसे कोई अपने बहुत घनिष्ठ व्यक्ति की गिरफ्तारी की अचानक खबर से हक्का-बक्का हो गया हो।

यामिनी और रिबका का परिचय कास्मापालिटन में हुआ था। धीरे-धीरे दोनों एक दूसरे के पास आने लगीं। रिबका तो नित नयी-नयी बातों की खोज में रहती हैं। उन्हें तस्वीर उतारने की लालसा घेरे रहती है। संभव है इस रहस्य का पता यामिनी को न हो! पर यामिनी इतना जानती है कि रिबका चित्रकार हैं। इतना ही नहीं उनकी चित्रावली की शोहरत भी है। यामिनी की कहानी बतलाने में रिबका की रुचि की ओर मेरा विशेष ध्यान था। पहले पहल जब मेरी भेंट रिबका से हुई थी उस समय उनकी बात करने की अदा कुछ और ही थी। पुरानी बात है। सब कुछ बदला-बदला है। अब तो परिचय के कारण घनिष्ठता बढ़ी है। इस घनिष्ठता के जन्म की कहानी कहने का समय बीत गया है। बहुत सी बातें कहने की नहीं होतीं। यह भी कुछ

वैसे ही है। कोई रहस्य की बात नहीं है, इसलिए किसी को भी परेशान होने की बात नहीं है। वैसे घनिष्ठता और विश्वास में पारस्परिकता बहुत होती है।

मुझे यामिनी के मकान का पता नहीं था। मैं यह भी नहीं जानता था कि उसके मकान के नीचे कोई लड़की अपने दो भाइयों के साथ रहती है। यह भी रिबका का एक चित्र है। कम से कम मैं तो यही समझता हूँ।

उनकी सलाह पर मेरी नौकरी छोड़ने की बात पक्की हो गयी है। इसके बाद तो संघर्षों का एक सिलसिला चलेगा, लगातार! जीवन-निर्वाह की समस्या पर विचार करते-करते आदमी की पीढ़ियाँ चली गयीं, जाने कितनी।

रिबका ने अपने साथ आने की भी बात कही है। उनके साथ काम करने पर मानव-प्रवृत्तियों को, उनकी विभिन्नता को पास से देखने का अवसर मिलेगा। मैं तो ऐसा कुछ समझता हूँ कि कला से आदमी श्रेष्ठ होता है। आदमी कला को जन्म देता है इसलिए भी उसका मूल्य अधिक है। कला का जन्मदाता होना महत्वपूर्ण हैं। क्या आदमी अपने इस महत्व को समझता है। केवल यही नहीं, कला को एक हथियार के रूप में भी काम में लाया जाता है। रोमन कैथोलिक और प्रोटेस्टैण्ट कलाकारों की कृतियाँ याद की जा सकती हैं। कहा जाता है कला का कोई वर्ग नहीं होता, जाति नहीं होती। कला तो केवल कला होती है।

मुझमें कभी-कभी अकस्मात् एक निकम्मापन क्यों उभरता है! दिमागी तौर पर मैं क्यों भागता रहता हूँ! क्या इसका भी कोई अंत है! संभव है हो कुछ, मुझे पता नहीं। अघोरी का जीवन बिताना समाज में कैसे संभव है, पर मैंने वह भी किया है। मन को बहलाने के लिए पटरी से उतर कर भी चला हूँ पर क्या मन बहला। कला मेरे अन्तर को कब तक शान्त करती रहेगी! रिबका!! होगी पहेली किसी के लिए पर मेरे लिए वह सुगम है। इसे भी एक उपलब्धि ही कहूँगा। कभी-कभी चीज़ हाथ में आते-आते छूट जाती है। कहाँ तक नाम

गिनाऊँ सब ऐसे ही होता है।

एक ऐसा अलबम है रिबका के पास जिसमें कई बच्चों के चेहरे लगे है। मैंने अपने डिस्कशन में जब कभी बच्चे का जिक्र किया है तो वह उदासी के अँधेरे में डूब गयी हैं। कुहासे ने सारे वातावरण को कैद कर लिया है। क्या आप विश्वास करेंगे रिबका ने भ्रूण भी रचा है। कई रेखाचित्रों को मुझे समझाया है। गर्भिणी का बेडौल शरीर भी चित्रित किया है। नारी के विद्रूपों को चित्रित करने का अर्थ क्या है!! वह अपनी जबानी कोई बात जल्दी नहीं बतलातीं। जब किसी चित्र को कभी ध्यान से देखती हैं तो उनके मुख-मण्डल की भंगिमा बदलती रहती है। यह बदलाव बड़े काम का है। इसमें बड़ी बातें हैं। आधुनिक कलात्मकता की दिशा में इन चित्रों में कोई ऐसी चीज नहीं जो अस्पष्ट हो सब कुछ तो साफ है।

अगर कभी ऐसा कोई बिन्दु आता है जिसे समझने में कोई दिक्कत हो तो वह आसानी से डिस्कस किया जा सकता है। रिबका इस प्रकार की बातचीत में मन लगाती हैं। पहिले मैं झिझकता था पर अब सम्पर्क की प्रगाढ़ता के कारण ऐसी कोई बात महसूस नहीं करता। साफ-साफ पूछ लेता हूँ, कह देता हूँ। अपने रेखाचित्रों की व्याख्या करते-करते रिबका छोटे दर्जे के अध्यापक का रोल अदा करने लगती हैं। 'आपकी क्या राय है' जैसे वाक्यों के आने पर मैं भी अपनी अहमियत को महसूस करता हूँ। विरोध की मुद्रा बनाने में अब सम्हलना नहीं पड़ता। स्वाभाविक रूप से सब हो जाता है। यह स्वाभाविकता बहुत टिकाऊ नहीं होती।

रिबका किसी पुरुष के रेखाचित्र पर डिस्कशन कम करती हैं या फिर नहीं ही करती।

एक बार मैं धर्मराज की ईमानदारी की तारीफ़ कर रहा था। कई बातें बतलायीं। कुछ देर तक तो वह चुपचाप सुनती रहीं। मैं जान रहा था कि वह कोई बात कहना चाहती हैं। कहने लगीं—'यह ठीक है कि धर्मराज तुम्हारा नौकर है, फेथफुल है, आनेस्ट है पर इतना जान लीजिए कि ईमानदारी पुरुष के लिए केवल खोल के समान है। जब चाहा पहन

लिया अन्यथा उतार फेका। आज ईमानदारी के तराजू पर इसे तौला जा रहा है। तौल मे यह बीस उतर रहा है। यह जरूरी नही कि यही स्थिति हमेशा बनी रहे। ऐसा भी हो सकता है कि धर्मराज की सारी इच्छाएँ जब न पूरी होती हो तो उन्हे पूरा करने के लिए छिपाकर कोई न करने लायक काम करता हो।'

यदि कोई कहता है कि किसी स्त्री अथवा पुरुष की सारी आवश्यकताओ की पूर्ति कर सकता है तो जान लीजिए कि वह अपने को ज्यादा समझ रहा है। नेचर ने जहाँ एक ओर अनेक इच्छाएँ बनायी है, उन्हे पूरा करने के लिए उतने ही अनगिनत साधन भी जुटाए है। यह बात एकदम पर्सनल है कि अपनी जरूरतो के अनुसार व्यक्ति साधन जुटा लेता है। यहाँ नैतिकता का कोई स्थान नही है। धर्म की दाल यहाँ नही गलती। समाज के 'चरित्र' का गट्ठर ढोने वालो को साधनो की इस पर्सनल खोज का पता नही लग पाता।

मन की गहराई की थाह लेना आसान नही होता। कहते है कि स्त्री के मन की गहराई और ज्यादा होती है पर मेरी समझ मे जरूरत के आधार पर इसके रूप बदलते रहते है। अन्दर की बातो का पता लगाना एक दूसरे के लिए कितना दुष्कर कार्य है। इस वक्त रिबका की कला से ज्यादा उनका रूप याद आ रहा है। क्या किसी ने इन्हे प्यार न किया होगा। और क्या वह स्वयं किसी की ओर आकृष्ट न हुई होंगी। मेच्योर्ड है, रूप सम्पन्न है, यौवन है, कला है फिर अभाव किस बात का। चलने की मुद्रा की ओर आगन्तुकों बरवश खिच जाता है। यौवन की सुरक्षा की तत्परता भी कितनी मनमोहक होती है।

रिबका पुरुषों के नाम से चिढती है।

चिढ़ती होगी। अगर सचमुच ऐसा होता तो मुझसे नौकरी छोडने की बात क्यो करती। बैठकर खाने की ताकत मुझमे नही है। बाप-दादे अपार वैभव छोड गये होते तो यह भी सभव था। रोटी मेरी रोज की समस्या है। रिबका के पास वैभव है इसीलिए कला भी उन्हे फबती है। जिस दिन खप्पर लेकर चिथड़े लपेटे हुए भीख माँगने लगेगी, लोग मुँह

बिचकाएँगे । अनेक प्रकार की फब्तियाँ कसेंगे । दौलत की धुरी कितनी मजबूत और कारगर होती है चाहे वह एक व्यक्ति की हो, या राष्ट्र की ।

मेरे पास अकूत पैसा होता तो मैं भी मनमानी करता । ब्लैक लेबल स्कॉच की लालिमा की तरलता में मन को नचाता । बड़े-बड़े सरकारी और गैर सरकारी होटलों को अपना घर बनाता । नोटों की गड्डियों पर निमंत्रण भेजता भारत माता की होनहार लड़कियों को । उनकी रक्ताभ मुरादों पर दूधिया लकीरों की अल्पना बनाकर दूर हट जाता । तृप्ति ही तृप्ति होती चारों ओर ! अच्छा है यह सब कुछ नही है । मैं यह भार न ढो पाता । न तो मैं नेता हूँ और न सम्पादक ! यह सब करने झेलने के लिए गजभर की छाती चाहिए । मेरी आँखों के सामने जो कुछ होता है उसे भूल नही पाता हूँ ।

कही दूर जाने की आवश्यकता नही है । पार्लमेण्ट मे जैसे पार्टियों के एम० पी० होते है वैसे ही पूंजीपतियों के भी होते हैं, पार्टी के अन्दर और बाहर दोनों ओर उनका पलड़ा भारी ही भारी है । नगरों में मेयर के चुनाव में कारपोरेटर के प्राप्य का रेट बहुत बढ़ा-चढ़ा होता है ।

और नौकरी छोड़ने में मुझे जल्दी नही करनी चाहिए ।

इस प्रजातंत्र का नतीजा पता नहीं कब तक सामने आये । जब तक सम्पत्ति और ब्लैक मनी के सदुपयोग का कोई ठोस कार्यक्रम सामने नहीं दिखायी पड़ता, कुछ भी निश्चय कर पाना कठिन है । पहले जिन्दगी है या उद्देश्य । आदर्शो का झमेला पाल कर जाल मे फंसना मुझे नहीं आता, मैं चाहता भी नहीं । यदि उद्देश्य को पहला स्थान दूँ तो क्या रोज़मर्रा की चीजों के लिए क्यू बनाना, सबेरे दफ्तर जाना, शाम को वापस आना, इधर-उधर मारे-मारे फिरना, सोना और सबेरे फिर उसी पुरानी लकीर पर चलना, हो गया काम । यह तो वह उद्देश्य है जो सामने है । आजकल ज़िन्दगी भी इन्हीं कामों में सिमटी है ।

कनाट प्लेस का गोल चक्कर ।

मेरे पड़ोस का सरदार एक क़िस्सा बतला रहा था ।

'कपूर साहब, कल रात को बस कुछ न पुच्छो जी' ।

'क्या हुआ भई' ?

'अरे कुछ न पुच्छो जी । ऐसी गल हुई कि पकड़ा जाता तो बड़ी हवेली की मुफ्त की सैर और जुर्माना की रकम अलग से' ।

'बात तो कहो इतनी भूमिका की क्या ज़रूरत है' ?

'नहीं, नहीं हजूर ऐसी क्या गल है ! वह जो कनाट प्लेस वाला ओडियन है न, नहीं-नहीं माफ फरमाओ कपूर साहब । मुहँ से गल्त निकल जाता है । ओडियन नहीं रीगल । वही सिनेमाघर बड़ा वाला । खादी-भवन के कोने पर मै खड़ा था । एक काला आदमी केवेण्टर की गाड़ी लेकर साफ्टी बेंच रहा था । इक-दो बन्दे बेकार खड़े थे' ।

'तुम अपनी टैक्सी स्टैण्ड पर छोड़ कर वहाँ क्या करने गये' ?

'कपूर साहब, आपको पता नहीं । कबी-कबी स्टैण्ड पर मक्खी मारना पड़ता है । टैक्सी वाले साले कितने बढ़ गये । ये बी देश के लीडर हो गये । वह जगा तो साहब कमाल की है । देशी-परदेशी सब तरह का माल आता है । जैसा चाहो वैसा पसन्द करो और देखो, देखते रह जाओ । हमारे लिए तो काम पहले और सब कुछ बाद में' ।
सरदार की बातों को मैंने अनमने ढंग से सुना ।

वह चाहता था कि पूरा किस्सा विस्तार से सुनाए । मेरा तो जी ऊब गया है । मन नहीं लगता ऐसी बातों में ।

सरदार नहीं मानता —

'हाँ तो साहब जब मैं साफ्टी खा रहा था लोग इधर-उधर चलते-फिरते नज़र आ रहे थे । इतने में रिवोली की ओर से एक भीड़ आती दिखायी दी । मैंने समझा सिनेमा छूटा होगा । मेरे को क्या करना, कोने में चुपचाप खड़ा हो गया जी । आइसक्रीम वाला भीड़ से घिर गया । मेरी निगाह अपनी गड्डी की ओर गयी । एक सूटेड बूटेड साहब खड़े थे । मैंने भीड़ की प्रवा नहीं की । गड्डी के पास चला गया' ।

'वे साहब बोले— 'गड्डी खाली है' ?

'हूंजी' ।

'पच्चीस रूपये मिलेंगे' ।

'किस बात के' ?

'देखो तुम्हें कनाट प्लेस के बाहरी राउण्ड में चक्कर लगाना होगा । ज्यादा नहीं पाँच-छः चक्कर नार्मल स्पीड से लगेंगे । तुम्हारे हाथ में स्टिग्ररिंग रहेगी और आगे का गोल रास्ता । गड्डी में पीछे हम कुछ प्राइवेट काम करेंगे' ।

यह बतलाते हुए सरदार के चेहरे में तनाव आ गया था । बड़ी दिलचस्प बातें करता है यह, बिल्कुल जादू से भरी । पहले तो मेरा मूड कुछ भी सुनने को नहीं था पर अब वैसी बात नहीं थी । छोटे बच्चों की स्टाइल में सोच रहा था कि इसके बाद क्या हुआ ?

सरदार ने मुझे ज्यादा फुर्सत ही नही दी कि और कुछ सोचता ।

वह आगे कहता गया—

'मैंने सोचा जी, सौदा अच्छा है । कहीं आना नहीं, जाना नहीं । बैठे ठाले काम से जाए । साहब कहता है पच्चीस रुपये की बख्शीश, मीटर का चार्ज अलग । उन्हें टैक्सी में बिठाया और मीटर डाउन कर दिया' ।

'पहले नयी दिल्ली रेलवे स्टेशन चलो' ।

'थोड़ी ही दूर, मैं चला गया । कनाट प्लेस के पास ही तो है, मुझे क्या फर्क पड़ता । स्टेशन के सामने गड्डी खड़ी कर दी' ।

'बाबू जी अन्दर गये । लौटे तो उनके साथ एक तोंद वाले सेठ जी भी थे । मैं तो सकते में आ गया । उनके साथ एक विलायती माल था । वह फँसी हुई चिड़िया लाला जी से चिपकी हुई चल रही थी । बड़ी खुश थी जी । चहक रही थी ऐसे कि जैसे चमन की सैर को जा रही हो' ।

वह सरदार बड़ी हल्की बातें करता है । सीरीयस होना तो यह जैसे जानता ही नहीं टैक्सी ड्राइविंग में उसकी ज़रूरत ही क्या है । गंभीर से गंभीर बात को ऐसे कहेगा कि बिना हँसी आए न रहेगी । इतना बड़ा शहर है दिल्ली । तमाम तरह की तस्वीरें घूमती रहती हैं । वह चिड़िया

सेठ की लडकी भी तो हो सकती है। पर वे टैक्सी वाले उड़ती चिड़िया पहचानते है। सरदार ने मुझे कुछ भी सोचने का मौका ही नहीं दिया—

'हाँ साहब, मैंने टैक्सी लाकर कनाट प्लेस के गोल चक्कर मे डाल दी सेठ जी के साथ वह माल पीच्छे बैठा। साथ वाले साहब सामने मेरी बायी ओर बैठा। इक चक्कर लगाया, दो लगाया, तिन लगाया, । स्पीड कोई खास नहीं थीं'।

'जब गड्डी फायर ब्रिगेड के पास पहुँची तो आगे की भीड़ के कारण रफ्तार कुछ धीमी होगयी। गड्डी रुकी। मेरे पास वाले साहब पीछे चले गये। मै चलने लगा। बायी तरफ आ गया वह तोंदियल सेठ। पीछे देखने का मन था पर वैसा नही कर सका। सामने लगे शीशे में अभी बहुत कुछ देखा था जो बचा होगा अब देख लूँगा। यही सोचकर आगे की ओर चलता गया।

'शीअ...अ की आवाज आयी। उसी चिडिया की आवाज थी। स्टेशन पर उसका चहकना याद आ गया। एक झटके से मेरी निगाह पीछे गयी। दो मे से कोई बैठा नजर नही आया। तुरंत स्टिअरिंग पर निगाह चली गयी जैसे कोई करेंट छू गया हो। सेठ जी की आँखे मेरी ओर घूरने लगी थी। कहा उन्होंने कुछ नही। इसका असर भी मेरे ऊपर कुछ नही पड़ा। चिड़िया गुस्से मे अँग्रेजी बोल रही थी। जवाब मे कोई कुछ नही कह रहा था। कहता भी क्या ? जब मनमानी ही करनी है तो कौन किसी की सुनेगा। मुझे तो पैसे से काम था पर मै डर रहा था'।

पीछे वाली सीट पर कड़ी-कड़ी बाते होने लगी। लड़की ने अपने को सम्हाला और मेरी ओर मुखातिब हो कर चिल्लाने लगी स्टॉप, स्टॉप, स्टॉप। मैने प्लाजा के पास टैक्सी साइड मे लगा दी। लडकी बाहर आ गयी। गुस्से से कॉप रही थी। शायद उसे फीस एक की ही मिली थी और दो की फीस एक साथ लेना भी नही चाहती थी। ये लोग एक की फीस से दो का काम निकालना चाह रहे थे। लड़की प्लाजा के सामने की

भीड़ में खो गयी । वे दोनों टैक्सी में बैठे रहे । मुझसे कहा, कि 'स्टेशन चलो' ।

और रास्ते में बेझिझक बातें होती रहीं । दोनो को जैसे किसी ने जूते लगाए हों ।

सेठ जी ने गुस्सा जाहिर किया—

'साली बहुत वदमाश है' .

'परदेशी छोकरी है, हिन्दुस्तानियों की आदत से वाकिफ नहीं है' ।

सेठ को अपने एजेण्ट की यह बात अच्छी नहीं लगी । उसने बहुत सम्हाल कर कहा—

'तो क्या तुम समझते उसके लिए तुम पहले हिन्दुस्तानी हो । जाने कितनी बार पाला पड़ा होगा । छिनाल हैं, सब जानती हैं । इन्हें केवल रुपया ही नहीं चाहिए, ताक़त भी चाहिए । गुस्सा तो सब बनावटी है'

एजेण्ट बनावटी हँसी को रोक न सका—

'मजा तो आ ही गया' ।

'पान के पत्ते में पाँच सौ समा भी गये' ।

टैक्सी रुकी । मेरे हाथ में एजेण्ट सौ रूपये का नोट थमाते हुए गर्वीली अवाज में कहने लगा— 'ठीक है न' ?

'हाँ हजूर ठीक ही है'— कह कर मैं चलता बना । कमाई तो अच्छी हो गयी पर घटना नहीं भूलती है । पैसे की माया है और क्या ।

मैंने सरदार से कहा कि वह ठीक कहता है । यह कोई नई बात नहीं है । पैसा सारा काम बना देता है । ग़लत-सही सब कीजिए, कोई पूछने वाला नहीं है । अपराध की सब से बड़ी बचत पैसा है ।

इन घटनाओं को सुनकर मैं क्या करूँ । आदिम प्रवृत्ति को रोकने की शक्ति मुझ में नहीं है । समाज का जंजाल रचकर कुछ गिने-चुने लोगों ने नियमों का टाइम टेबल बना डाला और अपने को अलग कर लिया । कानून के कर्त्ता-धर्त्ता लोग ज्यादातर नियमों के प्रतिकूल जाते हैं । सरदार को मैंने वहीं छोड़ दिया । और कोई विकल्प भी नहीं था । अच्छी बातों से भी बोर होता है आदमी । और यह तो जनतंत्र है । यदि

पचास अंधे किसी गलत बात को सही मानते है तो एक आँख वाले अकेले व्यक्ति की सही बात ग़लत साबित हो जाएगी। अपनी बात सभी छिपाते हैं। दूसरों की बातों को बाँटते घूमते हैं। यह भी जीने की एक कला है।

आज दफ्तर जल्दी बन्द हो गया पर मेरे साहब ने कुछ लोगों को रोक लिया था। मैं भी उन्हीं में एक था। सबेरे जब काम पर गया था, मन भरा-भरा सा था। दिमाग़ में कोई खास बात नहीं थी सिवाय इसके कि दफ्तर जा कर काम करना है और करते जाना है। उस चौकीदार की तस्वीर नहीं भूल रही थी जो दरवाजे पर अटेंशन की दशा में खड़ा रहता है। आप कहेंगे तस्वीर क्यों, वह तो साक्षात आदमी है। मुझे लगता है कि वह मात्र एक तस्वीर है, जो शून्य पर चिपका दी गई है।

थोड़े समय के लिए यदि उसे साहब बना दिया जाय तो कैसा रहे। यह भी कोई सोचना हुआ। यही उल्टी-सीधी बातें आ रही थी दिमाग़ में।

घंटी बजी—क्रि क्रि...क्रि क्रि...।

मैं साहब के पास पहुँचा तो उनका एक वाक्य मेरे कानों के पर्दों पर चिपक रहा था। बस चिपक ही रहा था—

'कपूर, आज काम खत्म नही होगा। कल पूरा कर लेंगे। एक रात में क्या हुआ जाता है।'

'सर, कल तो सण्डे है'

साहब की बत्तीसी नहीं निकली। अपनी ग़लती पर कोई प्रतिक्रिया नही ज़ाहिर की। उनके चेहरे पर एक फीकापन था।

मैं दफ्तर से बाहर आ गया। वही पुरानी मनहूस बनने की बीमारी। अपने काम के प्रति एक विरक्ति सी जगी थी। वह हमेशा जगी रहती थी। कनाट प्लेस की ऊँची बिल्डिगों और भाग-दौड़ में व्यस्त सड़कों का साथ पाकर मैं दफ्फर भूल गया। याद ही नहीं रहा कि फिर इसी दफ्तर में जाना होगा।

कास्मापालिटन सामने दीख पड़ा। ज्यादा भीड़ भाड़ नहीं थी पर धीरे-धीरे हाल भर रहा था। मुझे रिबका की याद आ गई।

अभी सूरज नहीं डूबा था।

किरणें निस्तेज हो गयी थीं। आसमान से काले परदे के गिरने में थोड़ी देर थी। आसपास के दफ्तर छूटे थे। सिनेमा के वेटिंग हाल में टंगी तस्वीर देखने वाले उत्साही दर्शकों का ताँता लग गया था। किसी प्रगतिशील पुराने लेखक की सेक्सी कहानी पर फिल्म बनी थी। सजी-बजी लड़कियों, युवतियों और टाई-सूट वाले बाबुओं का जमघट सामने से गुजरने लगा था। सिनेमा हाल में बुजुर्गों के पहुँचने का समय भी हो ही रहा था। उनको बहुत कुछ झेलना पड़ता है—कोई चीं करता है, कोई गुब्बारा मांगता है, किसी की लेलगाड़ी घर में ही रह जाती है, कोई अपना हवाई जहाज ममी के सोने के कमरे में भूल

आता है ।

अभी रिबका के आने का समय नहीं हुआ था ।

मन हुआ कि उनके घर चलूँ । पर अगर न मिली तो क्या होगा । बैरंग लौट आऊँगा । कोई बात नहीं, अकेले रेस्त्रां में बोर कौन हो !

कनाट प्लेस से सीधे रिबका के यहाँ गया । गेट के अन्दर जाते ही आँखों के किनारों पर लॉन की हरियाली तैर गयी ।

सेन्टर टेबल के चारों ओर कुर्सियाँ पड़ी थीं । एक पर रिबका बैठी थीं बाकी खाली थीं । उनके हाथ में रेशम की एक डोर थी जिसमें लोहे की एक चेन बाँधी थी । चेन की लम्बाई कुत्ते के गले के पास तक जाकर खत्म हो गयी थी ।

एक ओर बिल्ली लेटी थी जैसे काफी थकान के बाद घास के मुलायम गद्दे पर आराम कर रही है । खरगोश का जोड़ा पिंजड़े के अन्दर काफी दूरी पर था । रिबका के हाथ में रस्सी थी पर उसे पकड़ने में लापरवाह कोशिश थी । सोचने की मुद्रा बनी थी । चप्पलें अलग-थलग पड़ी थीं । रिबका स्कर्ट पहने थीं ।

मैं बिना किसी आहट के थोड़ा और पास चला गया ।

रिबका ने अपना दाहिना पैर बाएं पर रखा था । दबाव के कारण जाँघ की गोलाई चिपटी हो गयी थी । स्कर्ट की ढीली लहरें जांघों को घेरे थीं । सिर के बाल सीधे लटक कर कुछ तिरछे हो रहे थे । गले में एक रेशमी मफ्लर था जिसका एक हिस्सा पीछे की ओर चला गया था । झालर की सफेद डोरियां हिलने-डुलने से लहर जाती थीं । मफ्लर का दूसरा हिस्सा एक मोटा प्रश्नवाचक चिह्न बनकर सामने की ओर झूल रहा था । भरे-भरे उरोजों की ऊंचाई के कारण ऐसा होना स्वाभाविक था । मेरे लिए यह सीन बड़ा सुहावना और मादक था ।

चलने की कुछ आहट हुई ।

रिबका ने मेरी ओर देखा । पैर दोनों अनजाने ही समान्तर हो गए । रस्सी हाथ में पकड़े रहीं । मैं बिल्कुल पास पहुँच गया ।

'हलो, हलो, लवली मिस्टर कपूर, आप आज खूब आए बिकाज

यू वर नॉट एक्सपेकेड टुडे ।'

'दफ्तर से निकला तो मन में बात आयी कि आप की ओर चलूँ। कुछ देर तो निश्चय ही नहीं कर पाया कि चलना है पर अन्त में आने की बात पक्की हो गयी और आ गया।'

'आज मैं भी खाली-खाली महसूस कर रही थी। कास्मापालिटन जाने की इच्छा बिल्कुल नहीं थी, इसलिए लान पर बैठ गयी। पहले कुछ रेखाचित्र बनाती रही, वोर हुई तो बन्द कर दिया। यूँ ही ऊबी बैठी हूँ। नया सोचने की बात कौन करे जो पुराना भी अपने पास है उसे याद नहीं कर पा रही हूँ।'

मैं सामने वाली कुर्सी पर बैठ गया था। मेरी आँखों के घेरे में रिबका का पूरा चेहरा आ गया। फिर तो बारीकी से आँखें एक-एक बिन्दु को खोजने परखने लगी थीं। साफ बात तो यह थी कि रिबका की याद आयी थी कास्मापालिटन के सामने। पर मैंने उनसे यह नहीं कहा। पता नहीं क्या सोचतीं !!

अधीरता असमर्थता का दूसरा नाम है। मानव अधीर बनकर जिस आन्नद और विषाद का मिला जुला रूप अनुभव करता है उसे सामान्य जीवन में पाना बहुत सुलभ नहीं। हमारे अपने जीवन में यह सब कुछ होता है जिसे कभी चाहा नहीं गया। जो वस्तु इच्छित थी वह कभी नहीं मिली और हम कि न मिलने की शिकायत जीवन भर करते रहे। बुजुर्गों का कहना है 'उम्मीद पर दुनिया जीती है।' जीती होगी पर मैं तो यही समझता हूँ कि उम्मीद बहुत बड़ा धोखा है, प्रवंचना है। आप चाहे जो सोचें।

रिबका हाथ में रस्सी पकड़े खड़ी हो गयीं।

'अब तो शाम घिर आई है। यहाँ ओस से हम दोनों भीग जाएंगे। आइए अन्दर चलें। यहां लैम्प लाने में दिक्कत होगी। अँधेरे में कब तक बैठेंगे और जब तक एक दूसरे का मुँह न दीखे बात करने में मजा नहीं आता।'

यह कहकर रिबका मुस्करायी थीं। मैंने भी अन्दर चलने की इच्छा

व्यक्त की। उन्होने नौकर को पुकार कर रस्सी उसको थमा दी और कहा कि बाहर की चीजें अन्दर कर दे।

हम दोनों बरामदे से होते हुए ड्राइंग रूम मे पहुँचे।

लॉन की घास पर लेटी हुई बिल्ली चुपचाप चलकर कमरे के एक कोने मे बैठ गयी। इस बार कुत्ते का पोज बनाकर बैठी सामने के पैरों के बल। लगा कि उसे भी बातचीत और विनोद मे हिस्सा लेना है।

मुश्किल से दो मिनट बीते होंगे बैठे हुए कि रिबका ने कहा—'आप बैठिए मै पाँच मिनट में आयी।'

वह अन्दर चली गयी। मैं उनकी बात पर विचार करता हुआ, सोचता हुआ पाँच मिनट का समय खत्म करने लगा।

कितना निर्मम होता है यह समय।

आदमी थक जाता है यह कभी थकता ही नही। चलता जाता है। शासन थक जाता है, रात थक जाती है, दिन थक जाता है, पर समय!! वह कभी नही थकता।

यद्यपि मै मौन था पर अनगिनत बातों का सिलसिला मन को मथ रहा था। रिबका के पीछे-पीछे बिल्ली भी उठकर धीरे-धीरे अन्दर चली गयी थी।

रात लान पर पूरी तरह पसर गयी थी।

बाहर से दो आदमियों का डिस्कशन चहारदीवारी पार कर नेता के भाषण की तरह कभी-कभी सुनायी पड़ जाता था। मेरा ध्यान उधर न था पर खाली होने के कारण जबरदस्ती सुनना पड़ता था।

मेरे सामने सिवाय दो बातों के और कुछ न था।

सन्नाटा और सवालो का सिलसिला।

कई सारे सन्नाटे और अनेक सवाल। सन्नाटे से घिरा हुआ लॉन जिस पर लेटी हैं आराम कुर्सियाँ।

मैं अन्दर बैठा हुआ बाहर की बात सोच रहा था।

ऐसी बात नही है। ये सन्नाटे और अनेक सवाल हम लोगों के अन्दर भी तो हैं। पाँच मिनट का समय बीत गया।

रिबका ड्राइंग रूम मे आ गयीं।

कुछ गंभीर लग रही थीं। उनके हाथ में एक खण्डित मूर्ति थी। सेन्टर टेबल के पास वाली कुर्सी पर बैठती हुई कहने लगीं—

'कपूर साहब, हम लोगों को आज़ाद हुए कई साल बीत गए। क्या आप ऐसा महसूस करते हैं कि हम लोग सचमुच आज़ाद हैं। क्या कहूँ, मेरी समझ में हिन्दुस्तान की आज़ादी नहीं आयी।'

पर्सनल बातचीत में यह नेशनल समस्या बीच में कैसे आ गयी, कह नहीं सकता। सामाजिक आज़ादी और पर्सनल आज़ादी में कितना भेद मानती होंगी रिबका, यह भी न जान सका। पर उत्तर देने में आज़ादी के व्यक्तिगत रूप पर ही ध्यान केन्द्रित रहा मेरा। उसी के अनुसार कहा था मैंने—

'अपनी आजादी का जमा-खर्च हम लोग नहीं तैयार कर सकते। यह इसलिए कि हमारे पास केवल दृश्य हैं। ये दृश्य क्षणिक हैं। इन पर समय अपना पर्दा डाल देता है। एक दृश्य पकड़ता हूँ तो दूसरा छूट जाता है। छूट जाता है तो बस छूट जाता है। अगला सामने आते-आते थक जाता हूँ। पिछले की पकड़ जारी रहती है। इस प्रक्रिया को लगातार किए जाता हूँ।'

रिबका कहने लगीं—

पर्सनल आज़ादी अनइम्पोर्टेण्ट नहीं है। फिर भी बाहर स्पेशल आज़ादी की बातें बहुत करते हैं। ठीक भी तो है। समाज के सामने आदमी की बिसात ही क्या है। समाज चाहे तो व्यक्ति को मलेरिया के मच्छर की तरह खत्म कर दे।'

'जिस आदमी ने समाज की रचना की वही समाज द्वारा हड़प लिया जाएगा, बड़े अचंभे की बात है।'

'अच्छा छोड़िए इस आज़ादी और गुलामी का चक्कर। मैं तो कभी-कभी बहुत सोचती हूँ, सोचती जाती हूँ, कोई नतीजा नहीं निकलता। अपने मन की पर्तों को पलटती हूँ पर अन्त नहीं पाती हूँ। पता नहीं दूसरे लोगों का क्या अनुभव हो। सोचती हूँ किसी के पास न जाऊं

बातें न करूँ, बोलूँ न पर शरीर नहीं मानता। मन शरीर के अंगों का राजा होता है न ? फिर कई मन होते होंगे। कोई रोकता है, कोई ले जाता है। जो लोग शरीर और मन का सन्तुलन बना लेते है, योगी हैं वे।'

जो बात सहज है, स्वाभाविक है वह समाज की दृष्टि से हेय है। जो प्रवृत्ति मानव प्रकृति के प्रतिकूल है वह समाज का नियम है। व्यक्ति और समाज का यह विरोध आदमी को, उसकी औलाद को बौना कर देता है। क्या अपने समाज मे यह बौनापन नहीं पाया जाता है ?

मैं उत्तेजना महसूस करने लगा—

'नही, ऐसी बात नही है। कभी-कभी बहुत सोच-विचार कर चलने पर भी गलती हो ही जाती है। स्वाभाविकता के लिए और उसे बनाए रखने के लिए समाज मे, आदमियों की भीड़ मे व्यवस्था को हटा दिया जाय, क्या आप यही चाहती है ? पश्चिम की युवा पीढ़ी सहज बनने की लालसा लिए क्या-क्या कर रही है, सारी दुनिया के सामने है। आदमी तो अपने मूल रूप मे पशु है। यदि उसे पशुता से मनुष्यता की ओर ले जाना है तो एक व्यवस्था बनानी पड़ेगी। आवश्यकता के आधार पर उस व्यवस्था में परिवर्तन करने पड़ेंगे और हां, यदि कोई कहे कि आप अपना ब्रश, रंग और चित्र फलक उसे दे दें क्योंकि स्वाभाविकता लाने के लिए उसे ऐसा कहने का हक़ है तो आप क्या करेंगी ? वास्तव मे दुनिया का दूसरा नाम ही अन्तर है। यह अन्तर, जितना बाहर है उससे कहीं ज्यादा और स्पष्ट भीतर है। आपसी सम्बन्धों का आधार अन्तर है। इसलिए हम सब को इस अन्तर को बनाए रखना चाहिए जिस दिन यह अन्तर मिट जाएगा, सारी व्यवस्था डगमगा जाएगी।'

रिबका हँस पड़ीं। इसमे कोई हँसने वाली बात तो थी नहीं पर कभी-कभी ऐसा होता है इसीलिए मैंने कोई अन्यथा नही लिया।

वह कहने लगी, कि 'आपको दुनिया की बड़ी चिन्ता है। मैं कहती हूँ पहले एक का दुख दूर कर लीजिए फिर दुनिया देखी जाएगी।'

'बहुतों की चिन्ता एक साथ दूर की जा सकती है पर एक की चिन्ता दूर करना असम्भव है। और यह काम शायद वह भी न कर सके जिसकी यह चिन्ता है।'

मेरी इस बात को सुनकर कुछ क्षणों तक चुप रहीं रिबका, फिर कहने लगी—

'किसी सीमा तक आपकी बात सही हो सकती है। मैं तो अपना ही उदाहरण लेती हूँ—अकेली हूँ। संगी-साथी छूट गये है। फेमिली का धागा टूट गया है जिसे मैं जोड़ना भी नहीं चाहती। आपके पास मैं बैठी हूँ, मेरा शरीर बैठा है। मन की बात नहीं करती। वह तो जाने कहाँ-कहाँ भटकता रहता है—मुस्कराहट को रोकती हुई—अब उसे कहती भी नही कुछ। जीवन में एक दिन रोका था उसे पर बेकार। आपकी अन्तर वाली बात ठीक है पर एक बात मत भूलिए कि अन्तर समाप्त होने पर इंसान जन्म लेता है। क्या अन्तर के इस आत्मदान के कारण सृष्टि का आरम्भ आप नहीं मानते ?

'मानते हैं'—मैंने कह दिया।

'बस तो सारा हल निकल आया। जिस आदमी के बारे में आप कह रहे थे कि वह मेरा ब्रश, रंग आदि लेले तो क्या होगा। यदि उस के काम आती है ये चीजें तो कोई बात नही पर यदि वह कोई लाभ नहीं उठा पाता तो लेना-देना दोनों बेकार है। मेरी समझ में तो घृणा भी बड़े काम की चीज है। किसी समय इसका महत्त्व प्रेम से अधिक होता है। प्रेम जीवन को खतरे के समन्दर में ढकेलता है, जबकि घृणा उसे बचाती है।'

रिबका के ये विचार मुझे अच्छे नही लगे।

उत्तर मे कोई भी बात मैं कह नही सका था, न तो तीखी और न सामान्य। पर उनकी बातों ने सोचने को मजबूर किया था। घृणा और प्रेम की तुलना क्यों की जा रही है ? इन दोनों की कोई समानता भी है क्या, प्रेम में छिपी कहीं घृणा बैठी है या फिर प्रेम ही घृणा में है। किसी दूसरे व्यक्ति से घृणा की जा सकती है और प्रेम भी पर अपने से

केवल प्रेम सम्भव है जिस दिन आदमी को अपने से घृणा हो जायेगी उस दिन वह आदमी न रह जाएगा। उसका यह काम भी नहीं है कि जीवन-को घृणा के महासागर में डुबो दे।

रिबका बड़े उत्साह में कहने लगीं—

'मैं तो यहाँ तक सोचती हूँ कि कुदरत ने इन प्रवृत्तियों को इंसान में क्यों भरा? क्या इनसे खाली रह कर वह इंसान न बनता? लगता है कि सचमुच न बन पाता। प्रवृत्तियाँ इंसान के व्यक्तित्व की धरोहर हैं, आधार हैं। इनके न होने पर वह काठ का उल्लू होगा। क्या खयाल है आपका?'

रिबका ने मेरी राय जाननी चाही थी पर इस डिस्कशन का कोई अन्त नहीं था। बातें कहीं चुकती हैं। अवसर पाकर मैंने कहा—'अब मैं चलूँ।'

'अपने घर ही जाना है, चले जाइएगा। कोई और प्रोग्राम तो नहीं है? इन्तजार भी नहीं कर रहा होगा कोई।'

'नहीं, और कोई प्रोग्राम नहीं है। यहाँ से घर ही जाना है।'

हम दोनों की बातों से ऊब कर बिल्ली लान की ओर चली गयी थी। कहीं से घूमघाम कर टानी आ गया था और मेज़ के नीचे रिबका के पैर से सँट कर बैठ गया था। वह कभी ऊँघने लगता था, कभी आँखें मुलमुलाता था।

नौकर ने मेज़ पर कॉफी का प्याला रखा। टानी उठ बैठा। रिबका ने नौकर से कहा कि वह एक कप कॉफी बनाकर टानी को दे दे। सिम्मी कहीं बाहर घूम रही होगी। वह विन्डू के पिंजड़े के पास न जाने पाये। यदि उन्हें कॉफी न अच्छी लगे तो दूध दे दे।

इन जानवरों की आदतें रिबका बड़े प्रेम से सुनाती-बतलाती हैं। आखिरकार जानवर हैं तो जानवर ही पर कुछ बातों में आदमियों से अच्छे हैं। करेक्टर के साफ हैं जैसे अन्दर वैसे बाहर। विन्डू अकेले खेलना पसन्द नहीं करता, सिम्मी विन्डू के पिंजड़े के पास जाना चाहती है।

□ □

कॉफी का प्याला मेरी ओर करते हुए रिबका अपने नौकर के सम्बन्ध में नयी बाते बतलाने लगी। सिम्मी को वह बहुत चाहता है पर विन्डू के पिंजड़े का दरवाजा तक नही खोलता। टानी को किसी की सहायता नही चाहिए। वन मैन पार्टी की तरह वह अकेले ही एक समूह था। यह सब पेट भरे होने के चोंचले है। जिसके सामने जीवन के वास्तविक संघर्ष हैं उन्हें इन बातों पर विचार करने, इन्हें सुनने की फुर्सत ही नहीं है।

काफी की तरलता गरम थी।

यह जलता हुआ पानी आदत और तहजीब के कारण पीना पड़ता है। लोगो ने अन्तर्दाह शान्त करने के लिए कोल्ड काफी की खोज की है। गरमी से भी जलन शान्त होती है, थोड़ी देर के लिए ही सही।

रिबका ने कॉफी सिप करते हुए पूछा—

'कॉफी का मूड तो है आपका न ?'

'मूड तो है पर कुछ सोच रहा हूँ। समझ में नही आ रहा है कि क्या सोच रहा हूँ। अनर्गल प्रसंग है।'

'क्या कोई खास बात है ?'

विन्डू, टानी और सिम्मी का साथ आपको खूब मिला है। काश, ये बोलते होते और इनकी भाषा आप समझ पातीं।'

'तब मेरा इनका साथ नहीं होता। बोलने वालों का साथ सब तरह से कर चुकी हूँ। अब चाहती हूँ कि गूँगे जानवरों का साथ करके कुछ हासिल करूँ।'

क्यों गूँगी आकृतियों से आपका मन नहीं भरता क्या ?'

'रेखाएँ गूँगी हो सकती हैं पर आकृतियों में बोलने की शक्ति होती है।'

'तो क्या आकृतियों से प्रेम करती हैं आप ?'

'हाँ करती हूँ ।' इसका कारण है कि ये जो कहती हैं वही करती हैं । समय की धार इनके बोल बदल नहीं पाती । बस यही कारण है प्रेम करने का ।

□ □

हम लोग कॉफी पी चुके ।

सन्नाटा लॉन से खिसकता हुआ अन्दर आने लगा । उस वक्त ऐसा अनुभव होता था कि गहरे अँधेरे का सन्नाटा अन्दर तक फैल जाएगा ।

अन्दर लैम्प जल रही थी। शेड के पास से निकलने वाली प्रकाश की क्षीण धाराएँ अपने सीध में जाकर अन्धकार को समर्पित हो जाती थीं। कमरे में डिम लाइट के कारण अँधेरे और उजाले के मिश्रण से बनी शीतलता अच्छी लग रही थी ।

बीच में दो-तीन मिनट का मौन रहा ।

रिबका कहने लगीं—'बुरा मत मानिएगा । आप से मैं अब फार्मल नहीं हो पाती । पता नहीं आप क्या सोचते हों। कला को मारिए गोली । वह भी मन को सन्तुष्ट करने का साधन मात्र है । इस साधन की खोज के पीछे वासना का हाथ है । बिना वासना के दुनिया चल ही नहीं सकती। जीवन के मूल में यही पायी जाती है । सारे ज्ञान और समस्त विद्याओं का आधार यही वासना है । यह जानते हुए भी आदमी दुनिया भर का ज्ञान बघारता है । घूम-घूम कर कहता फिरता है कि वासना को मारो । मारने से कहीं वासना मरती है । वासना की औलाद उसे मारने का स्वांग रचती है। आज की नयी बात नहीं है । बहुत पहले से यह प्रयास जारी है पर वासना मरी नही । और ऐसी स्थिति में विश्वास योग्य कौन है नारी या पुरुष, या फिर दोनों नहीं हैं ?'

'मैं स्वयं एक पुरुष हूँ इसलिए पक्षपात कर सकता हूँ पुरुषों के लिए ।'

'आप तो मुझ से घनिष्ठता रखते हैं। पर एक बात कहूँ कि कोई पुरुष अब मेरे प्रति प्रेज्युडिस्ड नहीं हो सकता क्योंकि इस दिशा में बहुत खाक छानी है। आदमी की रचना में ही अन्तर होने का ध्यान रखा गया है। रही बात औरतों की…'

मैंने तुरन्त उनकी बात छीन ली—

'दुनिया में औरत एक बहुत बड़ी ताक़त है। यदि कभी यह कमजोर होती है तो दुनिया भी कमजोर हो जाती है। सामाजिक संतुलन को बनाए रखने के लिए औरत की यह शक्ति काम करती रहती है। क्या किसी औरत ने अपने मन के अलबम को खोल कर दुनिया को दिखाया और दुनिया ने उसे सहानुभूति और तन्मयता से देखा ? यदि नहीं तो औरत के लिए समाज द्वारा प्रदर्शित की जानी वाली सहृदयता, सहृदयता नहीं ढोंग है।'

मेरी इस बात का रिबका पर जो भी असर हुआ हो, कह नहीं सकता। वह अपनी दाहिनी ओर रखे स्टूल पर स्थित आदिम पुरुष की एक टूटी मूर्ति देख रही थीं। मेरे मौन से उनका ध्यान टूटा—

'औरत के बारे में आप के विचार सही नहीं हैं। क्या यह सम्भव नहीं है कि तृप्तिखोजी औरत किसी पुरुष विशेष को अपना साधन बना ले। आगे जब चाहे उससे अपना सम्बंध तोड़ ले और अपनी प्रारम्भिक कहानियों की किताब को बन्द कर दे। इसके अलावा भी—आदिम प्रवृत्तियाँ औरत में भी तो हो सकती हैं। उसके साथ के सारे रिश्ते सामाजिक हैं। उसका मूल रूप नारी है, नर की पूर्ति मात्र। इस विषय पर मैंने खूब सोचा है पर विचार व्यक्तिगत हैं, मेरे अपने।'

'यह तो स्वार्थ की बात हुई—मैंने कहा—आपसी सम्बन्धों में उत्तरदायित्व की योग्यता दोनों में बराबर होनी चाहिए। किसी पक्ष की कमी परस्पर कटुता घोल देती है। ऐसी कटुता जो ज़हर बनकर आदमी को पी जाती है। जीवन को समाप्त करना आसान काम है, किन्तु अपने सही रास्ते से जीवन को ले चलने के लिए सही समझ की ज़रूरत है।'

ये बातें बड़े ध्यान से सुनी जा रही थीं। बीच-बीच में चेहरे पर बल पड़ जाता था। भंगिमाएँ एक के बाद दूसरी आतीं और मिट जाती थीं। यह क्रमागत भाव-परिवर्तन बड़ा मनोहर लग रहा था। एक मादक अदा के साथ रिबका बोलीं—

'साहित्य, कला, संगीत आदि मानव के छिपने के स्थान हैं। इन्हीं के द्वारा अपनी हार-जीत का लेखा-जोखा दुनिया के सामने प्रस्तुत किया जाता है। क्या आप बता सकते हैं कि लेडी चैटरली और उसके प्रेमी की कल्पना क्यों की गयी ? कवियों ने अवतार कथाओं के प्रेम प्रसंगों में अधिक रस लिया। मीरा ने किसी देवी की पूजा न करके विषम लिंगी देवता की आराधना की। यहाँ तक कि वाग्देवी की कल्पना के पीछे भी यही दृष्टि रही है। क्या यह तथ्य ग़लत है कि जीवन भर औरत की खोज जारी रहती है और पुरुष इसी खोज में संलग्न होकर अन्ततः थक जाता है और अपने जीवन पर विराम लगा लेता है।'

विनोद में मैंने कहा था, कि 'आपके लिए भी खोज हो रही होगी।'

'खोज तो तब तक जारी रहती है। कपूर साहब जब तक चाही हुई वस्तु मिलती नहीं है। मिल जाने पर सारी जिज्ञासा समाप्त हो जाती है, खोजें खत्म हो जाती हैं।'

यह बात रिबका ने नार्मल मूड में कही थी

उस रात काफी देर हो गयी थी। मैं घर नहीं लौट सका। धर्मराज ने ज्यादा देर तक इन्ताज़र किया होगा।

अब मुझे भूल जाना होगा कि मैं किसी दफ्तर में काम करता हूँ पर यह संभव कैसे होगा ! और भी लोग तो दफ्तर में काम करते हैं। उन सब का जीवन पत्थर हो चुका है। 'जो अच्छा वेतन पाते हैं उनका काम है देश की व्यवस्था को कोसना, कम काम करके ज्यादा पैसा लेना, सरकार को गालियाँ देना, बड़े-बड़े क्लबों में दूसरों की औरतों के साथ नाचना और अपने से छोटे कर्मचारियों को बेवकूफ समझना।

छोटे-छोटे मजदूरों की रहन-सहन का नमूना दूसरा है। उनका अपना टाइम टेबल ही अलग है। खाली समय इन लोगों के पास होता नहीं पर भगवान को गाली देने के लिए, अपने मालिकों को भगवान मानने के लिए ये समय निकाल लेते हैं। साधनहीनता की आँच में तपते रहते हैं। होली-दीवाली खुश हो लेते है और क्या चाहिए।

जो लोग बड़े कहे जाते हैं उनके भगवान भी बड़े होते हैं। एक बार दिवाली को मेरे दफ्तर के एक चपरासी ने मुझसे कहा था, कि

'लक्ष्मी बड़ी सस्ती है । छः ग्राने में लक्ष्मी ग्रौर गणेश दोनों मिल गये ।' बड़ा खुश था वह यह बतला कर । जीवन मिट्टी से ज्यादा सस्ता है। सुरक्षा के ग्रभाव में यह सस्तापन हर जगह दिखायी पड़ना है । समाज द्वारा, शासन द्वारा जब तृप्ति का साधन नहीं मिलता तो ग्रादमी क्रांति की बात करके ग्रपने को कुछ सुपीरियर समझने लगता है ।

ग्राजकल क्रांति की बात भी सस्ती है । जो लोग क्रांति की बातें करते हैं वे बड़े चतुर हैं । मुझे ये बातें सुनने को मिल जाती हैं । कॉफी हाउस की क्रांति महानगर के बुद्धिजीवी की उपलब्धि है । पहला झगड़ा तो रक्तहीनता ग्रौर रक्तपात वाली क्रांति के सम्बंध में होता है । इसी बिन्दु पर दो दल हो जाते हैं । क्रांति का पक्ष मैं क्यों लेता हूँ, केवल इसीलिए कि परिवर्तन में तृप्ति, संतोष, सुख के माध्यम मिलें । जोशी, सरदार जी, थाने का मुंशी, मिसेज सक्सेना, उनकी बहन संध्या, सभी के जीवन की टेढ़ी-मेढ़ी रेखाएँ बनाना मेरे वश में नहीं है । यह एक बड़ा काम है । जल्दी-जल्दी परिवर्तन पसन्द करने वाले मानव के रूप इन रेखाग्रों में बँध जायेंगे । ग्रादमी भले ही ईमानदार न हो पर ये रेखाएँ बड़ी ईमानदार होती हैं, कुछ भी नहीं छिपातीं । सब कुछ कह देती हैं, साफ-साफ कह देती है । मुझसे नहीं बनती है ये रेखाएँ । सीधी खींचने की कोशिश करता हूँ, टेढ़ी हो जाती है । जीवन की टेढ़ी-मेढ़ी रेखाग्रों का सीधा होना ग्रपने लिए मैंने कभी नहीं देखा ।

मैं जीना चाहता हूँ ।

संगतियों ग्रौर विसंगतियों का उलट-फेर मेरे लिए कोई विशेष महत्व नहीं रखता । रेल की पटरियों की भाँति सीधा चलने की कोशिश करता हूँ पर बीच में मोड़ ग्रा ही जाता है । जोशी के जीवन में कभी कोई मोड़ नहीं ग्राया, मैं नहीं जानता पर इतना जानता हूँ कि मिसेज सक्सेना, उनकी बहन संध्या ग्रौर मिसेज यामिनी सभी के जीवन में मोड़ ग्राए हैं । यह जीवन कुछ मान्यताग्रों के पहियों के सहारे कार की भाँति भागता है । रास्ते में तरह-तरह के संकेत-चिह्न मिलते जाते हैं । ऐसा भी होता है कि लोहे की पटरियों से सड़क कट जाती है ग्रौर कार को

रुकना पड़ता है। वातावरण की आँखों में धुआँ भरती हुई रेलगाड़ी चली जाती है। क्रासिंग का फाटक खुल जाता है, कार आगे निकल जाती है।

यह बात सभी के लिए सही नहीं है। कुछ लोगों के जीवन की स्पीड बैलगाड़ी के समान है। अँधेरे में चलती हुई बैलगाड़ी के पीछे जिस प्रकार लम्बे शीशे की एक लालटेन टिमटिमाती रहती है उसी तरह जीने की लालसा की धुन में व्यक्ति समय और मोड़ों की मार झेलता हुआ आगे बढ़ता चला जाता है। मुड़कर पीछे नहीं देखता।

ऊब और घुटन जीवन के लिए निरर्थक और सार्थक दोनों हो सकते हैं। जो लोग जीवन को मनोरंजन मानकर जीते है उनके लिए ऊब और घुटन हवा के उस झोंके के समान हैं जो आते ही चला जाता है।

घटनाएँ चुपके से घट जाती हैं आदमी आँखें मीच लेता है। घटनाएँ फिर घट जाती हैं, घटती जाती है। घटनाओं का वार झेलता-झेलता आदमी थेंथर हो जाता है पर इनका क्रम कभी भी नहीं टूटता।

जिस दिन अपने दफ्तर में मैंने इस्तीफे का कागज़ दिया किसी को कोई अचम्भा नहीं हुआ। सभी जानते थे कि काम मेरे नेचर का नहीं है और इसीलिए मेरा मन नहीं लगता था। दिन भर मशीन की तरह काम करता था शाम को राहत की साँस लेता था। घर लौटने में बड़ा सुख मिलता था। इस्तीफा देकर जो स्वतंत्रता मैंने महसूस की थी उसका वर्णन करना मेरी शक्ति के बाहर है। अगली समस्याओं के बारे में कोई चिन्ता नहीं थी। रिक्तता के सुख का अनुभव कर रहा था। जो काम अभी हो गया उसे एक न एक दिन अवश्य होना था। बाद में मैं किसी काम का न रह जाता। मेरे जीवन का सारा रस यह दफ्तर निचोड़ लेता।

अगले शनिवार को मेरे सम्मान में पार्टी दी गयी।

साहब, उनके गुर्गे, जोशी, जुनेजा, छारिया, विश्वास, मिसेज सक्सेना सभी आए। साथ में थे साहब के क्लब के साथी कुछ नौजवान, अधेड़

और बूढ़े, कुछ गदराई किशोरियाँ, धृष्ट प्रौढ़ाएँ और···। ये लोग क्यों आए थे, साहब जानें।

जोशी उदास था। लगता था जैसे इसे नौकरी से हटने का नोटिस मिला हो। इस्तीफे को लेकर मेरे मन पर कोई ऐसी प्रतिक्रिया नहीं थी जिससे मैं दुखी होता। मुझे विश्वास है मेरे चेहरे पर प्रसन्नता अवश्य रही होगी।

वहाँ प्रायः सभी लोगों की सूरत मुहर्रमी थी। थी क्या, लोग जान-बूझ कर बनाए थे। यह सब बिना किसी योजना के होता जा रहा था। कोई क्रम नहीं दीखता था। मुझे पहले से कुछ भी पता नहीं था। केवल इतना कहा गया था कि मेरे साथ चाय पी जाएगी।

मेरे साहब के लिए सब कुछ फार्मल था।

दफ्तर के तीन चपरासी उनके घर पर काम करने जाते थे। कोई उन्हें चाय तक के लिए नहीं पूछता था। साहब की पकी हुई बीवी के सारे काम करते थे वे। साहब के घर दफ्तर से दरियाँ और पंखे चले गये। बाद में हेड क्लर्क से कह कर सामान एडजस्ट करवा दिया गया। लड़ाई-झगड़े का निबटारा करने में मेरे साहब माहिर थे। कभी-कभी तो चपरासियों के झगड़े में कइयों को बरखास्त होना पड़ता था।

कहते थे—'दफ्तर का चलाना मामूली काम नहीं है। मातहत काम करने वालों को साहब का रुख देखकर बरसाती मेंढकों की भाँति चुप हो जाना चाहिए।' दफ्तर के लोग करते भी यही थे।

मैं नहीं जान सका कि यह सद्भावना साहब के मन में कैसे आयी।

स्वयं की सूझबूझ तो हो नही सकती फाइलों में बन्द या समय के कोल्ड स्टोरेज़ में रखी अक्ल प्रायः समय पर धोखा दे जाती है।

बड़ी शालीनता के साथ मेरे साहब स्टेज पर खड़े हो कर कहने लगे—

'आये हुए दोस्तो, कर्मचारीगन, इस जगह से बोलते आज हमें बड़ा दुःख हो रहा है। अगर यह पार्टी किसी के स्वागत की होती तो इसका दूसरा कोई रूप होता। यह जो सभी के चेहरों पर उदासी छायी है,

कुदरती है । हम लोगों के बीच से एक सिंसियर वर्कर जा रहा है ।'

सभी लोग ध्यान से सुन रहे थे—

'हमें यह पता है कि दफ्तरों का वातावरण अच्छा नहीं है । पे अच्छा नहीं मिलता । आम कर्मचारी बासिज्म के चक्कर में पिसते रहते हैं । सभ्यता में इजाफा हुआ है, हमारे नेताओं का कहना है पर हम तो ऐसा कुछ सोचते है कि रही सही सभ्यता भी रसातल को जा रही है । दफ्तरों में होने वाली बातों और वारदातों का अगर अध्ययन किया जाय तो इतना मैटर मिलेगा कि लोकसभा और विधान सभाओं में जाने की ज़रूरत न पड़ेगी । फिर भी इस मामले में मेरा दफ्तर अच्छा है । यही कारण है कि सब जगह इसका नाम है । यह सब मेरी वजह से नहीं हुआ है । हमारा इफिशिएण्ट स्टाफ न होता तो हम कुछ भी न कर पाते । दुनिया में सही ग़लत सब कुछ होता है । हम लोगों के दिमाग़ों में उसकी साफ तस्वीर होती है । हमें सहना पड़ता है । सहते-सहते हम एक न एक दिन इस दुनिया से डेरा कूच कर देते है । इस माडर्न एज़ में ज़िन्दगी कितनी सस्ती हो गयी है । सरकार कहती है हम गरीबी हटा रहे है । ऐसे हटती है गरीबी !! बड़े-बड़े सामन्तों जैसे बड़े लोग गरीबी हटाएँगे और क्यों हटाएँगे···।'

मिसेज सक्सेना साहब की ओर घूरने लगीं थीं ।

उनकी दृष्टि की भाषा कुछ यों लगती थी—'झूठ है, सब झूठ है, तुम झूठ हो, तुम्हारा दफ्तर झूठ है, तुम्हारी बातें झूठ हैं । सत्य एक चीज़ है और वह है तुम्हारे कैरेक्टर में व्याप्त झूठ ।'

अपने क्लब के जिन लोगों को साहब लाए थे उनमें कुछ तो बड़े ध्यान से सुन रहे थे, कुछ साहब का हाथ भाँजना देख रहे थे । चुलबुली लड़कियाँ मुँह बिचका रही थीं । भाषण बन्द नहीं हुआ था—

'आज मौका है कि हम सभी लोग मिस्टर कपूर से अपनी-अपनी भूलों के लिए माफी माँगें और उनकी तरक्की के लिए कामना करें । क्या बतलाऊँ जब इन्होंने मुझे अपना इस्तीफा दिया तो मैंने पूछा—'इसके बाद आप क्या करेंगे ?' जवाब में इन्होंने कहा था—'समय

काटूँगा।' मुझे कुछ अजीब सा लगा था। अभी इनकी सारी उम्र पड़ी है। इन्हें तरक्की की ओर बढ़ना चाहिए। अच्छा हाँ, तो मैं आज इस पार्टी का प्रेज़िडेण्ट रोशनआरा जी को बनाने का प्रस्ताव करता हूँ। उम्मीद है यह बात आपको मंजूर होगी'—कह कर साहब अपनी कुर्सी पर बैठ रहे थे—उधर तालियाँ बज रही थी। मैं रोशनआरा के बारे मे इतना जानता था कि क्लब की मेम्बर है। उम्र चालीस छू रही होगी पर चालीस की लगती नहीं है।

रोशन आरा अपनी कुर्सी से मंच की ओर आयी।

जिस लापरवाही से वे आयीं वह अच्छी लग रही थी। कनपटी पर भ्रष्टाचार की भांति फैले बालों के बीच से चश्मे की दोनों कमानियाँ ईमानदारी जैसी छुप गयी थी। शरीर मे जो कुछ जहाँ था, वही था, उसे ढंकने या खोलने की फुर्सत उन्हे नही थी।

मच पर जाते ही अपनी दाहिनी हथेली की प्याली को ऊपर मत्थे की ओर ले जाकर बैठे हुए लोगो की ओर आदाब का अध्याय खोला। कहने लगी—

'मैं इस क़ाबिल तो नहीं हूँ कि ऐसी मीटिंग का प्रेजिडेण्ट बनूँ पर हमारे रहनुमा ने हमारा नाम लेकर इज़्ज़त दी है यह हमारे लिए खुशी की बात है। इसे आप हुश्नेइत्तिफाक़ ही कहें कि हम सब लोग यहाँ इकट्ठा हैं। मैं आप सब लोगों का शुक्रिया अदा करती हूँ।'

इतना कह कर चुपचाप वह प्रेजिडेण्ट की चेअर पर बैठ गयी। उनके अधर मुस्कान में डूब गये थे। उनकी दृष्टि का जाल उपस्थित लोगों पर फैल गया था।

मैं तीन चार मिनट के लिए हॉल से बाहर चला गया। लौटा तो मिसेज़ सक्सेना बोल रही थीं—

···रफ्तार तेज़ हो जाती है। सभी भागने लगते हैं। जिस राह पर दौड़ते है वह पीछे छूट जाती है। आदमी समय को भी पीछे छोड़ देता है।

हम लोगों का जीवन एक चलता हुआ रास्ता है जो रुकना नहीं

जानता। बहुत कोशिश करने के बाद भी कुछ भूली हुई बातें ऐसी होती हैं जो याद नहीं आती हैं और कुछ याद बातें ऐसी होती हैं जो भूल नहीं पाती हैं। इसी याद और भूल से यह जीवन बना है। राह के किनारे का जो वृक्ष राहगीर को छाया नहीं दे पाता उसका नाम राहगीर की डायरी में नहीं नोट हो पाता। इस दफ्तर की सभ्यता और रीतिरिवाज़ से मैं भी परिचित हूँ। रिअलिटी से दूर हट कर मैं आदर्शवाद का एक लम्बा लेक्चर दे सकती हूँ पर जब कभी दिमाग़ को एक पल की भी फुर्सत मिलती है वह जानबूझ कर पिछली घटनाओं को देखने लगता है।

मुझे इस बात का क़तई अफसोस नहीं है कि मिस्टर कपूर ने इस्तीफा दे दिया, अफसोस तो इस बात का है कि मैंने इस्तीफा क्यों नहीं दिया। यह बात दफ्तर की है। मैं कपूर साहब की विदाई के समय पर्दा खोलकर सारी बातें बताना ठीक नहीं समझती पर इतना कहे देती हूँ कि समाज के दायरे में एक अकेले व्यक्ति का कोई महत्व नहीं होता।

ईमानदारी जीवन की बहुत बड़ी और कठिनाइयों भरी शर्त है। कपूर साहब हम लोगों के बीच रहे, सहयोग दिया लिया। अब यह दफ्तरी धुएँ से निकल कर बाहर राहत की साँस लेंगे। मैं अपनी ग़लतियों की माफी नहीं मागूँग़ी इसलिए कि अभी उन्हें बहुत लोगों को माफ करना है। जीवन में नकाब लगाकर घूमना मुझे नहीं आता पर नकाब वाले चेहरे को मैं खूब पहचानती हूँ, खूब जानती हूँ, धन्यवाद।'

मिसेज सक्सेना के बाद दफ्तर का और कोई कर्मचारी बोला तो बहुत कम। दो बातें खास रहीं—एक तो मेरी तरक्की और दूसरे गलतियों की माफ़ी। साहब ने कहा कि, 'अब हम लोग कपूर साहब को सुनना चाहते हैं। मेरा मतलब यह नहीं कि यह वक्त कुछ सुनने-सुनाने का है पर वह हम लोगों से अलग हो रहे हैं इसलिए···।

मंच से बोलने के अवसर तो तमाम आए हैं पर मैं अपनी सीमाओं को जानता हूँ। मैं बहुत ही दब्बू नेचर का हूँ इस मामले में। यह समय और अवसर भी बड़ा ही कठिन होता है। जो सम्बंध ज़िन्दगी के लम्बे

सफर में बनाए जाते हैं वे एक क्षण में ही टूट सकते हैं, टूट जाते हैं। देर तो बनाने में लगती है। तोड़ना बहुत आसान होता है। टूट जाने के बाद पहले जैसी बात सम्बंधों में नहीं पायी जाती। मैं मंच पर गया और कहने लगा—

…दफ्तर में काम करते-करते निर्जीव फर्नीचर और फाइलों तक से एक लगाव हो गया था। अब कोई महत्व नहीं है इस लगाव का। हम ऐसे गये बीते हैं कि इन्हें साथ नहीं ले सकते और ये बेचारे कुछ बोल नहीं पाते। किसी को माफी देना बुजुर्गों का काम है, मैं अभी उस दर्जे तक नहीं पहुँच पाया। यहाँ दफ्तर में मुझे क्या तकलीफ हुई, क्या नहीं हुई यह बताने के मूड में नहीं हूँ। मुझे केवल इतना कहना है कि बैसाखियों वाली इमारत वह जाती है, दुनिया की आँखों के सामने से उसके कण-कण गायब हो जाते है।

अब शायद यहाँ आने का मौका मुझे न मिले। साहब और साथियों को मैं न देख सकूँ किन्तु घटनाएँ न तो साहब को भूलने देंगी और न साथियों को। इस वक्त मेरी आँखों से आँसू नहीं निकल रहे है इसका मतलब यह नहीं कि दर्द कम है। अन्दर-अन्दर सब कुछ सूखा सा लगता है। गीलापन भाप बन कर उड़ गया है। चाहता था कि मिसेज सक्सेना ने अपनी बातें जहाँ खत्म की थीं वहीं से मैं शुरू करता। उस किताब को अब बन्द ही रखना चाहता हूँ। आपसी प्रेम का जो वातावरण यहाँ मिला उसके लिए हम आपके आभारी है।

साहब ने दो-चार वाक्य फिर कहे। ज्यादा बोलने की स्थिति में वह नहीं थे, क्योंकि सक्सेना और मेरे संकेतों का उन पर काफी असर था।

प्रेजिडेण्ट रोशनआरा ने फार्मल बातें कही।

उन्हें मेरे बारे में कुछ भी पता नहीं था। केवल इतना जानती है कि दफ्तर का कोई बाबू इस्तीफा दे चुका है, उसकी पार्टी है। नपे-तुले वाक्यों से काम चलाना है। वह कैसे आ गयीं थीं, मैं सोच नहीं सका। उनका मेरे दफ्तर से कोई सम्बंध नहीं था। साहब की यह बात मुझे क्या किसी को भी अच्छी नहीं लगी। रोशनआरा की भाषा बड़ी

रोचक थी ।

□ □

मेरे साहब को पता नहीं क्या सूझा कि तुरन्त मंच पर आ गये और बड़े उत्साह में बोले—

'आप लोगों का मैं शुक्रगुजार हूँ । ऐसे मौके जीवन में कम आते है जब आपस में हम सब लोग इकट्ठा हो जाएँ । यह बहुत अच्छी बात है कि हम हिन्दुस्तानियों में यह स्पिरिट अभी बची हुई है । इसी प्रकार लगन से काम करके हम देश की तरक्की कर सकेंगे । नेता लोग तो केवल नारे लगाते है, असली काम तो हम लोग करते है । अपने कमाने-खाने के साथ हमें अपने देश का ध्यान रखना होगा नही तो गाँधी का राम राज्य कैसे आएगा, जय जवान, जय किसान का नारा कैसे सार्थक होगा और गरीबी कैसे दूर होगी ।

···हम कहते हैं खाइए, खूब खाइए पर ऐसे ढंग से खाइए जैसे दाल में नमक खाया जाता है । अगर आपने ऐसा नहीं किया तो कलई खुल जाएगी और आप मारे जाएँगे । विश्वास और करेक्टर बड़ी चीज हैं पर सब के पास होते कहाँ है। इसे पाने और देने के लिए बड़ी मेहनत करनी पड़ती है ।

···अब देखिए, अपना दफ्तर है । आप सभी लोग ईमानदारी से काम करते हैं। इसके बावजूद भी लगता है जैसे काम कुछ हुआ ही नहीं । मुझे तो सोते-जागते चिन्ता लगी रहती है कि अपने देश का क्या होगा !! पर यह भी तो नहीं कहा जा सकता कि अमीर लोग गरीबों में मुफ्त पैसा बॉट कर उन्हें काहिल बना दें ।'

साहब का धन्यवाद—भाषण जारी था ।

मैं बोर महसूस करने लगा । सिर में हलका-हलका दर्द था पर किसी से कहना ठीक न था । आखिर में प्रेंजिडेण्ट का वक्तव्य हो जाने पर इन्हें भाषण पिलाने की क्या आवश्यकता थी । पर मौके की बात थी, जाने आगे कभी उनके जीवन में ऐसा अवसर आता या न आता।

देश-दुनिया की बातें उनके लिए झूठ हैं। उनका अपना हित होता तो पैसा कूड़े पर से उठा लेंगे। यदि समाज में कहीं कुरूपता दिखायी पड़ेगी तो उसके लिए लाख बातें सुनाएँगे। खरी-खोटी कहने में किसी से पीछे नहीं रहते। कभी-कभी धार्मिक बातें भी कहने लगते हैं। ईश्वर-वादी लोग समझते हैं, 'बड़ा लायक़ है।' होगा उनके लिए।

मेरे लिए यह दफ्तर मर गया है।

मैं भी इसके लिए इस दुनिया में नहीं हूँ। जो संगी-साथी अपने होने का क्लेम करते हैं मुझे तो उनमें भी कोई जान नहीं दीखती।

मीटिंग से बाहर जाना चाहता था।

अन्दर की घुटन असह्य हो रही थी। मन का भागना और भागते जाना मेरे लिए खतरनाक हो सकता है। उठ नहीं सका मीटिंग से। कितना कमजोर था मैं। इस कमज़ोरी को मैं अच्छी तरह पहचानता हूँ, जानता हूँ।

तो क्या रिबका भी अपनी कमजोरी पहचानती होंगी। ऐसा नहीं होता। अरे कौन है इस दुनिया में जो अपनी बात साफ-साफ बतला दे। लोग अनेक तरह के रंगों की आड़ में क्यों छिपते हैं। इन रंगों का व्यक्तित्व दोहरा होता है। किसी की कमजोरी ये छिपा लेते है और किसी को एक्सपोज़ कर देते हैं।

मकड़ी के जाले की तरह कमज़ोरी ने मुझे चारों तरफ से घेर रखा था। आप इसे चाहे जो नाम दें पर मैं तो जाला ही कहूँगा।

इसे तोड़ने में अपने टूट जाने का भय था।

दूसरे दिन सवेरे जब मैं चाय पीने लगा तो मेरी आंखों के सामने पिछला कल उभर आया।

एक सवाल यह भी सामने था कि मैंने इस्तीफा क्यों दिया। अनेक उलझनों से भरा हुआ था यह कल। विदाई का नाटक मुझे अच्छा नहीं लगा था। पता नहीं क्यों आदमी फार्मल होना बहुत पसन्द करता है। ज़रूरत पड़ने पर मैं भी फार्मल होता हूँ। यह औपचारिकता रिबका के साथ भी होती है पर उनका व्यवहार इसे ग़ायब कर देता है। मैं

तो अपना कल भूलना चाहता हूँ पर यह बिल्कुल ही सम्भव नहीं है। आज के बारे में सोचना पड़ेगा। पता नहीं कितने आज आ-आ कर चले जाएँगे। उनके साथ कोई ऐसा सम्बन्ध नहीं कि वे मेरे लिए रुकें। उनका जाना ही श्रेयस्कर है। मेरे इस्तीफा देने में एक जोश ज़रूर था पर अब मैं असलियत की ज़मीन पर खड़ा हूँ। अगर चार्ज लगा कर निकाला गया होता तो मैं कहीं का भी नहीं रहता। मैं जान गया था कि अगर मैं दफ्तर से अलग नहीं हो जाता हूँ तो भविष्य खतरे में है। सभी तरह के लोग इस दफ्तर में घुस आए थे। साम्प्रदायिक पार्टियों ने अपने आदमी तैनात कर दिये थे। बाबू की हैसियत से सी. आई. डी. के कर्मचारी काम करते थे। प्रगतिवादी विचारधारा के लोग भी थे। प्रच्छन्न प्रगतिवाद से बड़ा डर लगता है।

मुझे पता लग गया था कि मेरी गतिविधियों पर अफसरों की कड़ी नज़र है पर बिना सबूत के कुछ हो ही नहीं सकता था। मेरा भी अपना एक मिशन था। इस मिशन को पूरा करने के लिए राजधानी से बढ़ कर कोई दूसरी उपयुक्त जगह नहीं थी—करता भी मैं क्या? आगे कहाँ तक जाना पड़ेगा यह तो भविष्य ही बतलाएगा। कौन व्यक्ति किसके लिए काम कर रहा है यह पहचानना बड़ा मुश्किल है। अपने सम्बन्ध में भी मैं यही कह सकता हूँ। पर अभी अंतिम रूप से कोई बात कहनी नहीं चाहिए। अभी क्या, कभी नहीं कहनी चाहिए क्योंकि किसी भी बात का कोई अन्त नहीं होता।

□□

पानी बरस रहा था ।

आसमान बादलों से घिरा था । बड़ी नाजुक बरसात थी । मैं नन्ही नन्ही बूँदों का धरती पर सिर पटक कर टूटना देख रहा था ।

कमरे को चारों ओर से बन्द कर लिया ।

अँधेरा इतना था कि पढा नही जा सकता था । हवा की ठोकर से कभी-कभी खिड़की की खड़-खड़ सुनायी दे जाती थी । लगता था कि जैसे कमरा अन्दर से टूट रहा है और मैं उस टूटन से दबा जा रहा हूँ । बाहर झाँकता था तो अजीब दृश्य आँखों के सामने उभरता था । जंगल के छतनार बबूल की डालें बूँदों के दबाव से झुक गयी थीं । बड़ी मोटी सड़क शहर से जान छुड़ा कर भागी थी पर जंगल की ओर जाने पर वह पी गया था उसे । समतल पर तेज चलने वाली सड़क पहाड़ी पर चढ़ कर जगल मे खो गयी थी ।

मेरी ओर से शिकायत नही थी कोई ।

यह संतोष आदमी के व्यक्तित्व को चकनाचूर कर देता है। रिबका के साथ संतोष का एक अलग रोल रहा है। व्यक्ति के अन्तर्मन का संतोष उस कल्चर की उपज है जिसमें वह पैदा हुआ है।

कल्चर और बरसात भी परस्पर सम्बंधित हैं क्या ?

भूगोल कल्चर को प्रभावित करता है। वर्षा का अहसास मैं अपने अंदर तक कर रहा था पर भीग नहीं रहा था। जहाँ तक दृष्टि जाती है कमरा ही दिखायी पड़ता है और मेज़ पर पड़ी हुई ढेर सारी मुँह बिराती चिट्ठियाँ जिनके जवाब नहीं लिखे गये हैं।

सोचता हूँ हर चिट्ठी का जवाब समय से दिया करूँ पर नहीं हो पाता है। कभी कभी तो भेजने वाले की तीन-तीन चिट्ठियाँ आ जाती हैं पर जवाब एक का भी नहीं जाता है। अगली चिट्ठी में आने वाली गालियों की प्रतीक्षा करता हूँ।

एक ही चिट्ठी को लिख कर फाड़ देता हूँ, फिर लिखता हूँ, फिर पढ़ता हूँ। बिल्कुल पागलों जैसी प्रक्रिया है। सोचता हूँ दोस्तों की चिट्ठियों की कोई अहमियत नहीं होती। अगर नहीं होती तो लिखते ही क्यों हैं। हर विचार की अपनी अलग स्थिति होती है। किसी न किसी सन्दर्भ में वह विचार महत्वपूर्ण होगा।

चिट्ठियों का ढेर चारो ओर से मुझे घेरता है। मैं दबता हूँ, निकलने की कोशिश जारी रहती है, निकल नहीं पाता हूँ। उलाहनों की पर्तें मन पर जमती हैं। कहाँ तो सारे सम्बंध टूट से गये थे पर अब स्थिति ही बदल गयी है। मैं नहीं बदला हूँ। मेरी परिस्थितियाँ बदल गयी है। यह सब व्यर्थ है। कुछ नहीं बदला है। सब पुराना जैसा है। मेरा भ्रम ही मुझे घेरे है।

अभी पानी बन्द नहीं हुआ था।

कमरे के बाहर तेज़ वर्षा हो रही थी। अन्दर रहना भी मेरे लिए मुश्किल था बाहर जाने की तो बात ही नहीं उठती थी। जिसने अपने ख़त का जवाब लम्बा माँगा था उसे मैंने ढाई लाइन लिखी थी, या नहीं लिखी थी, ठीक से याद नहीं। जिसके पत्र में उत्तर देने के लिए कोई

बात नही थी उसे दो-चार आखर तो जरूर लिखा था। उस समय न तो बाहर निकल सकता था और न अन्दर रह सकता था।

उस दिन की बात याद है।

तमाम पिछली चिट्ठियो के कारण अपने मन का तिलमिलाना भी याद है। निश्चय कर लिया था—'व्यर्थ परेशान होने की आवश्यकता नही'। बूँदे कैसे-कैसे तो गिर कर टूटती थी। हम देख रहे थे, जान रहे थे। परेशान होने का भी अपना एक मजा होता है। क्या सभी लोग ऐसे ही परेशान होते है? क्या परेशानी का एक ही रूप होता है!! सगी-साथी ज्यादा है नही पर जितने है उतने है, मै उन्ही के बारे में कह रहा था आप अन्यथा न समझे।

तेज बरसात होने से गलियो मे पानी भर गया था। पार्क मे गुलाब के फूलो के अन्दर पानी की बूँदे झलमला रही थी। उनका झुकाव अच्छा लगता था। कॉटो पर कोई असर नही था। वे धुल-धुल कर और साफ हो गये थे। चुभने के साथ झुकाव का कोई मतलब नही होता, केवल टूटना याद आता है। सडक पर इक्के-दुक्के लोग निकलते थे या फिर बडे लोगो के नौकर सामान लाने के लिए बाहर जाते दिखायी देते थे।

आसपास के मकानो की खिडकियॉ बद थी। कभी-कभी बरसात का स्वाद लेने के लिए किसी-किसी खिडकी का मुँह थोडा सा खुल कर बन्द हो जाता था। खोलने वाला हाथ नही दीखता था पर बूदो की बनती बिगडती धार से घिरा हुआ झलमलाता चेहरा दीख जाता था।

मुझे बरसात देखने का शौक है।

अच्छी लगती है पर उसकी मार नही झेल पाता हूँ। यह मेरी कमजोरी है फिर भी मन कहता है कि बरसात देखूँ और देखता ही रहूँ, बीच मे कोई बाधा न पडे। पर ऐसा नही हो पाता। न हो, यह भी सहन करूँगा।

मेरे कमरे मे चारो ओर अँधेरा था।

इस घनीभूत अँधेरे से मै अन्दर ही अन्दर परेशान था पर अपने वश

में कुछ भी तो नहीं था। प्रकृति से कौन लड़े । अपने अन्तर में अनेक लड़ाइयाँ झेलकर भी मैं उस स्थिति से डरता था। मेरा अकेलापन अँधेरे को और चटख़ कर रहा था। चाहता तो रोशनी कर लेता पर ज़रूरत नहीं समझी। वह अँधेरा ही जैसे अच्छा लग रहा था।

□ □

लैम्प जला कर रख दी।

धर्मराज को पुकारा तक नही। कमरे का एक कोना प्रकाश से हँस उठा। लैम्प का मुँह नीचे की ओर कर दिया। ड्राअर से अलबम निकाला और पढ़ने लगा। यह अलबम रिबका ने दिया था। चित्र तो इसमें कम थे पर पढ़ने का मैटर ज्यादा था। यों कहिए कि अलबम में ही डायरी थी। जब से इसे लाया था पढ़ने का मौका ही नहीं मिला। उलट-पुलट कर रेखाचित्र देख लिए थे। लिखने पढ़ने का मूड हमेशा नहीं हुआ करता। इसलिए चिट्ठियों का जवाब जल्दी नहीं दे पाता हूँ। लोग समझते हैं मैं घमण्डी हूँ। संभव है, बरसात के कारण मन कुछ हल्का हो गया हो। जिस दिन यह अलबम मुझे मिला था, उसे लेकर मैं चला आया था। ड्राअर में चुपचाप रख दिया था। चिट्ठियों के बारे में भी मैं ऐसे ही करता हूँ। तुरन्त नहीं पढ़ता हूँ। कभी-कभी ठीक इसका उलटा होता है। तुरंत पढ़ने बैठ जाता हूँ, पता नहीं क्या-क्या सोचता हूँ, नाराज़ होता हूँ, खुश होता हूँ।

घर लौट रहा था।

मुझे ध्यान था कि रिबका का दिया हुआ अलबम मेरे पास है। पर घर पहुँचने पर उसे पढ़ने का मन नहीं हुआ। और नहीं हुआ तो नहीं ही हुआ।

साधारण सा अलबम।

कोई सज्जा नहीं, चमक-दमक नहीं। बाहर से लगता ही नहीं था कि उसमें कोई विशेष बात लिखी होगी। डायरी की तरह उसमें दिन और तारीखें नहीं थीं। अलबम में इसकी कोई जरूरत भी नहीं थी। अन्दर एक

कोने में अंग्रेजी में 'रिबका' लिखा था साथ में कोई पता-ठिकाना नहीं था। अक्षरों की बनावट से नारी-आकृति का आभास होता था। सभी की मुद्राएँ एक दूसरे की ओर उन्मुख थीं। लिखने की शैली ऐसी थी जैसे स्वाभाविक रूप से यह बनाया गया हो। अलबम में जहाँ कुछ भी लिखा था वहाँ समय भी लिखा था पर साथ में तारीखें थीं नहीं।

आज मैं यह सब कुछ पढ़कर उठूँगा, सोच लिया था।

जो पेज मेरे सामने खुला था उसके टॉप राइट में लिखा था—रात दो बजे'। मैं आगे बढता गया—'इस वक्त मैं अकेली हूँ, आसपास पडी हुई पेंटिंग मुझे चिढ़ा रही है। इनको क्या करूँ!! क्या इनसे अपनी दीवाल सजा लूँ। इनसे दीवाल की मजबूती नही खरीदी जा सकती। ये मेरे कपड़े!! गाउन, ब्रेजियर, अण्डर जी, ब्रीफ सब कुछ सजावट के लिये है। अन्दर से कितनी कमजोर हूँ मैं। तो क्या इन्हें अपने ऊपर से हटा दूँ।

अच्छा लो हटा दिया।

अब मुझे खुश होना चाहिए। यहाँ मुझे देखने वाला कोई नहीं है। यह मेरा आदिम रूप है। मेरे अच्छा लगने से कुछ नहीं होगा, समाज, समाज, समाज।

हाँ ठीक कहती हूँ मैं।

मेरा यह रूप समाज को अच्छा नहीं लगेगा। न लगे, मुझे समाज की परवाह नही है। उसके खयाल पुराने और पिछड़े हैं। व्यक्ति को यह सब अच्छा लगेगा। यहाँ पहुँचकर वह अपने को धन्य समझेगा। कितना फ़र्क है व्यक्ति और समाज में। अकेले की बात ही कुछ और होती है।

अपने बिस्तर पर हिलना डुलना ऐसा लगता है जैसे किसी कैबरे डांस में फ्लोर शो दे रही हूँ। और, और...।

वहाँ भी समाज नहीं होता। यह मेरी भूल है। वहाँ समाज के प्रतिनिधि होते है—नेता, रईस, संपादक, व्यापारी और ऐसे ही अनेक लोग। उन्हीं के सामने सारा नाच होता है। कला का प्रदर्शन है, मुझे कुछ न कहना चाहिए। ये प्रतिनिधि ही तो लीना के शरीर की तारीफ करते हैं, उसके

अंगों के झुकाव की खूबसूरती पर आहें भरते है। अंग्रेजों के जाने के बाद उन्हीं के बचे-खूचे अवशेष हैं ये। खूब समझदार लोग हैं, आर्ट की तारीफ़ करना चाहते है। पैसे की कमी इन्हें है नहीं, फिर कमी ही किस की।

कुछ ही नाम है जो कैबरे के आर्ट को जिन्दा बनाए हैं। नहीं, नहीं यह बात नही है। इस आर्ट को रोजी और रोटी का साधन कहना चाहिए।

सुजाता, थी न एक कैबरे डांसर।

प्रेम करने चली थी मर्द से। क्या जरूरत थी ऐसी ! अन्त में हार मान कर सब भूल जाना पड़ा। बातें और स्थितियाँ उसकी पकड़ से बाहर चली गयी थीं। चली गयी होंगी, व्यक्तिगत बात है किसी को क्या करना है। अब कहती है कैबरे मे—'मेरा जिस्म मन्दिर है जो पूजा के लायक़ है।'

ठीक ही कहती है।

पान-फूल पाती रहती है। मेरे और उसके जिस्म में कोई फ़र्क है क्या !! वह दस पाँच के बीच में इस तरह होती है, मैं ककेले में हूँ। उसके क्षण दूसरे के होते हैं, मेरे अपने हैं। अपने रहेंगे भी। इन्हें मैं किसी भी कीमत पर दूसरे का नहीं बनने दूँगी। क्या-क्या तो सोचती जा रही हूँ मैं।

मैं भी गयी थी कैबरे।

इसलिए नहीं कि आर्ट का शौक था। कुछ अपना खो गया था उसी को खोजने गयी थी। थोड़ी सी ब्लैक स्कॉच ली थी। पिछली शाम को अकेले में मन नहीं माना इसलिए घर पर भी...। कैबरे का रंग़ देखकर मन सिहर उठा था। सारा आर्ट और नंगा नाच पैसे के लिए हो रहा था। उस समय पैसा मेरे पास भी था। मैं लौट आयी थी।

सुजाता ने अपने से प्रेम क्यों नहीं किया। अपने से कहीं प्रेम किया जाता है!! जो व्यक्ति अपने से प्रेम नहीं करता उसका अपना कोई व्यक्तित्व नहीं होता। सुजाता का करेक्टर लेस्बियन नहीं था, मैं

नहीं जानती। खैर... वही नहीं जिस्म का खेल खेलने वाली तमाम मेच्योर्ड लड़कियाँ कैबरे से खुश है—पैसा जो मिलता है। यह खुशी बनावटी भी हो सकती है। कलकत्ते में कैबरे डांस के लिए सरकार लाइसेंस देती है। लड़की को इस बात की गारण्टी और सर्टीफिकेट देना होता है कि वह माइनर नहीं है। वयस्क के साथ सब कुछ जायज़ है। होगा...। पुलिस निर्णायक के रूप में देखती है कि डांस का रूप अनैतिक तो नहीं है, पुअर पुलिस...। ग्रीन सिगनल मिलने के बाद फिर सीमा कौन खोजता है, क्यों खोजे !! मैंने कुछ ब्लैक लिस्टेड डांसर्स के नाम सुने हैं। ये फ्लोर न्यूड के रूप में स्किन कलर्ड पैण्टी पहन कर, या उत्तेजित करने वाले एक्शन देकर पैसे को खुश करती हैं। अपने आदिम रूप में अब नहीं रहा जाता मुझसे। यह अपना घर है, किसी कामुक का बंगला नहीं।

मैंने अपना गाऊन पहन लिया है।

कैबरे भी हमारे आर्ट का एक हिस्सा है। हिस्सा...केवल हिस्सा। यह अलबम में क्या लिखा जा रहा है। यही मेरी डायरी है।

पहले अपनी बात पूरी कर लूँ।

कैबरे में काम करने वाली लड़कियाँ असाधारण नहीं होतीं। कला-वला के प्रति उनका कोई प्रेम भी नहीं होता। पैसा और जिज्ञासा उन्हें वहाँ ले जाते हैं। कम समय में अधिक पैसा मिलता है। आर्ट की रक्षा का तो बहाना है। दर्शकों को अगर ऐक्शन पसन्द आ गया तो पैसा ही पैसा है। पब्लिसिटी अपने आप होती रहती है। इस बिजनेस में लड़कियों की कोइ लागत नहीं लगती। मालिक सब कुछ करता है।

यह सारा वातावरण याद करके मैं अकेले में काँप उठती हूँ। लगता है मेरी चारपाई हिल रही है। मैं टूट रही हूँ। समय ज्यादा हो गया है। मैं अपने को चुकी चुकी सी फील कर रही हूँ। कोई बात नहीं।

□ □

अगले पेज पर दो वक्र रेखाएँ एक दूसरे से लिपटती-छोड़ती दाहिनी

ओर को चली गयी हैं। नीचे का हिस्सा खाली है। मैंने पन्ना पलट दिया है—

'सबेरे का छः बजा है।

सोकर देर से उठी हूँ। आज सबसे पहले चिट्ठियों का जवाब देना है। एक चिट्ठी का जवाब तो मैं सालों से दे रही हूँ। कोई दिन ऐसा नहीं जाता कि मैं वह चिट्ठी न लिखूँ पर पूरी कभी नहीं होती। वह रात-दिन के आने-जाने जैसी है। न तो मेरा लिखना बन्द होता है और न उसका अधूरा रहना। लेटर फाड़ना मुझे स्वयं अच्छा नहीं लगता। न लगे अच्छा पर ऐसा मुझे करना पड़ेगा। पर्सनल पत्र है, मैं चाहे जो करूँ। अपने अहं को संतोष दे लेती हूँ और क्या चाहिए !! अब तो आदत बन गयी है। वह लेटर आज भी नहीं लिखा जाएगा। उस पर्सनल चीज़ की कोई सोशल वैल्यू है क्या ?

कई बार ऐसा हुआ है कि लिखना बन्द कर जी भर कर रोयी हूँ। यही ऐसी दवा है जो मुझे हर मर्ज़ के लिए आसानी से मिल जाती है। दूसरों का रोना अपनी पेंसिल से पकड़ती हूँ। अपने सम्बंध में मत पूछिए !!

मेरे मन में ऐसी कोई बात नहीं है जिसके कारण मैं ख़त को पूरा करना नहीं चाहती। चाहे हुए काम हमेशा तो पूरे हो नहीं पाते। एक दिन तो ग़ालिब की दो पंक्तियों से ख़त शुरू किया—

हमने माना, कि तग़ाफ़ुल न करोगे, लेकिन
ख़ाक हो जायेंगे हम, तुमको ख़बर होने तक।

और कुछ नहीं लिखा। यह भी कोई ख़त हुआ। कोई देखे तो क्या कहे। ऐसी बात नहीं है। दो लाइनें भी काफी थीं, पर इन्हें भी तो नहीं भेज सकी। कहाँ से याद आ गयीं थीं ये। जिसके नाम यह ख़त लिखा था उसने मेरे नाम गिने चुने ही लिखे थे। उसकी एक एक लाइन मुझे याद है और शायद कफ़न ओढ़ने तक याद बनी रहे। याद अभी तक ताज़ा है। उसके बासी होने का सवाल ही नहीं पैदा होता। मैं नहीं लिख पाती हूँ, इसका मतलब यह नहीं मैं ख़त का इन्तजार नहीं

करती हूँ। जो नशा अपने इन्तज़ार का होता है उसकी बात ही अलग है। दूसरों की हालत कहाँ महसूस कर पाते हैं हम !!

बहाना कभी-कभी बड़ा सहारा देता है।

अपने से बहाना करते-करते स्वयं एक बहाना हो गयी हूँ। इसी तरह सारी उम्र गुजर जाएगी। ग़ालिब ठीक ही कहते है कि तुमको ख़बर होने तक हम ख़ाक हो जाएँगे। यह तो ख़त लिखने का समय था पर क्या उलूल जुलूल लिख रही हूँ समझ में नहीं आता।

और अब तो अपना एक रास्ता बन गया है। इस रास्ते को मैंने नहीं बनाया। यह मजबूरी में बना है। ऐसे रास्तों पर चलना आसान नहीं होता। पर्सनैलिटी बँट जाती है। बँटा हुआ व्यक्तित्व लेकर ज़िन्दा रहना उतना आसान नहीं होता जितना कि लोग समझते हैं। इकहरा रहना आदमी और औरत के लिए असंभव है। दोहरा, तिहरा होना पड़ता है। सामाजिकता भी इस काम में मदद पहुँचाती है।

हमारे रास्ते का उद्देश्य रुक जाना नहीं है। जहाँ रास्ता खत्म होता है वहाँ तक पहुँचना ही चाहिए हमें। एक शायर ने तो कहा है कि मंजिल मिल जाने पर हम अपना रास्ता बढ़ा देते हैं। हम रुकें क्यों। हमें तो चलते जाना है, चलते जाना है।

जो गिने चुने पत्र इधर-उधर करके लिखे हैं मैंने उनका मैटर अब याद नहीं है। यहाँ उन बातों को याद करके लिखने से अच्छा था पत्र ही लिखती।

☐ ☐

ग्यारह बजे रात।

औरत…बड़ा कमीना नाम है। एक नाम उन्हीं में और है शर्ली। क्या मतलब होता है इसका। अब इसका कोई मतलब नहीं होता। सारा मतलब रिबका में आकर सिमट गया है। शर्ली को अब मैं भूल गयी हूँ। उसे जानने वाला केवल एक जिन्दा होगा। वही जिसके लिए ख़त लिखती नहीं, फाड़ती हूँ मैं।

मैं औरत हूँ इसलिए उससे परिचित हूँ। उसकी हरकतों को जानती हूँ। रोना, बिलबिलाना, प्रेम की भीख माँगना, दासता को अपना शृंगार समझना यही तो उसका धन्धा है। यदि यह सब न हुआ तो फैशन परेड करना, शरीर के साथ जानवरों का सा व्यवहार करना, और आगे बढ़े तो जिस्म बेंचना, यह भी कोई जिन्दगी है पर क्या किया जाय। जिन्दगी के लिए मजबूरी का मतलब क्या होता है !!

और भी।

सभी औरतें आदमी के ज़िस्म को अपने अन्दर भर लेना चाहती हैं। मैं भी तो यही चाहती हूँ। अब, अब का पता नहीं। अपनी बात क्यों लिखूँ ? यह सोचना ग़लत है। यही तो औरतों का मतलब है। अगर अपनी बात को वे जरूरत से ज़्यादा कन्फीडेंशल न बनाती तो हिन्दुस्तानी औरतों की दुनिया का नक्शा कुछ और होता। मन में बन्दरिया के मरे बच्चे की तरह हीन भावना को चिपकाए घूमेंगी, किसी से कहेंगी नहीं। घुट-घुट करके मरती रहेंगी। यह भी कोई ज़िन्दगी है। जिसे चाहेंगी उसे कुछ लिखेंगी तो फाड़ देंगी, भेजेंगी नहीं। बदनसीब, आनवाण्टेड, पुअर वूमन।

मैं अपने को गाली दे रही हूँ।

अलबम पर यह सब क्या लिख रही हूँ !! मन हलका हो रहा है। गाली परगेशन का काम करती है। मुझे तो अपने को ही भला बुरा कह लेने से बड़ी राहत मिलती है जिसके लिए मैं तरसती रहती हूँ।

बार-बार औरत का नाम लेना गुनाह लगता है। जिस दिन औरत की रचना हुई होगी वह भी क्या दिन रहा होगा। अभी तक तो मैंने यही पाया है कि आदमी के लिए हर औरत जवान होती है हमेशा, देवलोक की अप्सराओं की तरह। उस कल्पना के पीछे कौन सी मनोवृत्ति काम करती रहती है, साफ ज़ाहिर है। औरत भी तो अपने को किसी काल्पनिक अप्सरा से कम नही समझती। और यह समझ किस लिए ? केवल पुरुष वर्ग को अपनी ओर खींचने के लिए।

. होटलों की काल गर्ल्ज, काउण्टर पर बैठने वाली तमाम लड़कियाँ यूनिवर्सिटी और कॉलिज की मेच्योर्ड छात्राएँ और लेक्चरर्स, कैबरे में फ्लोर शो देने वाली परियाँ, नर्सें, आश्रमों की सोकाल्ड सेविकाएँ, गाँवों की अपढ़ अल्हड़ किशोरियां, पेशेवर तवायफें, सड़कों पर घूमने वाली बेपनाह पागल औरतें, बड़े-बड़े अफसरों की अतृप्त बीवियाँ, सेठों-साहूकारों की माल खायी गदरायी छोरियां, बॉस की बाँहों से पिसी हुई, या छटकी हुइ अभागी और खुशनसीब औरत···बड़ी लम्बी लिस्ट है।

इन लोगों ने एक जुट होकर कभी शिकायत नहीं की। ज़्यादा किया तो अकेले अकेले ज़माने को कोस लिया। क्या करें शिकायत!! दफ्तर, थाना, यूनिवर्सिटी, कचेहरी, ट्रेन, बस, हवाई जहाज, अस्पताल, कारखाना दवाखाना, दूकान, खेत, खलिहान, टी हाउस, कहवाघर, सड़क, पार्क, घर, बाहर सभी जगह इनके जिस्म के भूखे बेईमान, ईमानदार बैठे हैं। इन्हीं का इन्तज़ार हो रहा है।

□ □

और मैं।

मैं काग़ज़ पर अपना दिमाग़ उतार रही हूँ। बीज कहीं और का है मैं तो मीडियम हूँ, केवल मीडियम।

भूत और भविष्य से पिसता हुआ मीडियम आज का वर्तमान। सोचती हूँ जब तक दिमाग़ की सारी बातों को नहीं लिखूँगी, दिल पर भार बना रहेगा। कल रात!! याद करते जी डरता है। समझ में नहीं आ रहा है कि उसे क्या कहूँ। मैं नहीं चाहती थी कि उस वक्त सालों पुरानी कोई बात मन में उतरे। कोशिश भी की पर सफल नहीं हुई। जिसे अभी तक किसी ने कहा नहीं है, कोई कहना भी नहीं चाहेगा, वह सब आज कहूँगी। मैंने भी पहले कभी नहीं कहा था। मन में कई बार आया पर कह नहीं सकी। मुझे विश्वास नहीं था कि मेरी लाश बाद में बोलने लगेगी। गर्म साँसों के नार्मल होने का विश्वास नहीं था। मेरा जिस्म अपने काबू में नहीं था।

राजनीति पर तो विश्वास एकदम नहीं था पर पोलटिशियन को पसन्द करती थी। इसलिए नहीं कि वह कोई खूबसूरत आइटम है बल्कि इसलिए कि इंसानियत की आज़ादी के लिए इन्कलाब राजनीति ही लायी। उसके प्रति इज़्ज़त का यही कारण था। मौके की तलाश में थी। कोई मिलता तो जनता के दुख दर्दों पर बात करती, अवाम की तरक्की की बात पूछती। सब कुछ तो सामने है, फिर इस पूछताछ से क्या लाभ ? व्यक्ति में टैक्ट होना चाहिए। उसी टैक्ट के सहारे उसे सब मिल जायेगा। दूसरी जगह भटकने की कहीं कोई आवश्यकता ही नहीं पड़ेगी।

एक सजा सजाया कमरा।

सादगी कहीं नाम निशान को नहीं। रंगों का मिजाज़ काफी उभरा हुआ था। भड़कीले रंग, डूबते सूरज द्वारा बादलों पर बने रंग। सोफा, उसके सामने शीशे का सेण्टर टेबल। उस पर एक सुनहली वीणा रखी है मिनी साइज की। वहीं एक ऊबड़-खाबड़ आर्ट में बनी ऐश ट्रे भी पड़ी थी। चीजों के बेतरतीब रखे होने का एक अलग आर्ट होता है। वैसा ही वहाँ दीख रहा था।

वहाँ मुझे बुलाया गया था। मनसुखलाल साहब की माँ के बुढ़ापे का समय था। उनका स्केच बनना था। लाल साहब का कहना है कि केमरा निर्जीव चित्र देता है। आर्टिस्ट की अँगुलियाँ रेखाओं में जान भर देती हैं। वह काम तो हुआ जैसे-तैसे पर किसी नेता को पास से देखने का मौक़ा मिला। अब्सर्ड, रबिश।······। उस घटना के बाद भी मैं कैसे ज़िन्दा हूँ !!

स्केच ले रही थी मैं।

मैंने बतला दिया था कि कर्मशियल आर्ट से मेरा रिश्ता नहीं है, पर वह नहीं माना। आज यहीं खत्म करती हूँ। मेरे मन में पुरानी बात लिखने की इच्छा क्यों हुई ? जब हम अतीत जी नहीं सकते तो उसकी बात ही क्यों करते हैं। अतीत की ही नींव पर वर्तमान खड़ा होता है। इस समय कुछ भी नहीं लिखा जा रहा है।

□ □

सबेरे बिस्तर पर।

आज और कोई काम नही करूँगी। सब से पहले कल वाली बात पूरी करूँगी। उस वक्त मैंने महसूस किया था—मैं एक लाश हूँ। मेरे अन्दर एक मरा हुआ आदमी बेखटके घुस गया है। वह काँप रहा है। उसके टखने बज रहे है। चेहरा मुर्दाघाट की खोपड़ी बना हुआ है, जिसके दाँत बाहर निकले है। मै नुची जा रही हूँ। बोल नही रही हूँ, मैं लाश जो हूँ। किसी घायल शेर की दहाड़-चिघाड, जिसका कोई अर्थ नही होता, उदास जगल मे तैरती हुई शिथिल हो गयी है। आसमान की नीलिमा मे चटख धूमकेतु की एक सलाख जड़ गयी है। सागर की गहराई मे कोई पनडुब्बी थक कर हताश हो गयी है। नगी आवाजों की भीड के कधो से फिसल कर एक शरीर अचेत हो गया है। प्याली का रंग फीका पड़ गया है। ब्रश का गीलापन गायब है। उंगलियों का नाप लेना बेकार है। मै थी केवल एक लाश।

मै तो आखिरी वक्त का स्केच बनाने गयी थी। पुरानी इमेज दिमाग में साफ हुई थी। सरकारी इमारतो पर मेरा आर्ट, गैलरियों में मेरी कला की धूमधाम। मेरी पर्सनैलिटी को उजागर करने वाले पैम्फ-लेट, नेता के वायदे।

अपने पर तरस आया, दूसरे को क्या कहती!! योरप के कितने कलाकारों को आत्म हत्या कर लेनी पड़ी। वह अपने को इस बहुरंगी दुनिया के साथ एडजस्ट क्यों नहीं कर लेता। उसकी दुनिया ही अलग होती है। मैं समस्याओ की बात नहीं करती। हो सकता है वे भी अलग ही होती हों। व्यक्तिगत होने पर भी तो वह आदमी की ही समस्या होगी। आत्महत्या! कितना घिनौना शब्द है पर ऊबे हुए लोग प्रसन्नता से इसे गले लगाते है, लगाते रहेंगे। मैं नाम की प्यास लिए कला का खप्पर खोले भीख माँग रही हूँ। हिन्दुस्तान के पुराने कलाकार अजन्ता एलौरा में दिखायी देते है। किसी आर्टिस्ट के नाम का पता

नहीं, यह भी एक रास्ता है। मैं इसे नहीं अख्तियार कर सकती। एकांत-साधना का युग चला गया। मैं आज की, बिल्कुल अभी की बात करती हूँ।

उस पुराने युग वाले बूढ़े चेहरे का स्केच बनाना कोई आसान काम तो था नहीं। उम्र सौ के आसपास थी। रियली इट वाज द एण्ड ऑव हर लाइफ। जब तक चेहरे की एक झुर्री पढ़ती थी, दूसरी उभर आती थी। तालाब था उसका चेहरा। लहरों की तरह झुर्रियां उभरती थीं। और मिट जाती थीं। प्राब्लम। चाहती थी कि उसके जीवन के लम्बे रास्ते को स्केच के ऊपर लटका दूँ पर मन में उसी वक्त दूसरी बात आ जाती थी।

असलियत यह थी कि मैं अपने अंदर ही नहीं थी। जैसे संकेत मिलते थे वैसे आगे बढ़ती थी। एक वाक्य सुना था मैंने—'वेल मिस रिबका स्टाप। आज यह काम खत्म नहीं होगा। मैं वहाँ से चली आना चाहती थी पर ऐसा नहीं हो पाया। नाम, पैसा और मेरा कलाकार, संघर्ष की सीमाओं में ये सभी चिपके थे।

अहं मरने के पहले आदमी मर जाता है और औरत भी जिन्दा नहीं रहती। जो कुछ मैंने महसूस किया था वह घटा तो था नहीं। नैतिकता की परिभाषा करना कितना कठिन है। भूगोल भी नैतिकता गढ़ता है और यह आदमी नैतिकता के ऊपर किताबें लिखता है।

बिना इजाज़त के मैं नहीं लौटूँगी।

अपने मन की परवानगी अच्छी होती है पर यह भी मौके की बात है। नौकर ने कहा कि मुझे पास वाले कमरे में कॉफी के लिए बुलाया गया है। नेता की माता जी अन्दर चली गयीं। उनके साथ उनकी झुर्रियाँ भी गयीं।

कॉफी के लिए मेरा इन्तजार हो रहा था। कमरे में नेता साहब थे बस। कॉफी सिप करते हुए मुझे लगा कि यह छोटा कमरा, जिसमें आर्ट के नाम पर उदास, नंगी, बेहया, निर्लज्ज, मजबूर और बदनसीब औरतों की मूर्तियां हैं, मेरे लिए ऐसा बिस्तर है जिसमें अनगिनत खटमल

पाले गये हैं। अंधेरे में सब मेरी ओर दौड़ रहे हैं और बिना बिलम्ब के सब मुझे चींथ डालेंगे। एक भारी जमघट का सामना था—खून चूसने वालों का लम्बा काफ़ला।

'यह जगह कैसी लगी आपको' ?

'ब्युटीफुल'।

'मैं आप के लिए, मेरा मतलब आपके आर्ट के लिए बहुत करना चाहता हूँ। कुछ समय बाद आप तरक्की की चोटी पर होंगी।'

'पर आप के सामने तो देश का सवाल है, नेता हैं न आप !! सिर्फ एक को आगे बढ़ाना ठीक नही है। मेरे सामने भूख का भी सवाल नहीं है। तरक्की उनकी होनी चाहए जिन्हें इस महँगाई में पेट भर खाना भी मयस्सर नहीं है।'

'यह सब कागज़ी बातें हैं। एक दिन में मैं इस सड़े गले देश को कैसे सुधार पाऊँगा !! कितने दिनों का चिपका मैल है, एक दिन में कैसे धो सकूँगा इसलिए जो अपने आप हो जाता है वही ठीक है। यह कहाँ का न्याय है कि सरकारी मशीन के सारे लोग मौज करें और मैं अकेला आदर्श की चक्की मे पिसता रहूँ। कोई भी ऐसा नहीं चाहेगा'—कहता हुआ वह मेरे करीब आ गया। कॉफी का प्याला हाथ में था उसे सेण्टर टेबल पर रख दिया। कॉफी नहीं थी उसमें। वह बिल्कुल खाली था। मेरे दिमाग में थी अनिश्चित भय से भविष्य की एक डरावनी तस्वीर। अनेक खण्डित मूर्तियाँ आपस में टकराती थी और टूट कर गिर पड़ती थीं। आँखें बन्द कर लेने का मन हुआ। कर नहीं पायी। उसकी हरकत एकाएक नहीं हो रही थी। आगे का नक्शा जैसे बहुत साफ हो। लगा कि जैसे उसके मुँह पर मैंने कई तमाचे जड़ दिए हैं। उसका चेहरा दूसरी ओर हो गया है। मस्तिष्क में झनझनाहट थी। उसे सम्हाल पाना कितना कठिन था। कास्मापालिटन में जब इससे मेरा परिचय हुआ था, इसका वहाँ दूसरा ही रूप था। अब कितना बदला बदला लग रहा है। कुछ कहने के बजाय चुप ही रही मैं।

वह कुछ बुदबुदाया। झील के दिल में पाये जाने वाले कमल के

लालच में वह किनारे के कीचड़ में फँसा जा रहा था। अनिच्छा का कीचड़, गुस्ताख़ इरादों के सिवार से लथपथ।

कॉफी का प्याला मैंने भी रख दिया। मेज़ के शीशे के नीचे पत्थर की खण्डित नारी मूर्ति की तस्वीर पर आँख गड़ा दी। नाभि के ऊपर का हिस्सा ग़ायब था। जाँघों की गोलाई और उनके चिपटे नेचर के मेल को छेनी और हथौड़ी से मूर्तिकार ने कितना सँवारा होगा। दरमियानी की एक रेखा दोनों जाँघों को अलग कर रही थी—सिर्फ एक रेखा।

छेनी और हथौड़ी। मेरी अपनी जाँघें। ऊँचाई से गिर कर किसी झरने ने ज़मीन की गहरी गोद में सिर पटक दिया था। पिंक कलर के संगमरमर पर जैसे दूधिया नदी की धार गिर पड़ी हो। रक्तिम वर्णी नाग जैसे मखमली गद्दे पर सरक गया हो। गुलाब के गुच्छे में जैसे कोई बामी मछली पूँछ मार गयी हो।

एक सरप्राइज और टेरर।

वह कमरा एक रेगिस्तान था। उसमें कहीं भी ओसिस जैसी कोई चीज़ नहीं दीखती थी। एक घुटन भरी प्यास से मैं घिर गयी थी। चारों कोनों से घृणा के ज़हरीले नाग फन फैलाए मेरी ओर बढ़े आ रहे थे। आगे पीछे की दीवारें एक दूसरे से मिल रही थीं। बीच में मैं पीसी जा रही थी। चीख और फिर चीखों की एक लम्बी क़तार। मैं एक शैतान के पास बैठी थी। मेरे अन्दर का इंसान उस वक्त जागता हुआ भी क्या करता !! हजारों चेहरों में बदला हुआ एक कमीना चेहरा। मैं तस्वीर पर झुकी थी एक बुत की तरह।

एक बार आँखों का रुख बदला तो देखा कि दरवाजा अन्दर से बन्द था। फिर सिर नीचे कर लिया। ज़लील करने वाले वाक्यों का घेरा—'तुम्हारी कला तो बोलती है, तुम चुप क्यों हो ?'

मन में आया कि कह दूँ कि तुम्हारे टुच्चेपन पर चुप हूँ। मुझसे चुप रहने का सबब पूछते हो। अपनी बदमाश हरक़तों से पूछो, कमीना कारनामों पर नज़र डालो, अपनी बीवी के मासूम चेहरे पर लिखी

तड़पती प्यास से पूछो । और अगर तुम्हें अपनी कुर्सी का खयाल हो तो कण्ट्री की तबाही से पूछो । उस जनता से भी पूछ सकते हो जिसके सामने समस्याएँ तो हैं पर सुनने वालों के गिरोह का कहीं पता नहीं है। मुर्दा तस्वीरों के जंगल के जानवर तुम इंसानियत के बगीचे में कदम रखने लायक़ नहीं हो ।

मैं पीपल के उस दरख्त के समान थी जो वृक्षहीन शहरी इलाके में अपनी पत्तियों के माध्यम से अकेला सिर धुनता रहता है, उसका साथ देने वाला वहाँ दूसरा कोई नहीं होता ।

वह मुझसे सँट कर बैठ गया । बोला फिर कुछ भी नहीं । मेरी दाहिनी ओर था वह । उसका चेहरा ऐसा लग रहा था जैसे बल्ब फ्यूज़ हो गया हो । अन्दर तार तो मौजूद थे पर रोशनी नहीं दे सकते थे । केवल तार, निस्सार, व्यर्थ करेण्ट की गुँजाइश वहाँ नहीं थी ।

मैंने निश्चय किया था कि यदि वह आगे बढ़ा तो बैड कण्डक्टर वस्तु की तरह उसे तमाम वातावरण में फैलने नहीं दूँगी । बड़े मंसूबे बाँध लिए थे मैंने । क्या ये सारे पूरे हो सकते थे ।

उसका बायाँ हाथ मेरी कमर को घेर चुका था । मैं चुप थी । वह भी चुप था । हाथ की हरकतें भोंड़ी थीं । उनमें कोई मज़ा नहीं था । दाहिने हाथ से उसने मेरी ठोड़ी पकड़ कर थोड़ा ऊपर किया पर उसका कोई नतीजा नहीं निकला । वह इस कोशिश में था कि मेरे सामने के उभार को दबाता हुआ अपनी बाहों में जकड़ ले और मैं मजबूत घेरे में बँध जाऊँ । यह घेरा हाथों का, मर्दाना ताकत का, उदासी का, घृणा का और मेरी मजबूरियों का । जीवन का रास्ता कितना ऊबड़ खाबड़ होता है। क्या सभी का जीवन ऐसा होता है। नेता के बंगले के गेट पर कुत्ता पहरा दे रहा होगा । मनुष्यता सुरक्षित रहना चाहती है ।

इन बातों के लिखने का प्रयोजन मुझे सवालों से घेर लेता है। कितना अब्सर्ड है यह सब कुछ । कोई क्या कहेगा !! किसको किसकी परवाह है।

एक खरगोश कैक्टस के घेरे में फँस गया था। मकड़ी का जाला, एक के बाद दूसरा, तीसरा और तमाम। मेरे साथ ये हरकतें जानबूझ कर की गयी थीं। और मेरे ही साथ क्यों, जो दूसरों के प्रति घटित हुआ उसका तो मुझे कोई पता भी नहीं है।

मेरा मौन टूट कर बिखर गया।

मजबूरी काँप गयी। भय उत्तेजना में बदल गया। क्रोध अपनी बोली बोलने लगा। अपनी हिफाजत का सवाल था, अपनापन बचाने की बात थी। मुझे जैसे किसी खूँखार जानवर ने अपने तेज नाखूनों वाले पंजे में दबोच लिया था।

गुस्सा और चीख एक ओर थीं, दूसरी ओर थे जल्लादी दो हाथ, एक बेशरम चेहरा एवं खून से सनी हुई एक जोड़ा आँखें। अब मेरी शान्त हो जाने की स्थिति थी। आगे-पीछे कुछ भी न सूझता था। अनागत अनहोनी के प्रति सजग होने के बावजूद भी मैं असहाय थी।

मैं स्वयं अपने में कुछ नहीं थी।

मुझे कस कर पकड़ लिया गया जैसे शीशे के उभरे शंकु पर रस से भरी मुसम्मी दबा दी गयी हो। रेगिस्तान किसी नदी को पी रहा था। वह जल्दी-जल्दी सूख रही थी। किसी सरोवर का निर्मल पानी बड़े पाइपों द्वारा बाहर निकल रहा था। बची थी सूखी रेत, जिसके साथ हवा मनमानी करती थी।

वह बहुत जल्दी में था जैसे। खुद डरावना लगते हुए भी वह डरा-डरा सा था। मैं अपनी लाश का भविष्य विचार रही थी। यहीं बंगले से गायब कर दी जाएगी। पुलिस ले जाएगी। लॉन में दफना दिया जाएगा। ऐसी कितनी बेपनाह लाशें दफनाई गयी हैं। लाशों के साथ ताकत और हरकतों का हमें पता है। क्या सोचना है !! जब हम नहीं रहेंगे, लाश की चिन्ता क्यों, किस लिए ? यों ही सोच रही थी कोई खास बात नहीं। मैं जानबूझ कर लाश बनना भी नहीं चाहती थी। आगे लिखते हुए एक भय भर जाता है जिस्म में।

मैं जबरन एक सुसज्जित पलँग पर लिटाई गयी। मुँह बन्द किया

गया, क्योंकि चीखों का सिलसिला खतरा पैदा कर रहा था। पर खतरा था नहीं कोई। बँगले के गेट पर कुत्तों का पहरा था। कमरे की एक-एक ईट चुप थी। सन्नाटा जैसे सब कुछ जानता था। उससे कोई अन्तर नही पड़ता था।

मैं अपने चारों ओर जून के महीने की लू महसूस कर रही थी। आँधी के तेज झोंकों को फील करना उस वक्त कितना आसान था। अन्दर-बाहर मेरे लिए कोई अन्तर नहीं था। अन्तर होता भी तो मैं करती ही क्या !! वह मेरे जिस्म को चबा रहा था। उसके मटमैले दाँत !! घृणा होती है. लिखते हुए। मैं निढाल हो कर पड़ी थी। मेरे नरम ओठो मे उसके दाँत बार-बार चुभे जा रहे थे जैसे रस भरे टमाटर में कोई जंग लगा चाकू चुभो रहा हो। उसका भारी भरकम शरीर, जैसे किसी सूरजमुखी पर कोई गिद्ध बैठ गया हो। यह मेरे पतन की सीमा थी। जानवरों के देश मे मेरे आर्ट का स्वागत था।

□ □

मेरे साथ जो बेहयाई का खेल उसने खेला उसे भूलना अपने वश के बाहर है। अपने दोनों घुटनों से मेरे हाथों को दबाए था। मैं लगभग अचेत थी। अपने लिए मै मर गयी थी पर वह मुझे जिन्दा समझ कर छोड़ना नही चाहता था, माँस लोभी जानवर की तरह। वह अपने बँगले में जो था।

भेड़िए जैसी हरकतें। मेरे हाथों को समेटते हुए उसने कमर को कस कर पकड़ लिया। साँस लेना दूभर हो गया। घुटन मेरे गले में रुँध गयी थी। वह अपने जिस्म में मुझे भर लेना चाहता था या मेरे में अपने को रख देना चाहता था। मैंने एक प्राणघाती दर्द महसूस किया मुँह से 'हाय' की आवाज फूटी। उसे मेरे जिन्दा होने का दुबारा अहसास हुआ। गर्म सलाख पर गोश्त भुन रहा था। टप-टप करके कुछ बूँदें खून की···नहीं-नहीं एक रक्तधारा जिसमें मैं डूब

गयी थी ।

मेरे चारों ओर विवशता थी। कोई आधार नहीं था जिसे पकड़ कर पार होती। मर जाना कितना खूबसूरत होता होगा। लड़कियाँ ताकत पसन्द करती हैं। राक्षस की शिवेलरी किस काम की जो प्राण ले ले।

मेरी नाभि, ओठ, गला, बाँह, गाल और उरोजो पर दाँतों के निशान बनाकर वह भी जिन्दा नहीं दीखता था। मेरे जिस्म को रौंद कर, बूढ़े हाथों से मेरे यौवन को मसल कर, मेरी गोल मटोल जांघों को पीस कर वह कितना सन्तुष्ट हुआ होगा!! मेरी लाश के साथ उसका यह नाटक बहुत भद्दा था। मैंने करवट नहीं बदली, बदल भी नहीं सकती थी।

आँधी थम गयी थी। मुझे पानी की प्यास लग आयी थी। कब वह कमरे के बाहर गया। मुझे पता नहीं चला। कई एक घंटे के बाद वह कमरे में आया तो मेरी आँखें खुली थीं पर उठने की ताकत नहीं थी। उसने कहा—टैक्सी मँगा दूँ? मैंने कुछ कहा नहीं। कहने की स्थिति में भी नहीं थी।

अपने दरवाजे के सामने जब मैं टैक्सी का चार्ज दे रही थी तो ड्राइवर ने कहा था—'आज आप परेशान दीख रही हैं।' जरूर रहा होगा ऐसा।

□ □

इतना पढ़ लेने के बाद मैंने अलबम बन्द कर दिया। अब और क्या पढ़ना था। यह तो केवल रिबका की बातें थीं, अभी तो सारा देश पड़ा था। यह मैटर तो लिखा हुआ मिल गया, अनलिखे मैटर को कौन जानता-पूछता है।

मैंने इधर-उधर घूमने का प्रयास किया पर अलबम आँखों के सामने से हटता ही नहीं था। कोई दूसरा काम करने का मूड नहीं बना।

. औरत कौन सी छलना है !! या फिर छलना नही है। आदमी छलना क्यो नहीं है ? समाज के सारे सिद्धान्त आदमियों के रचे हुए है। अपना-अपना खयाल सभी को होता है। अक्सर देखने को मिलता है एक तूफान, एक बवण्डर, जहर घुला आसमान और जोंकों से नुचता औरत का शरीर। मैं कोई कहानी नही कह रहा हूँ और न आगे कहने की बात मन मे है। मन द्वारा चले हुए रास्ते को नाप रहा हूँ केवल। घोड़ा, गधा, हाथी आदमी के चढने के लिए होते है। औरत भी एक ऐसा जानवर है जो आदमी की सवारी के काम आता है। पर थोड़ा फ़र्क है दोनों मे और थोडी समानता भी है। जानवरों पर सवारी करने के लिए आदमी उन्हे छाँदता, बाँधता है, लगाम, नकेल लगाता है, पीठ पर कुछ रख लेता है जिससे घाव न हो, तकलीफ न हो। औरत के साथ ऐसा कुछ नही होता है।

यह सब बहुत कारुणिक है।

इस बात के खिलाफ औरतों द्वारा बगावत होनी चाहिए थी। माँ अपनी कुर्सी छोडती, बहन अपना पद त्यागती, पत्नी अपने अधिकार समेटती और प्रेयसी भी कुछ न कुछ करती ही। एक जमात होकर कुछ नही किया गया।

औरत भी सवारी बनना पसन्द करती है, जानवरों की तरह। पर यह उसके मन पर है। यह दूसरी बात है कि इस खेल का पहला हिस्सा आकर्षक लगे और दूसरा इतना मर्मान्तिक कि औरत चीख उठे।

जिज्ञासा बड़ी नाजुक होती है। इसका नतीजा है ज्ञान की प्राप्ति और अपूर्ति है कुण्ठा, आत्महत्या और सर्वनाश - मर्द और औरत सभी उस अन्तिम तक पहुँचना चाहते है जहाँ कुदरत उन्हें निढाल कर देती है। कर देती है तो कर देती है।

व्यक्तित्व का बँटना आसान है और कठिन भी है।

हर व्यक्तित्व स्वयं को काटना-बाँटना चाहता है। अध्यात्म की दुहाई एक प्रकार का पलायन है। जैसे हर मर्द अपनी ज़िन्दगी ढोता है वैसी ही स्थिति औरत की भी होती है। मुझे लगता है रिबका की

जिन्दगी बँटी हुई है, कई टुकडों में बॅटी हुई है। ऐसा क्यों है ? यह.भी कोई पूछने-तलाशने की बात है।

डी साद ने सोच-समझकर कहा था कि औरत से सम्बन्ध रखने वाले लोग प्रायः दो तरह के होते हैं। एक वे जो उससे प्रेम करते हैं और दूसरे जो औरत के साथ सोना चाहते हैं। दोनों का उद्देश्य एक जैसा है और वह है औरत के साथ हमबिस्तर होना। मनोविज्ञान का एक्सरे कितना सही होता है। आदि मानव से लेकर आज तक का नक्शा साफ है। संकेतों का आधार लेकर गुजारी गयी जिन्दगी भी कोई ज़िन्दगी है !

मेरा मन अपने लोकान्तर की रचना चाहता है।

सभी तो चाहते है ऐसा। सामने बूढे पिता की गहरी झुर्रियाँ और लाल आँखें है। रामचन्द्र धनुर्बाण लिए दीवाल से चिपके हैं। मनचले कृष्ण गोपियों के वस्त्र बटोर कर उन्हें नंगी छोड़ कदम्ब पर चढ गये है, गाँधी जी कल्याण धर्मी हथेली दिखा रहे है, आध्यात्मिकता का नाग पैरों से लिपट गया है, नैतिकता ने रोडक्लोज्ड का साइन बोर्ड टाँग दिया है ! लोगो ने मत्थों पर पोस्टर चिपका लिया है···'हम सदाचारी है, हमारे नैतिक मूल्य ऊँचे है, केवल एक बात छोड़ कर और सभी करने के लिए तैयार है हम। कितनी प्रबल और सबल है ये इच्छाएँ।

जीवन ड्रीम लैण्ड की रेशमी डोरियों से कसा है। धर्म, समाज, कानून और व्यवस्था की गाँठें कितनी सुदृढ़ है। हम सभ्य कहलाने वाले लोग पर्त पर पर्त चढ़ाए जा रहे है। समय भाग रहा है, हम पीछे हो गये है। अपने किए पर पर्दा डालने की चाह नयी नहीं है। मेरी जिज्ञासा रिबका के व्यक्तित्व पर स्थिर हो गयी है। अलबम यद्यपि पूरा नक्शा नहीं है पर उससे कुछ तो पता चलता ही है। पूरा पढ़ा भी नहीं है। अब नहीं पढ़ पाऊँगा। भारीपन महसूस कर रहा हूँ।

कई चेहरे मेरे सामने घूम रहे है।

कास्मापालिटन, लेक्चर हाल, पिक्चर हाउस। सबसे पहले कला जिसके साथ स्वार्थी कलाकारो ने बलात्कार किया है। कला की आड़

लेकर मन चाहे कामों के जंगल में घुस गये है लोग । रवीन्द्र की कला, प्रेमचन्द का आर्ट, वैन गाग का ब्रश, कामू की कलम, पुश्किन की स्याही, मायकोवस्की का काव्य, आक्टोवियो पॉज की चेतना में कला को अपने-अपने रास्ते पर चलाया गया है। किसी के लिए कला अवाम की तरक्की का साधन है, कोई उसका नेचर तवायफ का जैसा मानता है। कालिदास जब वर्षा की पहली बूँद को पार्वती की बरौनियों में थोड़ी देर के लिए अटका कर आगे का रास्ता खोजते हैं तो उन्हें कठोर पयोधरों का उभार ही दीखता है। कवि उन पयोधरों की प्रस्तरता पर बूँदों को चूर्णित कर देता है। यह मानव मन की स्वाभाविकता है। इसे चुनौती नहीं दी जा सकती। इतने से कवि का मन नहीं भरता। वह बूँदों को पार्वती के नाभि-गह्वर में स्थापित करके ही चैन की साँस लेता है।

प्रगतिवादियों को सारा आर्ट मशक्कत में दीखता है। नक्सलाइट की कला अण्डरग्राउण्ड है। रिबका की कला व्यक्तिगत है पर समाज से अलग नहीं है। हर कला पहले व्यक्तिगत ही होती है क्योंकि वह व्यक्ति की रचना है। समाज रचनाकार नहीं हो सकता।

मेरे चिन्तन का आसमान कई रंग के बादलों से घिर गया है। ये सारे रंग सूरज के हैं। वही रंगों का राजा हैं। चलने पर हेलिकाप्टर की स्पीड मुझे नहीं अच्छी लगती। यह चलने का वक्त नहीं है। यह तो तेज़ दौड़ने का समय है। आगे क्या होगा कौन जाने !

किसी ने बहुत सारे 'न' मेरे अन्दर भर दिए हैं। एक गहरी नदी के किनारे खड़े होकर एक लहर का दूसरी लहर से सिमटना देख रहा हूँ।

अक्षर बड़े भयानक लग रहे हैं।

मुझे उन्हीं से खतरा है। बाणों की तरह चुभते हैं ये। चुभने का कोई दर्शन नहीं होता। चुभन की प्रतिबद्धता पर इनका उजागर व्यक्तित्व जीता है।

आगे का रास्ता, अक्षरों की चुभन, रिबका का आर्ट और उनका अलबम और इन सब के साथ मैं, मेरा अहं।
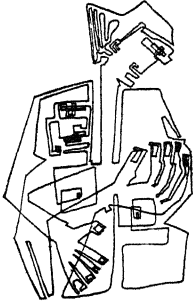
अलबम का मैटर पढ़ना मैंने एकाएक बन्द किया था। आगे काफी लम्बा था। पूरा पढने का इरादा तो था पर पढ़ा नही गया। दो नुक्तों को एक रेखा से जोड़ रहा था मैं, एक सरल रेखा।

त्रिभुज की एक भुजा टूट जाने पर वह अपनी परिभाषा से अलग हो जाता है पर सरल रेखा कट जाने पर सरल रेखा ही रहती है। जीवन की गूढ़ता टूट जाने पर बदल जाती है यह कहना ठीक नहीं है। टूट-टूट कर छोटे-छोटे रहस्य मन को मथते रहते है। कुछ हो नहीं पाता है। बस यू ही मन मरता रहता है। उलझनों के जाल से वह कभी उबरता ही नही।

समाज इन उलझनों के जाल में दो-चार फंदे और डाल देता है फिर मकड़ी फँसती रहती है। समाज पास खड़ा-खड़ा तमाशा देखता है। उलझन जितनी बढ़ती जाती है समाज के सिपाही उतना ही खुश होते हैं। इन परेशानियों के खिलाफ कुछ कहना उचित नहीं होता।

सभ्यता का तकाज़ा होता है। मेरे लिए रिबका का व्यक्तित्व उनके अलबम से और उलझ गया। कई ग्रंथियों के मिलने से एक मोटी ग्रंथि बन रही थी।

रिबका को अपना अलबम देना नहीं चाहिए था। पर्सनल चीज़ मुझे देकर उन्होंने अपने दिलेरी का परिचय दिया था। वैसे मैं उनका हमसफर भी नहीं था। एक समय वह था जब दफ्तर से चिपक कर खूब काम करता था और बासिज़्म से बोर होता था। आज जब छूँछा-छूँछा बाहर आया हूँ तो नए इन्द्रजाल में फँसा जा रहा हूँ। न तो पीछे लौट सकता हूँ और न आगे बढ़ पा रहा हूँ।

उस कनाट प्लेस का नक्शा कितना विद्रूप लगता है।

धरती की पीठ पर उगी बतौरियो जैसी इमारतें मेरी लघुता पर हँसती हैं। इन इमारतों की ईंटों को हाथ की मेहनत से जिसने सँवारा था, सीन-क़ाफ दुरुस्त किया था, उसे पूछने वाला कौन है। श्रम के उपहास वाली ये हवेलियाँ मेरे दिल में कभी नहीं उठेंगी। आँधी आने से ये हिलने वाली नहीं। सभी को बराबर करने के लिए आँधी क्रिएट करनी होगी।

कोई फायदा नहीं है ऊपर देखने से, यदि नीचे की ज़मीन समतल नहीं है। पहले पहल जब उस महानगर का एक ऐसा खाक़ा मेरे दिमाग मे खिंचा था जिसे हम टिकाऊ नहीं कहेंगे। जैसे जैसे साल बीतते गये मेरे मन पर बनी हुई तस्वीरों का रंग उड़ता गया। अब सब फीका फीका लगता है। अपर लेबल पर सेक्स और क्राइम के सिवा और है क्या? ऊपर का सारा वायुमण्डल नीचे के ज़हर के दर्द को पीने में असमर्थ है। वह चाहता भी नहीं। दूसरों का जहर उससे नहीं पिया जाता।

कुछ लोग सोचते हैं कि राजनीति के क्षेत्र के सारे इन्कलाब सेक्स द्वारा आते हैं। यह सब असाधारण ढंग से अचानक होता है। रात को सोते वक्त सब ठीक रहता है पर सबेरा होते ही सेक्स के डाइनामाइट से स्थितियाँ उड़ी हुई मिलती हैं। सरकारें बदल जाती हैं, गद्दियाँ छिन जाती हैं, मिल जाती हैं। शासन का रंग बदल जाता है। सड़कों की

चुलबुलाहट में टेरर भर जाता है। गलियाँ सन्नाटों से लिपट जाती हैं। आदमी हक्का-बक्का हो जाता है, क्योंकि इसकी पूर्व सूचना उसके पास नहीं रहती।

कारण का पता बाद में चलता है।

पहले तो सारा नगर लोहिया टोपियों से ढक जाता है। सुनायी पड़ती है गुहारें, मारो, बचाओ के स्वर। कुर्सियों पर बैठे लोग नये सवेरे का अहसास करते हैं। सड़कों को नया किया जाता है। बिल्डिगों का रंग रोगन बदला जाता है, मील के पत्थर उखाड़े जाते हैं, सिक्के बदले जाते हैं, पुराने चेहरे नये नकाब में फिट कर दिए जाते हैं। पुराना झण्डा फाड़ दिया जाता है। फ्लैग पोल का कलर बदल कर उसमें नया झण्डा लहरा देते हैं। यह सब दिखावा है, झूठ है, नकली बदलाव है। मैं तो इन्हें रोगी मन की करतूत मानता हूँ। जिन्हें जीवन में कोई अभाव नहीं वे क्रान्ति के अग्रदूत नहीं बन सकते। साहित्य के दुकानदारों को यह बात अच्छी तरह समझ लेनी चाहिए।

जनता की रोटी को प्राथमिकता देने वाले साहित्यकार बहुत कम हैं। दफ्तर के बाबुओं का भी यही हाल है। कला की स्थिति अपने देश में लचर है। उस दिन वहुत दुःखी होकर एक लेखक बता रहा था कि वह अपने दफ्तर में एक दिन मर जायेगा। उसे यह तो याद ही नहीं आया होगा कि बहुत से लोग हिन्दुस्तान में ऐसे ढंग से मर जाते है कि पूंजीपतियों के अखबारों का और सरकारी तंत्र का उधर ध्यान ही नहीं जाता। जैसे मर जाना कोई महत्वपूर्ण बात नहीं होती। वह अखबार के दफ्तर में मरेगा, शायद कोई बात बने।

उसकी शिकायत है कि उसके पास पैसा नहीं है।

दफ्तर में पाँच कुर्सियों का काम अकेले करता हूँ फिर भी तनख्वाह उतनी ही मिलती है। सबसे बड़ा जुल्म यह है कि कविता, कहानियाँ, नोट्स यों ही लिखने पड़ते हैं। अपने विचारों को रूप देने के लिए लघु पत्रिका या पैम्फलेटनुमा कोई चीज़ निकालने की सोच चुका है। पास में पैसा नहीं है। पैसा होता तो सारा काम हो जाता। यहाँ तक कि सेक्स

की भूख भी मिटा ली जाती।

इस वन्दोबस्त में किसी सेठ की लड़की से प्रेम करना चाहता है। कई सालों से परेशान है, कोई लिफ्ट नहीं मिल रही। पैसा देकर प्रेम करने वाली लड़कियाँ बहुत होंगी पर परिस्थितियों ने उस बेचारे लेखक को बेचारा बना कर छोड़ दिया है।

कुछ दिन पहले जबानी अखबार में एक न्यूज़ आयी थी कि एक मासिक पत्र के सेठ मालिक की लड़की को सम्पादक ने रेप किया। लोग मुंह बनाकर कहते हैं—'वह इसी काबिल थी।' सम्पादक निकाल दिया गया। वह लड़की कवि बन गई। कला और साहित्य के प्रेमी दिमागी दुनिया में जीते हैं। कहा जाता है कि निराला की कटिंग बटोर कर उनकी प्रेमिकाएँ कवि बन गयीं। बस कहा ही जाता है।

□ □

मिसेज़ सक्सेना बहुत दिनों के बाद मेरे यहाँ आयी हैं, दफ्तर छोड़ने के बाद पहली बार शायद। उनका रुख कुछ अटैकिंग था, छिपकली जैसा। दीवाल पकड़ कर चलने वाली छिपकली। लगता है उन्हें जोशी ने भेजा है।

एक शाम वह स्वयं आया था।

सूचना दे गया था कि मिसेज़ सक्सेना दफ्तर से गायब हैं। साहब बहुत परेशान दिखाई पड़ते थे। अपने छोटे से चैम्बर में चहलकदमी करते थे। चपरासियों को···स्साला, मादर···बहन···कहते थे, काफी देर बाद आते थे और समय से पहले चले जाते थे।

जिस वक्त मिसेज सक्सेना ने अपना इस्तीफा भेजा, साहब संज्ञा-शून्य हो गये। कहानी का एक सिलसिला खत्म हो गया जैसे किसी नानी ने बच्चे से अन्त में 'राज पाट लौटा' कह दिया हो।

सिलसिलेवार और अनेक बातें।

एक एक करके दफ्तर से लोग अलग हो रहे हैं। मिसेज़ सक्सेना भी

दफ्तर छोड़ चुकी हैं। दफ्तर का शिकंजा अब उन्हें नहीं जकड़ पायेगा ! ! टूटे हुए तारों का शरीर अब क्या जुड़ेगा। सवाल चेंज का था, खुली हवा में साँस लेने का था। लगातार की रिक्तता आदमी को जड़ बना देती है। जब तक वह भरा रहता है, कुछ कर नहीं पाता। स्थितियों की भयानकता उसे खाती रहती है। वह लाल-नीले फीतों को बाँधता खोलता है। बहुतों की ज़िन्दगी इसी प्रकार कट जाती है। खालीपन, एक जगह ठहरने का अहसास, एक बिखरा कंसेण्ट्रेशन, दिमाग़ी दुनिया से अलग, अपने न होने की स्थिति का अन्दाज़ तो मिल ही जाता है।

अपने पास मिसेज़ सक्सेना को पाकर जोशी की सूचनाओं को उनके व्यक्तित्व पर चस्पा कर रहा हूँ। यह वही मिसेज़ सक्सेना हैं जिन की बहन संध्या के अन्त का पता नहीं चला। बाद में यह अपनी बातों को कहने की भाषा ढूँढ़ रही थीं। साहब के चक्र में फँसी मछली, आकारों के तिलिस्म में उलझाने वाली हरकतें, शरीर के नंगेपन को बाँहों की जकड़ से चरमरा देने वाले इरादे।

दफ्तर से निकल कर मिसेज़ सक्सेना ने दो कमरों की नई और एकान्त जगह तलाश की है। एक कमरा ज़िन्दगी के दिन काटने के लिए, दूसरा लोगों को रिसीव करने के लिए। उसी कमरे के एक कोने में एक मिनी दफ्तर की व्यवस्था भी की है। जोशी की बातों को बड़े चाव से सुना था मैंने।

मिसेज़ सक्सेना का नया पता कुछ ही लोग जानते हैं। ठीक भी है उनके पते से आम आदमी को क्या करना है। अब उनका नाम है 'ब्यूला'। पड़ोस के लोग मिसेज़ सक्सेना नाम जानते हैं। बाहर से आने वाले ब्यूला का ही पता पूछते हैं। दूसरा कमरा सफेद चूने से पुता है। उत्तर वाली दीवाल पर एक पेन्टिंग लटकती रहती है। किसी ज़माने में आर्टिस्ट ने टरकिश बाथ का सीन चित्रित किया था। नहाने वाली औरतें हैं। प्रायः सभी नंगी हैं। कुछ अँगड़ाई लेती हुई, कुछ वेटिंग की मुद्रा में। एकाध कोई बाजा हाथ में लिए हुए, कुछ अपने उरोजों को स्वयं थामे हुए, कई दूसरी औरतों से चिपटती हुई, कुछ नृत्य का पोज़

बनाए हुए और तमाम ऐसी जो अपने को रिलैक्स करने में व्यस्त। ऊँघना और सो जाना बिना किसी चिन्ता के।

ब्यूला कोआप्स में एक साँझ मिल गयी थी। उसका आफ डे था। सर्विस छोड़ने के बाद वह अधिक मुस्तैद हो गई थी। उसके चेहरे से एक साथ अनेक चेहरे दिखायी पड़े, परस्पर उलझे हुए। लगा कि जैसे किसी लिजलिजे पदार्थ को आकार दे दिया गया हो। एक नपी-तुली मुस्कान में सना हुआ वाक्य मुझे हलो कहने लगा। मेरा दिमाग़ एक अब्सर्ड थिंकिंग से भर गया।

एस मिसेज सक्सेना!

'ऐसा मत कहो भई कपूर, मैं ब्यूला हूँ। मिसेज सक्सेना का मैंने गला घोंट दिया। वह संध्या से साथ ग़ायब हो गयी। संध्या को किसी ने मार डाला और मैंने मिसेज सक्सेना को······। यह कहने में उसकी हिम्मत लड़खड़ाई नहीं। हिंसा का एक जानवर उसकी खूंखार आँखों में बैठा दिखायी दे रहा था। ऊदी स्कर्ट की परमानेन्ट क्रीजें लहराती हुई उसकी उखड़ी हुई जाँघों को ढक कर आगे बढ़ आयी थीं। वह कहने लगी—

'तुमसे मिलने का दिल चाहता था पर कोई उपाय नही निकला। ब्यूला का कोई सम्बन्ध अब दफ्तर से नहीं रह गया। वह तो फिस-ड्डियों की जगह है, मनहूसों का जंगल है। वहाँ भेड़िए रहते है। इन कुत्तों को एक नया जोड़ा नकली छाती और माँस के एक सूराख पर ऐसा नचाया जा सकता है कि फिर ये किसी काम के न रह जाएँ।

मैं भी तो उसी दफ्तर में काम करता था।

'क्या फर्क पड़ता है, जोशी भी तो है। तुम्हें भी उसी गली से ले जाया जा सकता है। अच्छा यहाँ क्या कर रहे हो? चलो, मेरे साथ चलो।'

दोहरे विचार मेरे मन को मथ रहे थे। एक कहता था, चलो मिसेज़ सक्सेना के साथ, और दूसरा सोचता था कि पिछली सारी बातों में कितनी ठंडक है। अन्ततः मिसेज़ सक्सेना के साथ चल पड़े। रास्ते में

ज्यादा बातें नहीं हो सकीं। उनकी बाहें ढीली-ढीली लग रही थीं। अँगुलियों के चमड़े की कसावट भी ढीली थी। सिकुड़न आ गयी थी। अपने लापरवाही के अन्दाज़ में ब्यूला मुझे भली लग रही थी।

□ □

व्यक्ति की कल्पना प्रवणता ही भूत की कल्पना करती है। जिनका दिमाग़ ठस होता है वे भूत की कल्पना करने में असमर्थ होते हैं। मेरे अन्दर एक औरत का भूत साकार हुआ था चलते चलते।

बेल्ट से कसी हुई कमर में बाएँ हाथ का बड़ा सा नाखून फँसा हुआ था। चेहरा काले बालों से ढका था। ऐसा अहसास हुआ कि बालों से छिपा हुआ मुँह तो खूबसूरत होगा पर दो बड़े-बड़े दाँत बाहर निकले होंगे। एक अनगढ़ सूरत सामने साकार निराकार हो रही थी।

आदमी को चीर कर खाने वाली औरत। लोग कहते हैं कि बिच्छू की तरह औरत अपने बच्चों को नहीं खाती है। वह आदमी खाती है, किसी को पता भी नहीं चलता। पुरुष तो इससे और भी अधिक करता है।

मिसेज़ सक्सेना ने अपना दूसरा कमरा दिखाकर कहा कि अब वह खुश है। एक एक आदमी से, पूरे समाज से बदला ले रही है। कई तरह के माध्यम खोज लिए हैं। जीवन की यह प्रक्रिया बाहर से अच्छी भले ही लगे पर अन्तर्दाह से भरी है।

कमरे की दीवारों पर औरतों के नंगे चित्र हैं। केमरे द्वारा लिए गए ये चित्र बड़ी-बड़ी साइज़ में लगे हैं। आर्टिस्ट के द्वारा बनायी गई न्यूडिटी समाज की आँखों में बहुत बड़ा आर्ट है। यह सब पूंजीवादी सभ्यता की देन है। दिगम्बर की कल्पना बहुत पुरानी है पर उद्देश्य के सन्दर्भ अलग-अलग हैं।

दीवारों के रंगों की चमक मेरे अन्दर तक पहुँचकर चिपक रही थी एक आल्मारी थी जिसमें क्या रहा होगा यह मिसेज़ सक्सेना की दास्तान

सुनने के बाद पता चला।

'बहुत खूबसूरत ड्राइंग रूम है आपका !

'क्या खूबसूरत है !! फर्श बैठने के लिए है और आप कहते हैं कि यह ड्राइंग रूम है। यह कमरा आपके लिए है यानी कि मर्दों के लिए न्यूड ही इसमें बैठ सकता है। उस रूप में मेल, फीमेल में कोई भेद नहीं रहता यहाँ। जब मर्दों को जनाना और औरत को मर्दाना हरकतें करती देखती हूँ उनकी इस एकता पर मन ही मन हँसती हूँ। आइए, हम लोग उस कमरे में चलें, शाम छः बजे से डेढ़ बजे रात तक दो शो होते हैं। एक साथ चार आदमी को आने की इज़ाज़त है। उन्हें लड़कियाँ भी देती हूँ जो समय से कुछ पहले आ जातीं हैं। जिस जॉय के लिए यह प्ले होता है वह आदिम रूप ही पसन्द करता है। इसीलिए सजावट में अधिक पैसे नहीं खरचने पड़ते। दो शो में एक लड़की एक हजार से लेकर दो हजार तक पैदा करती है। उसे पैसा भर-पूर देती हूँ। और सटिस्फैक्शन भी तो देती हूँ। यह एक रेस्पेक्ट बल पेशा है उनके लिए। आखिर गली-गली मारी-मारी फिरतीं। अपने मुल्क में कितने लोग हैं जो इतना कमा रहे है ?

'आपके चेहरे से अचम्भा आभासित हो रहा है। हो भी सकता है पर होना नहीं चाहिए। मुझे पैसे का लाभ मिलता है और समाज से बदला लेती हूँ। कभी-कभी तो एक मर्द के साथ तीन-तीन लड़कियाँ दे देती हूँ। सारा उन्माद उतार देती हैं। पैसा नम्बर दो का मिलता है। रोज़ मिलता है, लोग रोज़ आते हैं।

मेरा सिर चकरा रहा था। मन वर्तमान से हट कर पीछे लौट गया था।

घृणा का सागर भरा हुआ था। ऊभचूभ करता हुआ इंसान उसमें सिर डबोये था । उसे दीन-दुनिया का खाका छोटा लग रहा था। आवाज़ें नहीं आती थीं। हम अपने को ही पुकार रहे थे। कोई सुन नहीं रहा था।

इकाइयों से बने हुए समाज की इकाई हूँ मैं। लगा कि किसी की

गिरफ्त में हूँ और बेचैनी के सलीब पर किसी ने मुझे टाँग दिया है। अपने पास से दुनिया का गुजरना देख रहा हूँ—साफ-सुथरी, मैली-कुचैली।

'तुम आओ न किसी दिन'—इन्फार्मल होकर मिसेज़ सक्सेना बोलीं।

'अच्छा देखूँगा। फुर्सत मिली तो ज़रूर आऊँगा। मेरे पास इतने पैसे कहाँ हैं। किसी प्रकार ज़िन्दगी का बोझ उठाता हूँ। यह सारा खेल तो पैसे का है।'

'तुम्हारे साथ बिज़नेस नहीं होगा। तुम्हारे आने पर देखा जायेगा। पर एक बात बतलाओ—मेरा भी ख्याल रखोगे न? तुम्हारा साथ देने में पीछे नहीं हटूँगी...ही-ही-ही।'

एक काया चित्र उभरा। मैं मिसेज़ सक्सेना के मुँह पर तमाचे जड़ रहा हूँ। वह बोलती कुछ भी नहीं। हाँफ रही है, हाँपती हुई गिर रही हैं। उनकी उतान काया चरमरा गयी है, जोड़ों ने चुटकी बजा दी है। ओठों को चीरते हुए दाँत बाहर निकल आए हैं।

यह सब कुछ भी नहीं था।

मैं कुछ नहीं कर पाया। कायरता से बँधे हुए पैर आगे नहीं बढ़े थे। 'हाँ' के सिवा और कोई बात नहीं कर पाया था।

□ □

मेरे सामने मिसेज़ सक्सेना बठी थीं।

जोशी वाली बातें दिमाग़ में साफ थीं। आदमी की कमज़ोरी का नाजायज़ फायदा उठाने वाली औरत। किसी समय अंगार थी यह। अब तो ऊपर राख जमी हुई लगती है। अन्दर की बात कौन जाने।

इच्छा थी कि उस दिन अलबम की कुछ बातें पढ़ूंगा। इसी बीच मिसेज़ सक्सेना आ गयीं। क्या जोशी की बातें सच हैं!! इतनी हिम्मत इस औरत में कहाँ से आ गयी!! इस महानगर में सब कुछ संभव है।

जोशी की बातों पर विश्वास नहीं हो रहा था।

मेरी समझ में यह भी एक गेम है। इसे सब नहीं खेल सकते। अकेले खेलने में सभी प्रसन्न नहीं होते। अपना-अपना इन्ट्रेस्ट है। मिसेज़ सक्सेना की शिकायत है कि मैं दफ्तर से इस्तीफा देने के बाद दिखायी नहीं पड़ता।

दिल्ली में रहने के लिए बेकारी कोई सहारा नहीं देती। यहाँ तो भीख भी परिचय के आधार पर ही मिलती है। जनता परिचय की खोज में भागती रहती है। भाँति-भाँति के वर्गों में बँटा समाज अन्दर से कितना खोखला है। कैसे एडजस्ट करूँ मैं, समझ में नहीं आता।

पाकिस्तान से आये हुए शरणार्थियों की एक अलग सभ्यता है। बाबुओं का अलग कल्ट है। घरों में काम करने वाले नौकर भिन्न हैं। होटल की दुनिया ही दूसरी है। बुद्धिजीवियों का नक्शा दूसरा है। दुकानदारों की लूट-शैली अनोखी है। पैसे के आधार पर जीते हुए एम० पी० के बोल दूसरे हैं। अध्यापकों की नियति दूसरी है। कहवाघर की भीड़ भिन्न है। सब्जीमंडी की गलियाँ व्याख्या नहीं चाहतीं। दफ्तरों के फिकरे काफी बदनाम हैं।

मिसेज़ सक्सेना की भाषा का रास्ता बदल गया है। अब वह उस ग्रुप में आती हैं जो दूसरों को न चूसने का नाटक करता हुआ भी चूसता रहता है।

तो क्या उसकी शिकायत सही है।

होगी सही पर मैं वहाँ नहीं जा पाऊँगा। मिसेज़ सक्सेना के प्रति मेरी निष्क्रिय सहानुभूति है पर उसका कोई मतलब नहीं होता।

चाहता हूँ कि दफ्तर कभी याद न आए पर ऐसा हो नहीं पाता। जब दफ्तर है तो याद आना स्वाभाविक है। इस टुच्ची सभ्यता को भूलना चाहता हूँ। और मुझे भी कोई याद न करे, कभी न याद करे।

□ □

रिबका ने एक आर्ट गैलरी खोली है। इसका उद्देश्य व्यापारिक बिल्कुल नहीं है। मुझे नहीं पता था कि वह गैलरी खोलकर अपनी प्रवृत्ति को एक नया सहारा देना चाहती हैं। उन्होने कभी चर्चा भी नहीं की।

सारा प्रबन्ध कर लिया। किराये पर जगह ले ली। कुछेक कर्मचारी रख लिए। साज-सज्जा कर ली गई तब मुझे पता चला। मैं गैलरी में बैठा हूँ। मेरे दिमाग़ में घटनाओं और जीवन के क्रम के अनेक क्षणों की छोटी-बड़ी आँधियाँ है। एक धूमावरण है। सब कुछ धुँधला गया है जिसमें। पर इस वक्त गैलरी के ही सम्बन्ध में सोचना चाहिए और इसी के सम्बन्ध में बातें भी करनी चाहिए। क़ायदा यही कहता है।

गैलरी के एक कार्नर में छोटी-सी मेज़ के तीन तरफ तीन कुर्सियाँ हैं। बीच वाली कुर्सी पर रिबका हैं, एक पर मैं हूँ और तीसरी खाली

है । पेण्टिग्स और रेखाचित्रों को सजाने, सँवारने वाली लड़की को रिबका बुलाती है । उसका नाम नहीं लेती है । संकेत पर ही वह पास आती है । उसका पहनावा भारतीय नहीं है पर भला लग रहा है । नयी उम्र के चुस्त शरीर मे आकर्षण की भंगिमा है । काफी ऐक्टिव लगती है । उसकी आँखों में कुछ खोजने के भाव है । पूरे चेहरे से प्रफुल्ल भाव की ताज़गी दीखती है ।

'एस मैडम'—लड़की ने कहा ।

'देखो यह साहब जो बैठे है, यह है मिस्टर कपूर । इन्ही की बात मैं तुमसे कह रही थी । अच्छा हुआ यह आ गये, मैं तो इनके पास जाने की बात सोच रही थी । अब ठीक रहेगा । आप दोनों मिलकर गैलरी का काम सम्हाल लेंगे । मेरा क्या ठिकाना, मुझसे लगातार बैठा भी तो नहीं जाता ।'

तीसरी कुर्सी पर वह लड़की बैठ गयी ।

'इस गैलरी में वह पेंटिंग्स और रेखांकन लगे है जिनका सीधा संबंध भारत और उसकी जनता से है । यह कला निरुद्देश्य नही है । एक ही वर्क को देखने से यह बात साफ हो जायेगी । अभी तक हिन्दुस्तान के आर्टिस्ट नकल की पोजीशन में रहे हैं । केवल सब्जेक्ट हिन्दुस्तानी होने से काम नहीं चलता । शिल्प भी तो हिन्दुस्तानी होना चाहिए । जो नकल अभी तक की गई है वह बहुत भद्दी और कुरूप है । यही कारण है आज के हिन्दुस्तान का आर्ट बहुत पीछे है । और आम आदमी से उसका रिश्ता ही क्या है । हमारा उद्देश्य पर्दाफाश करने का है । किसी व्यक्ति विशेष का नहीं बल्कि बुराईयों का, मनुष्य की कमजोरियों का, उसके अवगुणों का । अनीति और अंधकार के इस पर्दाफाश में जनता को निशाना बनाना हम नही पसंद करते । हम तो जोंकों का पर्दाफाश करते हैं, कछुओं की हरकतों को सामने लाते हैं । जनता की कमजोरियों की व्याख्या हम दूसरे ढंग से करते है ।'

रिबका के प्रस्ताव पर मुझे अचम्भा हुआ । अचानक यह सब कैसे हो गया । अब मुझे आर्टगैलरी में बैठने का प्रस्ताव है । बन्धन के कारण

ही मैंने अपना दफ्तर छोड़ा था, वही बन्धन आज फिर बाँध रहा है।

इतने बड़े शहर में ज़िन्दगी को बेहतर ढंग से जीना आसान नहीं हैं। बेकार कब तक रहेगा आदमी। टूटी हुई स्थितियों के घेरे मनुष्य को पीस देते हैं, रक्तहीन कर देते हैं। इस महानगर के माहौल में टूटने की कई जगह हैं। बस स्टैण्ड से लेकर राशन-पानी तक इन स्थितियों को विस्तार मिला है। व्यक्तिवादी धारणा का यह शहर पूंजीवाद की उस बुनियाद पर खड़ा है जो नम्बर दो के रुपयों से मजबूत की गयी है। मैं इसी शहर का निवासी बन गया हूँ। इसकी ऊँची-ऊँची इमारतें मुझे चिढ़ाती हैं। गोल-मटोल लम्बी-चौड़ी सड़कें उपहास करती हैं। ऊँचे दामों वाले रेस्त्राँ मेरी बेकारी का मज़ाक उड़ाते हैं। यह सब कब तक चलता रहेगा।

'आपने इस काम को स्टार्ट करने का कभी जिक्र नहीं किया।'

'क्या कहती आपसे !! अगर पब्लिसिटी कर देती और काम न पूरा हो पाता तो बाद में मुझे परेशानी झेलनी पड़ती। वह मैं किसी भी क़ीमत पर नहीं चाहती थी। इसीलिए सोचा था कि पहले कुछ करके ही आपको बतलाऊँ। अब आर्ट गैलरी स्टार्ट हो गयी है, आप इसे सम्हालिए। मुझे स्वतन्त्र रहने दीजिए। आज़ादी कलाकार की संगिनी है। बिना आज़ादी के रचना हो ही नहीं सकती। हमारे पास जो अपना दुःख दर्द है उसे पेण्ट करने के लिए भी आज़ादी की ज़रूरत है। मेरा मतलब यह नहीं कि अपने को आज़ाद समझती हुई आपको बाँध रही हूँ। आपके लिए यह आर्ट गैलरी कोई बंधन नहीं होगी। यहाँ ज्यादा कोई काम भी नहीं है। हर पीस पर क़ीमत के लेबल लगे हैं। थोड़ा सेल हो जाएगा तो रोटी का साधन निकल आएगा। आपको सर्विस के लिए कहीं भटकने की आवश्यकता नहीं है। मेरी कला को व्यवस्था दीजिए।

क्राइम और सेक्स के इस शहर में कला कृतियों के माध्यम से पैसा निकालना आसान काम है। पैसे वाले लोग जीवन के हर क्षेत्र में पैसे के आधार पर अपटुडेट रहना चाहते हैं। वे लोग जिस प्रकार के सीन-

सीनरी पसन्द करते हैं, मुझे जानकारी है। हमें बहुत सम्हल कर काम करना है। सम्पूर्ण समाज को हमें देखना है, केवल एक वर्ग को नहीं।

मैं कितना भटकी हूँ आपको पूरा पता नहीं है। अब मैं अपने पैरों पर खड़ी हूँ। मुझमें केवल मेरी स्त्री ही नहीं, मेरी हिम्मत और उमंग भी है।'

मैंने अपनी जिज्ञासा को टटोला—

'आप इतनी महँगी पेण्टिग के द्वारा अपने विचार आम आदमी तक कैसे ले जाएँगी !

'हमारी इन पेंटिग्स और रेखाचित्रों में जनता की दृष्टि है। यह बात सही है कि जनता को इनकी पूरी समझ नहीं है पर इसके लिए उसके सामने कोई पर्दा नहीं है। हमें उसे साथी की हैसियत से साथ रखना है। जो लोग समझते हैं कि जनता कुछ नहीं है वे बड़ी ग़लतफ़हमी में जिन्दा हैं। जनता की ताक़त का उन्हें पता नहीं है।'

मेरे सामने कुछ चित्र उभरते हैं।

एक तूफान उठता है।

हवा की तेज़ी में सब कुछ उड़ा जा रहा है। मैं असहाय नहीं हूँ। रिबका भी असहाय नहीं हैं। लोग आपस में एक दूसरे की हत्याएँ कर रहे हैं। मोटे लोगों ने दूकानें अन्दर से बन्द कर ली हैं। थाने के माल-खाने पर स्पेशल पहरे लगा दिए गये हैं। मिनिस्टर ने अपने बंगले के दरवाजों को अन्दर से बोल्ट कर दिया है। मोटर गैरिज में बड़े ताले झूल रहे हैं। छात्रों में भगदड़ मची है। डरपोक प्राध्यापक अपनी अज्ञानता में छिप गये हैं। छात्राएँ या तो घर भाग गयी हैं या फिर होस्टल के कमरों में बन्द हो गयी हैं। कितना भयंकर है यह तूफान।

शिक्षा के मन्दिर का प्रिंसपल ठर्रे के नशे में धुत है। मौका पाकर सीढ़ियों पर कुछ लड़के और लड़कियाँ मैथुनरत हो गये हैं। चपरासी की जेब में पाँच रुपये का नोट डाल दिया गया है। बिजली की लाइन कट गयी है। कमरे में घोर अँधेरा हैं। चीख और छीनाझपटी सुनाई पड़ती है। पुलिस ने अदावत के कारण गरीबों की झुग्गियों में आग

लगा दी हैं। बड़ा भयंकर तूफान है।

...दफ्तरों में फाइलें मेज़ पर से आलमारियों में पहुँच गयी हैं। कर्मचारियों को विश्वास है कि तूफान थमेगा। पुराने ढंग से काम फिर शुरू हो जाएगा। इस देश के दफ्तर भ्रष्टाचार के अड्डे हैं। सभी कहते हैं ऐसा पर सुधारता कोई नहीं।

हिन्दुस्तान का नक्शा टेढ़ा हो गया है।

उसमें कोई आर्ट नहीं है। तूफान में तो आर्ट होता है।

रिबका ने मेरा ध्यान तोड़ा—

'लगता है आप कुछ सोच रहे हैं। क्या यह काम आपको पसन्द नहीं आया!! भई, आर्ट का साथ तो छूट नहीं सकता। दूसरा काम फिर करती ही क्या? जनता के दर्द को मैं अपना दर्द समझती हूँ। ऊँचे लोगों की सभ्यता का पता मुझे खूब है...।

रिबका कहती जा रही हैं। मेरे अन्तःकरण में तूफान के दृश्य अंकित हो रहे हैं—पुलिस ने कुछ निरीह लोगों की हत्या कर दी है, जिनकी उनको तलाश थी वह नहीं मिला। किसानों ने अपने हाथों में लाठियाँ, खुरपे और गड़ाँसे ले लिए हैं। उन्हें नहर के बाबुओं ने ज़रूरत पर पानी नहीं दिया। फसल पक जाने पर नहरों में बाढ़ आ गयी। सूखे की राहत का पैसा स्थानीय एम० एल० ए० खा गया। कचहरी में उसकी कोई सुनवायी नहीं हुई। अपने औजारों को हथियार बना कर वह बाहर आ गयी है। वह ढूढ़ रही है दरोगा और उसके दो सिपाहियों को जिन्होंने एक निरीह हरिजन लड़की के साथ थाने में बलात्कार करके उसकी योनि में लाल मिर्च भरदी थी, झूठा बयान देने के लिए। उस लेखपाल की खोज है जिसने इन्दराज़ गलत किया था, जिसवार गलत लगायी थी। जनता में रोष है पूरी व्यवस्था के प्रति, ग्राम प्रधान से लेकर ऊँचे अधिकारी तक सब एक ही साँचे में ढले लगते है।

एअर फोर्स के सिविल दफ्तर में बड़ी भीड़ है।

कर्नल घई की वाइफ को कुछ अफ्रीकी एक सरकारी होटल में किराए पर ले गये थे। मर्द ने कहा पाँच सौ औरत ने समझा पाँच

हजार। औरत तीन अफ्रीकियों के साथ होटल में चुकती रही। सबेरे चलते वक्त तकरार हुई। झगड़ा पाँच सौ और पाँच हजार के बीच का था। औरत का कहना था कि पांच सौ का अगर पहले से पता होता तो तुम्हारे काले कलूटे जिस्म पर थूकती भी नहीं। अफ्रीकियों का कहना था, कि 'तुममें ऐसा क्या था तो पाँच हजार देता। कोई पहली बार तो यहाँ आयी नही। इतने तगड़े और जाइण्ट मर्द तुझे इण्डिया में कहाँ मिलेंगे!! औरत ने अपने को पागल घोषित करके पुलिस को बयान दिया है कि उसे जबर्दस्ती होटल में ले जाया गया। दूसरे दिन दफ्तर में कर्नल घई और मिसेज घई बैठे थे। अफिसर्स की भीड़ थी। दफ्तर के कर्मचारी उत्सुकता से मिसेज़ घई को देख देखकर आगे बढ़ जाते थे।

मेरा ध्यान टूटता है। दिवा स्वप्न जैसा था यह सब।

शायद रिबका ने अपनी बात पूरी कर ली है।

'कोई जल्दी नहीं है। आप मेरी बातों पर सोच लीजिए। यदि आर्ट गैलरी को चलाने में मेरा साथ देना आप मुनासिब समझें तो हाथ बँटाइए। यह मत समझिए कि आपको मेरी नौकरी करनी है। गैलरी को आप अपनी समझिए। इसमें कोई कलात्मक चतुराई नहीं है। मेरी कला का मूल्य क्या हो सकता है मैं कह नहीं सकती। व्यवस्था करना आपका काम है। मुझे विश्वास है आप इस काम को सम्हाल लेंगे। इसी बहाने आपसे भेंट भी होती रहेगी। बड़े और ऊँचे वर्ग के लोगों पर विश्वास करके मुझे मिला है भय, संत्रास, हॉरर आपके साथ यह खतरा नहीं महसूस करती।

तूफान थमने के स्थान पर बढ़ रहा था। मैं स्वयं बँटा हुआ महसूस कर रहा था। यह अहसास बहुत साफ़ था। दोहरा व्यक्तित्व ढोना खतरे से खाली नहीं है। इस तरह का नाटक सभी को खेलना पड़ता है पर छोटी मोटी शिकायत करके सभी चुप हो जाते हैं। राजनेता से लेकर वाचमैन तक दोहरी स्थितियों में जिन्दा रहते हैं।

अपने देश के लोग तूफानों की ओर ध्यान नहीं देते। उनके लिए

यह आवश्यक भी नहीं होता। यह तूफान उनसे ज़रूर मिलेगा, .खोज खोज कर मिलेगा।

□ □

इस आर्ट गैलरी मे फाइलें नहीं सम्हालनी पड़ेंगी।

लेकिन क्या पेण्टिंग्स की बिक्री से इतना पैसा निकल आएगा कि सारा खर्च चल जाएगा। यदि नहीं निकलेगा तो क्या यह काम ग़लत है। काम के पूर्व निगेटिव परिणाम की कल्पना कितनी भयंकर है। मन में ऐसी बातें आ ही जाती हैं। इनका रोकना संभव नहीं होता। बिना काम के इस राक्षस नगर में रहना कितना कठिन है। जब से मैंने दफ्तर की नौकरी छोड़ी है, साथियों का रुख ही बदल गया है। यहाँ साथी ही कौन है ? जो सचमुच के साथी हैं और जिन्हें मेरा हृदय साथी मानता है वे अपनी स्थितियों का नकाब ओढ़े बाहर पड़े है। ख़बर भी तो नहीं लेते। और अपनी भी नहीं भेजते। कई वर्ष तक चुप रहेंगे। ख़त लिखेंगे तो नपा-तुला। मिलने पर आत्मीयता का प्रदर्शन करेंगे। यही उनकी नियति है।

मैंने रिबका से कहा—

'आस्थाओं का टूटना बहुत आसान नहीं होता। जब कभी आस्थाएँ टूटती हैं आदमी एक नया रास्ता खोजता है। इस खोज में नयी आस्था जन्म लेती है। यह स्थिति विद्रोह की भी हो सकती है जिसके लिए आस्था का होना बहुत आवश्यक है। आपके मन में बुर्जुआ व्यवस्था के प्रति घृणा है, इसका मतलब है कि आपमें अन्दर ही अन्दर एक नयी आस्था पनप रही है।'

'आर्टगैलरी में मैं काम कर सकता हूँ। सफलता काम के ढंग पर निर्भर करती है। आगे बढ़ने के लिए मैं अपने पर विश्वास करता हूँ पर एक बात आप जान लीजिए कि देश का नक्शा कलाकृतियों के माध्यम से नहीं बदलेगा। पैसे वालों की दुनिया अलग होती है। वे आपकी कला कृतियाँ खरीद लेंगे, उन्हें दीवाल पर टाँग लेंगे। क्या आप

समझती हैं कि उन कलाकृतियों का अर्थ वे समझ लेंगे। ऐसा कभी नहीं हो सकता। जहाँ पैसा और वैभव होता वहाँ कला की मर्मज्ञता नहीं होती। उन कृतियों का कोई अर्थपूर्ण परिणाम वे नहीं सोच सकते।'

'आदमियों के जंगल को पार करना कितना भयानक है। आपका अलबम याद आता है। इंसानों के जंगल में, मनुष्यता की डींग हाँकने वालों के बियाबान में जिया कैसे जा सकता है। इन आदमियों के बीच में आदमी के लिए कोई जगह नहीं है।'

'मिसेज़ सक्सेना की बात लीजिए। उनका रास्ता देखिए। उनसे मुझे ऐसी ही उम्मीद थी। पहले से मैं उन्हें जानता था। जिस्म की बोटी काट कर बेचना इसी को कहते हैं। अगर वह यह समझती है कि अपने जिस्म को नहीं बेंच रही है तो ग़लती पर है। यह उन्ही का जिस्म है जो दूसरों के माध्यम से बिक रहा है।

तो कल आप आ रहे है न।'

यह पूछ कर रिबका चुप हो गयी। मैं साफ़-साफ़ हाँ नाँ कर नही रहा था, इसलिए उनका सन्देह बढ़ना स्वाभाविक था।

'जो बातें मैंने कहीं उसके बारे में आप क्या सोचती हैं?'

'मैं अडमिट करती हूँ।'

रिबका के बोलने में कुछ तेज़ी थी। वह किसी की आलोचना नही चाहती थीं। संभव है किसी भी उलझन के कारण ऐसा हो गया हो। कलाकार जो कुछ चाहता है वह प्रायः बाहरी दुनिया के मेल में नहीं होता। काफी दूर तक वह अपने व्यक्तिवादी रूप में आगे बढ़ता चला जाता है। इसी भावना के कलाकार दुनिया में अधिक मिलेंगे।

रिबका कहने लगी कि व्यक्तिवाद वही बढ़ता है जहाँ ऐश व आराम के साधन अधिक होते हैं...छोड़िए इन बातों को। आज का प्रोग्राम क्या है?

'क्या हो सकता है प्रोग्राम? अगर आप कोई बनाएँ तो साथ दे सकता हूँ। इस वक्त अच्छा रहेगा।'

'चलो कास्मापालिटन चलें।'

'अभी इतने पहले वहाँ चलकर क्या करेंगे !!'

'देखेंगे कि लोगबाग दिन भर कॉफी हाउस में क्या करते हैं !!

'वह तो मैं यहीं से बतलाता हूँ, जाने की कोई जरूरत नहीं है।'

रिबका कहने लगीं—

कुछ बाते ऐसी होती हैं कि उनका अनुमान यही से नहीं लगाया जा सकता। बिना चेहरा देखे हम गूढ़ भाव को नहीं जान पाते। यह सही स्थिति कि वहाँ प्रतिदिन एक ही तरह के लोग आते हैं। जिनकी नौकरी छूटी है, दिन में जिन्होंने नाजायज़ रूप से दस-बीस कमाया है वे बिना कॉफी-हाउस गये कैसे चैन पाएँगे। दूसरा शेल्टर ही क्या हो सकता है !!

मिसेज़ सक्सेना ने भी रिलैक्सिग सेण्टर खोला है।

रिबका झुंझला कर कहने लगीं—

'आप ग़लत सोचते हैं। मिसेज सक्सेना के यहाँ ज्यादा पूँजी वाले लोग जाते हैं। वहाँ आम आदमी की पैठ नहीं है। कॉफी हाउस रिलैक्स करने की एक जगह है इसीलिए सभी वहाँ पहुँचते हैं। आप का यह समझना ठीक नहीं है कि कॉफी तो घर में भी पी जा सकती है। आप को एटमॉसफिअर कहाँ मिलेगा !! उसी के लिए वहाँ जाया जाता है।'

□ □

अन्ततः चलने की बात पक्की हो गयी।

रिबका ने गैलरी में काम करने वाली लड़की को कुछ समझाया। यही कि अब वापस नहीं लौटेंगे। समय से गैलरी बन्द हो जानी चाहिए। चलते समय उससे समय से आने के लिए भी कहा था। उत्तर में उस लड़की ने 'एस मैडम' मात्र कहा था।

हम लोग कास्मापालिटन समय से कुछ पहले पहुँच गये थे। सीटें धीरे-धीरे भर रही थीं पर लोगों के आने का क्रम बहुत धीमा था। अभी छुट्टी का समय नहीं था। जिनके पास काम नहीं था वो जमे पड़े थे।

. एक ओर हिप्पियों का जमघट था। स्मगलर भी आते हैं यहाँ पर उनकी कोई विशेष पहचान नहीं होती। किसी भी वेश में वे मिल सकते हैं। दफ्तर में दिनभर लगे घावों को मरहम देने के लिए आते आफिसर भी हैं पर अपने बँधे-बँधाये अन्दाज में आकर जल्दी चले जाते हैं।

दूसरे किनारे पर गूँगों की एक टोली बैठती है। उन्हीं के साथ चायना क्ले और प्लास्टर आफ पेरिस की बनी हुई अधनंगी और नंगी वीनस बेंचने वाला चौरसिया भी आता है। वह अक्सर बैठता है, बोर नहीं होता। गूँगे अपने संकेतों से समस्याओं का समाधान करते हैं। बेयरे आते जाते रहते हैं। ये लोग बातों में तन्मय रहते हैं। किसी को आर्डर देने की फ़ुर्सत नहीं होती।

एक मेज़ को घेरे हुए दसेक आदमी बैठे हैं। बहस चल रही है जिसने भी मुखबिरी की है उसका सोशल बाँयकाट होना चाहिए। ये सभी अपने को साहित्यकार कहते हैं। होंगे। इनमें कुछ लतीफेबाज हैं। समस्याएँ अलग-अलग हैं। कोई सर्विस से निकाला गया है, किसी ने सर्विस छोड़ दी है। कोई नारों के पक्ष मे बोलता है, कोई पोस्टर युद्ध चाहता है। समाज में चारों ओर घिनौनी स्थितियाँ है। सभी नाख़ुश हैं। किसी की जेब में ह्विस्की का क्वार्टर पड़ा है, किसी के पास बस का टिकट लेने के लिए बीस पैसे भी नहीं हैं। जबान से सभी प्रोग्रेसिव है पर सभी ने अपने-अपने समझौते कर रखे हैं। बीच में रोमैण्टिक विद्रोह की बात छिड़ती है। कॉफी हाउस की एक मेज के चारों ओर क्रान्ति होने लगती है। आस-पास बैठे व्यापारी, निठल्ले, क्लर्क, बहुरूपिये सभी चौंकते हैं। रोज़ चौंकते है। रोज़ क्रान्ति होती है। शाम को सात से नौ के बीच दिल्ली के कहवा घर में एक मेज़ के चारों ओर। बेयरा पूछता है—'बाबू जी क्या लाऊँ ? सभी एक दूसरे को ताकते हैं। फिर सारी आँखें बेयरे के चेहरे से उतरती हुई मेज़ पर गड़ जाती हैं। वह लौट जाता है।

साउथ कार्नर पर एक मेज़ के साथ छः लड़कियाँ बैठी हैं। वे कौन

हैं, क्या हैं, मुझे कोई पता नहीं है। उनकी चुलबुलाहट अप्रिय लग रही है। इसके अलावा उनके सामने कोई समस्या नहीं है कि वे क्या खाएँगी। इतना सामान मँगा लिया है कि काफी देर तक खाती रहेंगी। बातें करते-करते मुँह बनाकर खाने की शैली बेहूदा लगती है। लिबास ही माडर्न है, तौर तरीके में ये पिछड़ी हुई हैं। बातों का स्तर तो बहुत ही नीचे है। फूहड़ लड़कियाँ, इन्हें देश-दुनिया का पता नहीं है। ये बड़े बाप की बेटियाँ भी नहीं है। इन्हें चस्का है काफी हाउस आने का। बेयरे भी खूब मज़ा लेते है।

आज रिबका के साथ बैठने में एक ताज़गी लग रही है।

मेरे सामने अब सर्विस की चिन्ता नहीं है। मैं नहीं सोच पा रहा हूँ कि इन्होंने मेरे ऊपर इतना बिश्वास कैसे कर लिया!! केवल इस लिए तो नहीं कि मैं उनकी कला कृतियाँ पसन्द करता हूँ।

अपने देश में औरतों की दशा ! कहना बेकार है। हम आदर्शवाद के चक्कर में पड़कर डींग तो बहुत हाँकते है पर कर कुछ नहीं पाते। अपने को चेंज कर नहीं पाते, समाज में परिवर्तन लाना चाहते हैं। अनुजीवी बनकर औरतें कब तक जिन्दा रहेंगी। इस विषम परिस्थिति में उनकी नाव एक न एक दिन डूब जाएगी।

रिबका बीच में बोल पड़ी—

'पता है आपको मिसेज़ सक्सेना के साथ एक नयी दुर्घटना हो गयी। मैंने आर्ट गैलरी में नहीं बतलाया। कल उनके यहाँ पुलिस ने छापा मारा। मौके पर वह तो मिलीं नही, कुछ भद्दे चित्र मिले। उन्हीं को वरामद कर पुलिस को सन्तोष करना पड़ा। वहाँ आने वाले लोगों में से कोई नहीं मिला। सक्सेना कहीं भाग गयी है। पुलिस उनकी तलाश में है। र्‌यूमर है कि यह पहले अनू सरकार के नाम से जानी जाती थीं। इनके दूसरे सारे नाम बनावटी है। इनकी बहन का नाम भी बनावटी है। कैसी-कैसी तो औरतें है दुनिया में।'

मैं थोड़ा परेशान सा था।

रिबका की बातें ध्यान से सुन रहा था। मिसेज सक्सेना हमारे

बीच एक रहस्य रमणी थी। अभी आगे क्या होगा !! यह भी तो पता लगा है कि वह शहर छोड़कर बाहर चली गयी है। उन्हे तो दुनिया को एक्सप्लायट करना है चाहे वृन्दावन जॉय या चण्डीगढ। रिबका की बातो से लगता है सब ठीक हुआ है। मैं कुछ हलका महसूस कर रहा हूँ इसलिए नही कि मिसेज सक्सेना भाग गयी है या पुलिस उन्हे खोज रही है बल्कि इसलिए कि यह टॉपिक अच्छा लग रहा है।

आदमी अभी तक औरत को सौदा मानता रहा है।

औरत भी औरत को सौदा मानती रही है।

रेस्त्रा मे अचानक शोर होने लगा—'मारो···मारो साले को खूब मारो, सी. आई. ए. का जाल फैला है। चार सौ बीस है सब को मारो। पजाबी असर वाली गालियॉ···मॉ, बहन तक पहुँचा कर मैटर को दफना दिया···।

'यह सब क्या है ?' रिबका ने पूछा।

मैं देख रहा हूँ—" बड़े-बड़े चालों वाला आशिकतन, अवारा, पैरासाईट सामतपुत्र पिट रहा था। कहवा घर के बेयरे और क्लर्क, होटलबाज विजनेस मैन सभी उसे पीट रहे थे। उस नवयुवक को जनता का न्याय मिल रहा था। हम लोगो को उसकी हरकत का पता नही था।

कुर्ता पैण्ट पहने एक सरदार जी काउण्टर के पास से चिल्लाने लगे—'अरे बादशाओ ये कनाट सर्कस है, लड़ाई-झगड़ा बन्द करो, नीचे सड़क पर सिनेमा की शूटिंग हो रही है,अ् अ् अ्।

मारपीट से भीड छँटने लगी।

लोग नीचे भागने लगे। सिनेमा ही बहुत बड़ी चीज़ है फिर शूटिंग तो उससे भी अच्छी होगी। रेस्त्रॉ खाली हो गया। बेयरो की दौड़-धूप कुछ कम हुई। कुछ अड़ियल टाइप के आवारे बच गये पर उनका भी चित्त स्थिर नही था। ऊपर से ही वे भी वाहर की ओर झॉकने लगे।

रिबका की इच्छा पर ही हम भी बाहर आए।

सड़क की भीड़ एक स्थल पर सिमट रही थी। अन्दर घुस कर

मैने देखा एक सरदार ढोलक पीट रहा था दूसरा भॉगडा शैली में नाच रहा था। एक हिप्पी और उसकी प्रेमिका के गले में गेंदे के फूलों की माला पडी थी। दोनो मुसकरा रहे थे। अन्दर के घेरे मे जमा भीड़ 'हो' 'हो' कर रही थी। बाहर खडे लोग भी अन्दर जा रहे थे। ढोलक बज रहा था। मनचलो की कमर थिरकने लगी थी। विदेशी घुमक्कडों के केमरे उधर घूम चुके थे। फुटपाथ का यह दृश्य कितना रोमाण्टिक था। कमर मटकाने वालो के पंजों पर थिरकन नाचती थी। सुराही-नुमा पैंट और बेलबाटम पहन कर नाचने वाले छोकरे सरकस के जानवर लगते थे। अधेड और बूढे अपने 'बच्चों' की करतूत पर खुश थे। वे मन से प्रफुल्लित दीखते थे।

हिप्पियों के गले मे मालाओं की संख्या बढ़ रही थी। वे दोनों बुत बने बैठे थे। बड़ी सावधानी से अनजाने ही वे अपना पार्ट प्ले कर रहे थे। दोनो को इशारों पर नचाया जा रहा था। इस मजमे मे कोई रहस्य होगा। होगा कोई। सिनेमा शूटिंग के नाम पर भीड एकत्र होना कोई आकस्मिक बात नही थी। ऐसा तो अक्सर होता है।

रिबका पोर्टिको के पास खड़ी थी।

पूछा उन्होने—'क्या है ?'

दिल्ली के कनाट सर्कस का सीन।

डिटेल मे सारी बात बतलायी। रिबका को अचम्भा नहीं हुआ। उनका विचार था कि हिप्पी संस्कृति अपने को सब जगह फिट कर लेती है। यही हाल हमारे देश के मनचलों का है। हर जगह दिखाई देंगे। इनका वश चलता तो आर्मस्ट्राँग के साथ चाँद पर जरूर जाते। मरघट मकान से लेकर खेत-खलिहान सभी जगह मिलेंगे। अपनी ज़िन्दादिली लिए घूमते रहते हैं।

रिबका ने कहा—"यह सब होना चाहिए। इससे स्थितियाँ सामान्य होती हैं। थोडी देर के लिए परेशान हो जाता है।'

'पर यह तो असामान्य स्थिति थी। इसके द्वारा हमे नया क्या मिला' ? मैंने पूछा।

. रिबका का उत्तर था, कि 'समाज कोई काम नाप-तौल कर नही करता। सरकार करती है ऐसा ! उसे अगर साल में दस पुल बनाने हैं तो ग्यारवाँ नहीं बनेगा। समाज और जनता के साथ यह बात नहीं है। शोर मचेगा तो बेहद मचेगा, चुप रहेंगे तो ऐसे कि चारों ओर श्मशान का दृश्य उपस्थित हो जाय। यह तो मनचलों का मजाक है। इस माहौल में मज़ाक बुद्धि से नहीं होता उसके लिए शरीर की ज़रूरत है। औरत मर्द सभी शरीर का मजाक पसन्द करते हैं।

'याद होगा आपको ! मैंने क्रांति के बारे में एक पेण्टिग दिखायी थी। कितनी भयानक है वह। पर बाद में सब कुछ निर्मल हो जाता है धुल-कर, जैसे किसी ने जान बूझकर ऐसा किया हो। उस पेण्टिग को बनाने में मैं तमाम दिन परेशान रही। जो चाहती थी वह बन नहीं रहा था पर जो बनाती थी उससे कुछ नया सूझ जाता था। निरपराधों के साथ क्रांति में जो ज्यादती होती है उसे पेण्ट करने में तो बस रात दिन एक करने पड़े थे। किसी भी तरह उस ज्यादती से उन्हें बचाया भी तो नहीं जा सकता था। अपने देश में क्रांति की आँधी लाने का बड़ा शोर है। यह शोर कब तक चलेगा।'

कोई पूँजीपति क्रांति का पक्ष क्यों नहीं लेता?

'वह क्यों लेगा ! गद्दी सम्हालना भी एक कला है। क्रांति में गद्दी हिलती है, ज़मीन काँपती है जिन्हें पक्षधर बनना है वे पूँजी की ओर रहेंगे। ऐसे लोग शासन बदल जाने पर आने वाली व्यवस्था के पक्षधर रहेंगे। अपने देश में बुद्धिजीवियों की ओर से पूँजीवादी विचारधा बहुत उदासीन रहती है। उसे सही ग़लत की पहचान है पर अपने साथ ग़लत को ही रखना पसन्द करती है। वही हाँ में हाँ मिला सकता है। बुद्धि-जीवी बेचारा सुविधा की तलाश में समझौते करता घूमता है, दिल और दिमाग़ बेचता है। मानसिक गुलामी खरीद कर अपने अस्तित्व को मिटा देता है। उसमें अपना कुछ भी नहीं बचता।

प्रोग्रेसिव विचार के लोग धक्के खाते हैं। पूँजीपतियों की फर्मों में नौकरी के लिए धक्के खाते हैं और ऐसे सिर झुकाते हैं जैसे फर्म का

मालिक उनका आक़ा हो। शुरुआत की स्थितियाँ तो बन रही हैं पर अभी देर है।'

ये बातें मुझे अच्छी लग रही थीं। दो आदमी कभी रिवोल्यूशन नहीं कर सकते। बातें थीं केवल। देश का तमाम कागज़ खर्च हो रहा है। बड़ी बड़ी स्कीमें बन रही हैं। विदेशी अतिथि के आने पर स्वागत में पैसा पानी की तरह खर्च हो रहा है, होता रहेगा। उपदेश दूसरों के लिए होते हैं अपने लिए नहीं।

मैंने जीवन जिया है। छोटे दर्जे में पढ़ने के लिए नंगे पैर कई मील की दूरी पैदल नापी है। मैंने ही क्यों, बहुत लोगों ने ऐसा किया होगा। कई दिन बिना खाना खाये रह जाना पड़ा है। रात-दिन रोटी की तलाश में दौड़ते रहे है, पर नसीब नहीं हुई है।

अगर मैं बिना काम रहने की बात सोचता हूँ तो रोटी का सिलसिला खत्म होता है। सर्विस की बात मुझे बाँधती है। मैं बँधना नहीं चाहता हूँ पर जिन्दा रहने के लिए मुझे क्या करना होगा? रोटी के लिए गुलामी खरीदना मेरे वश का नहीं फिर देखा जायेगा, अभी जल्दी क्या है!! यह टालू प्रवृत्ति मुझे आगे नहीं बढ़ने देती। कॉफी हाउस की मेज़ों पर इंकलाब हो जाता है, मुझे पता नहीं लगता। आगे का प्रोग्राम अभी इसी वक्त ठीक करना है। मैं बिना यह काम किए दूसरा काम नहीं करना चाहता।

रिबका ने सवाल किया—'आपने साफ़ बतलाया नहीं?'

'किस सम्बंध में?'

'अरे वही आर्ट गैलरी वाली बात।'

'मैं कुछ निश्चय ही नहीं कर पाया इसलिए कोई ठीक-ठीक उत्तर नहीं दे सका। मुझे थोड़ा समय दीजिए। इस विषय पर विचार करना चाहता हूँ। कोई काम जल्दी में करने से दोनों की हानि हो सकती है और वह मैं चाहता नहीं।'

'मेरी समझ तो यह बनी है कि आपको आना चाहिए, अपने लिए नहीं तो मेरे लिए ही सही। कितनी अकेली फील करती हूँ। कलाकृतियों

से कब तक मत बहलाती रहूँ !! वैसे वही मेरे रात-दिन के साथी है। सपने मे भी तो वही दीखते है। पर वे बेजान है। उनका बोलना और उनकी सासे महसूस की जा सकती है किन्तु उसकी भी एक मन.स्थिति होती है। बेजान कला कृतियाँ। आप मेरी बात पर ताज्जुब करेंगे पर आप से सच कहती हूँ कि मैं रंगों की भाषा अच्छी तरह जानती हूँ। मेरी भाषा का पता रंग और रेखाओं को नही है।'

'ऐसी बात नही है कि मुझे काम नही करना है। मैं जल्दी ही अपना निश्चय आपको बतलाऊँगा।'

'कुछ समय पहले पता लगा था कि आप दिल्ली छोडने वाले है। शहर तो इसी लायक है। सब चाहते है और कोई नही चाहता, एकदम नही चाहता। महानगर की सस्कृति का यह एक अच्छा पहलू है कि एक दूसरे के व्यक्तिगत जीवन से कुछ भी लेना देना नही रहता। यहाँ सब कुछ बचाया जा सकता है, सब कुछ लुटाया जा सकता, है। सब कुछ लूट लेने वाले भी है, समर्पित होने वाले भी है। बहुरंगी है यह नगर।'

'सच्ची बात तो यह है कि आर्ट को मै अपनी सीमा मानती हूँ। अपने मे उलझी रहने के बावजूद भी नये समाज और नयी दिशा के बारे मे सोचा करती हूँ। एक औरत वह है जो शादी करके कई बच्चों की माँ बन गयी है। अपने बच्चो मे ही वह खो गयी है। अपने मन को झुठ-लाती रहती है। अन्दर से इतनी कमजोर है कि अपनी पसन्द भी पति से नही कह सकती है। टूटती रहती है, टूटती रहती है। टूट करके भी टूटती रहती है। अपनी डायरी पर बहुत कुछ लिखती रहती है। या तो सारा समय बच्चों के शोरगुल मे बीतता है या फिर घुटन मे। यही उसकी नियति है। समय काटना है इसलिए काटती है।'

'एक औरत वह है जिसने अपनी शादी के इन्तज़ार मे तमाम शामें गुज़ार दी है। ऐसे मे उसे अपने किसी दोस्त का खत कितना अच्छा लगता होगा !! दिल चाहता होगा उस ईमानदार खत को छाती से चिपका लें और चिपकाए रहे।

'और एक मिसेज सक्सेना भी थीं'—मैंने कहा।

'जो मैं कहना चाहती हूँ उसे मोड़िए नहीं। क्या कभी उस औरत को भी आपने देखा है जो बड़े घर की बेटी है। उस माहौल में उसका मन कभी नहीं भरा। शरीर की भूख भी नहीं मिटा पाए बड़े लोग। वह ड्राइवर के साथ चली गयी, दरबान के साथ सो गयी, खानसामा के ऊपर रीझ गयी और नहीं तो लिहाफ के नीचे पड़ी हुई अपना टार्चर करती रही, अपने को खोती रही। मेरे दिमाग में उस औरत का भी नक्शा साफ़ है जिसके जीवन का उद्देश्य पैसा है। आपका ध्यान मिसेज़ सक्सेना की ओर गया होगा। अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिए उन्हें पैसा चाहिए। पैसा पाने के लिए कुछ भी किया जा सकता है।'

'दूसरी औरत वह है जो खेतों मे काम करती है, अपढ़ है। जो पवित्रता के नाम पर नमक धोकर दाल में डालती है और धर्म-शर्म के नाम पर जनगणना अधिकारी को अपने पति का नाम बताने में झिझकती है। वह भी एक औरत है जो आजाद हिन्दुस्तान मे विधवा बनी सिर के बाल कटवा कर वृन्दावन और मथुरा में उदास दिनों और मनहूस रातों को गिनती हुई कृष्ण के दरबार में समर्पित बनी रहती है। उद्देश्य क्या है इसका ? सम्बन्धी खुश रहेगे साथ ही अपना परलोक भी सुधरेगा। क्या उसके लिए सूरज नही निकलता है ? निकलता है पर एक दम काला, अँधेरे का गोला केवल।'

'उसको भी हम लोग औरत कहते हैं जिसके कोई नहीं है, जो किसी की नहीं। स्कूल के बच्चे जिसके ऊपर बस्ता लादते हैं। एक के ऊपर दूसरा, तीसरा, चौथा, अगर सम्भव हुआ तो पाँचवाँ भी। वह झुकती जाती है जिससे बच्चे आसानी से बस्ते लाद सकें। इसमें सेक्स कहाँ है!! यह तो रोटी की कहानी है। घिनौने कपड़ों में लिपटी नाक पर पट्टी बाँधे एक अधेड़ उम्र की जमादारिन मेरे पड़ोस में रहती थी। बिल्कुल खूसट थी, दुर्गंध की पिटारी जैसी। उसका बेटा ताजे गुलाब जैसा खूबसूरत। उम्र सोलह के लगभग थी। बूढ़ी औरतें कहती हैं—नंदी बाबू का बेटा है।' भला जमादारिन की कोख से इतना सुन्दर बेटा

कैसे पैदा हो सकता है। नन्दी बाबू दफ्तर मे साहब हैं। जमादारिन भी उन्हें बाबू कहती है और बतलाती है कि उसका बेटा चीनू जब पेट में दो महीने का था तभी उसका जमादार मेनहोल की गन्दी हवा पीकर मर गया था। केवल उसकी जाति के लोगों ने मातम मनाया था। चीनू सचमुच नन्दी बाबू की कार्बन कॉपी लगता है। नाक पर पट्टी बाँध कर कभी-कभी अपनी माँ का साथ देता है। जब वह नन्दी बाबू के घर की सफाई करता रहता है तो वे बड़े गौर से उसे देखते रहते हैं। जमादारिन होली-दीवाली अच्छा बख्शीश पाती है।'

'अब आप खूब ऊब चुके हैं। हम भी चलते है, पर एक बात अपने बारे में कहूँगी। मेरे प्रयोजन का जवाब आपने नहीं दिया। मन से नही दिया। कहीं यह तो नही लग रहा है आपको कि आप बँध रहे हैं। आर्ट गैलरी खोलकर मैंने कोई नयी खोज नहीं की है। मेरा इरादा है कि आगे कुछ ठोस काम किया जाय। दुनिया में कोई भी काम बिना सहयोगी और सच्चे सहयोगी के सम्भव नहीं है।

मैंने कहा, कि 'ऐसी कोई बात नहीं है पहले-पहल तो इन्सान अकेला ही रहा होगा ?

रिबका उदास हो गयी। कहने लगी—

'रहा होगा ! आज तो अकेलापन महसूस करके मैं काँपती हूँ। यद्यपि यह अनुभव केवल क्षणों का है। पहला इन्सान कैसे रहा होगा। एक क्षण के लिए ही सही किसी नारी को उसने अपना साथी बनाया होगा। परिवार, मजलिस, संघ, सम्प्रदाय, स्कूल, संसद आदि की रचना ही अकेलापन दूर करने के लिए की गयी है। इनकी रचना के पीछे ग्रुप में रहने की भावना ही है।'

मैं कुछ बोला नहीं पर रिबका को ऐसा लगा कि जैसे कुछ सोच रहा हूँ। उन्होंने कहा कुछ नहीं। पर इससे क्या ! ! सचमुच मैं विचारों के थपेड़ों को झेल रहा था। आगे हमें क्या करना है ? व्यवस्था का राक्षस अकेले व्यक्ति को खा जाएगा। उसे तो समुदाय की शक्ति ही परास्त कर सकती है। आर्ट बना कर, बाज़ार मे उसे बेंचकर व्यवस्था

नहीं बदली जा सकती है, केवल अपने दिन काटे जा सकते हैं। जर्जर व्यवस्था के पंजे बड़े भयानक हैं। जनता की भीड़ को वह मुट्ठी में बन्द किए है। और भीड़ बुद्धिहीन होती है। बुद्धिजीवी अपने को हमेशा अकेला महसूस करता है। वह अनुशासन में रहना नहीं चाहता। उसकी रचनात्मक शक्ति का ह्रास होता है। वह अपनी रचनात्मकता के प्रति समर्पित है सब कुछ खोकर भी। इस आदत को भी वह कला का एक अंग मानता है।

□ □

कभी-कभी आदमी को समाज से भागना पड़ता है। सम्भव है दूसरे ही क्षण वह फिर लौट आए। समाज अगर न हो तो एक व्यक्ति दूसरे के व्यक्तित्व को पी जाय। कुछ जानवर तो यभीही करते हैं। केवल शैली का फर्क है, आदमी भी यही करता है। हम सब एक दूसरे को खाने की ताक में रहते हैं।

तो क्या मुझे भी कोई खाता जा रहा है ?

या फिर मैं किसी को खाता जा रहा हूँ !!

रिबका के पास बैठा हुआ यह जो मैं खण्डों में अलग-अलग सोच रहा था, ठीक नहीं था। यह तो किसी को भी बोर करने का अच्छा तरीक़ा है। खैर, रिबका बोर नहीं हुईं। एक सरल सी बात पूछ बैठीं—

'कहाँ खो गये आप' ?

'कहीं नहीं, यों ही कुछ विचार करने लगा था'

'किस टॉपिक पर, मैं भी तो सुनूँ।

'यही कि सचमुच अकेला आदमी कुछ नहीं कर सकता।'

रिबका के चेहरे पर मुस्कान छिटक गयी थी जिसका भोलापन बहुत आकर्षक था। कहने लगीं—

'केवल आदमी ही नहीं, औरत के साथ भी तो यही बात है।'

'आप उसके सम्बन्ध में ज्यादा और सही जानती हैं'—मैंने कहा।

रिबका कुछ अधिकार के स्वर में कहने लगीं कि बातों का कोई अन्त नहीं है आप कल सबेरे आइए। अब चला जाय ! क्या वजा है आपकी घड़ी में। चलिए आपकी ओर से होती हुई निकल जाऊँगी।

एक-एक कॉफी और।

मेरे इस प्रस्ताव पर रिबका ने हामी भर दी थी।

□ □

रात का सन्नाटा फैला हुआ है।

पास वाले थाने से समय के घण्टे की आवाज आयी है टन् अ अ अ। यानी एक बज चुका। मुझे सो जाना चाहिए था। नहीं सो पा रहा हूँ। बहुत रातें बितायी हैं इसी तरह। न भी बिताऊँ तो क्या रातें रुक जाएँगी। उन्हें तो आना और जाना है। वे सबकी हैं केवल मेरी अपनी नहीं हैं। अपनी हों भी तो क्या ?

अकेला बैठा हूँ। धर्मराज सो गया है। इसी तरह रात भर बैठा रहूँ तो कोई कुछ कहने वाला नहीं है। किसी को क्या पता कि मैं किसलिए बैठा हूँ। अभी और कितनी देर बैठूँगा, कह नहीं सकता। इस मनोमंथन का नतीजा क्या निकलेगा।

रिबका का साथ मैं पसन्द करता हूँ।

मुझे उनके साथ काम करने में क्या झिझक हो रही है ! ! आर्ट गैलरी भी मेरी पसन्द की जगह है। क्या यह सब रिबका ने मेरे लिए किया है ? नहीं, नहीं, ऐसा नहीं है। उन्होंने एसा नहीं किया होगा पर ठीक-ठीक नहीं कहा जा सकता किसी के बारे में। मेरा अनुमान गलत हो सकता है और सही भी हो सकता है। रिबका ने अपने जानवरों को इस काबिल नहीं रखा है कि वे बच्चे जन सकें। यह सब प्रतिक्रिया है किसी ऐसी घटना या बात की जो उनके जीवन का रस निचोड़ चुकी है। अगर ऐसा होता तो इतनी जिन्दादिली के साथ वह जिन्दगी क्यों जीतीं।

जिस दफ्तरी शिकंजे को मैंने छोड़ा है क्या उसी में फिर जा रहा हूँ। रिबका को मेरा मालिक बनना अच्छा नहीं लगेगा। किसी भी दशा में वह इसके लिए तैयार नहीं होंगी। अपने-अपने मन की बात है। पैसा भयानक रोल प्ले कर सकता है।

रात और गहरा गयी है।

मेरी उलझन सुलझ नहीं पा रही है। क्या सचमुच मेरा जीवन किसी पुरानी कहानी का प्लाट बन कर रह जाएगा। यह दुर्घटना मैं सम्हाल नहीं सकूँगा इसलिए यह घटे नहीं तो बेहतर। और आगे का रास्ता मैं कर्ज के पुल बनाकर नहीं पार कर सकूँगा। वे लोग कितने घिनौने हैं जो अपने मिलने-जुलने वालों से दस पाँच लेकर फिर माँगने की ताक में रहते हैं। टुकड़ों के लिए गंदे समझौते से मन बहलाते हैं। इतने गन्दे कि मैं उन्हें बतला नहीं सकूँगा। बाहर निकल कर क्रांति का नारा लगाते हैं। दूसरों की छाती पर मूँग दलते हैं। श्रम के नाम पर बगलें झाँकते हैं। भूखों मर लेते हैं पर लतों के गुलाम हैं।

चलते वक्त मैंने रिबका से कुछ कहा नहीं था। कह नहीं पाया। सम्भव है मेरी इस कमज़ोरी को वह जानती हों। मेरी उलझन से भी अवश्य परिचित होंगी।

मुझसे बात करते समय उनमें एक विश्वास रहता है।

उनके चेहरे पर आपसी भाव रहते हैं। उन भावों की मैं कद्र करता हूँ। आर्ट गैलरी में काम करने से मुझे कुछ अनुभव ही मिलेगा। मेरे चारों ओर घनीभूत रात का घेरा है। अच्छी लगती है यह स्थिति! दुनिया के शोर से दूर एकान्त और अँधेरे का साथ। किसी भी स्थिति की निरन्तरता मुझे दुःख देने लगती है। बदलाव की संज्ञाओं का पहचानना आजकल बहुत मुश्किल है, क्योंकि उनमें नकली माल काफी आ गया है और सभी उसके व्यापारी लगते हैं।

यह जिन्दगी जब एक जगह से स्टार्ट हुई है तो दूसरी जगह रुक ही जाएगी। प्रयास करने पर रास्ता चलने का अच्छा तरीका मिल सकता है। बिना जीवन से जूझे कोई अनुभव नहीं मिला करता। मुझे

जीवन के सही अनुभवों को बटोर कर मजबूत बनना चाहिए। कला और समाज के लिए व्यक्ति को मजबूत होना चाहिए। भटकते हुए मन को कहीं नींद आती है !! रात के पिछले पहर में झपकी लगी। सुबह रोज वाले समय पर नींद खुल गयी थी। धर्मराज को कुछ भी पता नहीं था। उसकी घरेलू समस्याएँ थीं पर उनका लेखा महीने में एक बार देता है वह। बहुत सीरिअसली काम में मस्त रहता है।

एक साथ कला, व्यक्ति और समाज के प्रति उत्तरदायित्व निभाना कितना कठिन है। मैंने भी यह कठिनाई महसूस की है। पर अब मुझे काम करना है, केवल काम। आगे आने वाले दिनों को अपने अनुकूल बनाने का प्रयास करूँगा। अफवाहों की परवाह करके अपने को पीछे नहीं ढकेलना है। रिबका ने मुझे बुलाया है। वह मेरा इन्तजार करेगी। उनका अलबम भी तो मेरे पास है और है यात्राओं का एक सिलसिला।

□□